अंक 1 : जनवरी, 2021
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी
लर्निंग कर्व

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन



हर बच्चा सीख सकता है भाग - 1

सम्पादकीय कार्यालय
सम्पादक, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
Phone : 080-6614 4900
Fax : 080-6614 4900
Email: publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in

प्रकाशन समन्वयक
शहनाज़ बेगम

हिन्दी अनुवाद
नलिनी रावल

कॉपी एडिटर (हिन्दी)
कविता तिवारी
स्वाति भदौरिया

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

आवरण चित्र सौजन्य
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय अभिलेखागार

डिजायन
Banyan Tree
98458 64765

हिन्दी अंक लेआउट एवं मुद्रक
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की क़लम से



सबसे पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों का भी अपना व्यक्तित्व होता है और इसलिए उनके विकासात्मक पैटर्न वातावरण की परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चों की क्षमताएँ और उपलब्धियाँ भी अलग-अलग होती हैं और यह अनुमान लगाना लगभग असम्भव होता है कि बच्चा किस गति से सीखेगा। इस प्रकार बच्चे अपने साथ क्षमताओं की एक विस्तृत शृंखला लिए स्कूल में प्रवेश करते हैं और इसलिए सम्भावनाएँ भी अनेक होती हैं।

यह धारणा कि सभी बच्चे एक ही गति से, एक ही तरह से और एक ही सीमा व स्तर तक बुनियादी पाठ्यचर्या सीख सकते हैं, न तो किसी शोध द्वारा समर्थित है और न ही किसी व्यक्तिगत अनुभव द्वारा। आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हमारे जीवन की परिस्थितियों में बहुत सारे परिवर्तनशील कारक होते हैं और हमारा दैनिक जीवन बहुत ही संस्कृति-विशिष्ट है—दुनिया के एक हिस्से में जिसे आवश्यक अधिगम माना जाता है, उसे दूसरे हिस्से में अनावश्यक माना जा सकता है। ऐसे परिदृश्य में अधिगम की शैली का अलग-अलग होना लाज़िमी है।

इसके अलावा जब हम कहते हैं कि हर बच्चा सीख सकता है तो हम उन चीज़ों को ध्यान में नहीं रख रहे होते हैं जिन्हें बच्चे अपने जीवन के शुरुआती तीन वर्षों में वास्तव में सीखते हैं, वह भी बिना सिखाए—जैसे कि संज्ञानात्मक और शारीरिक विकास से सम्बन्धित बातें—और सबसे गहन अधिगम तो उनकी भाषाई क्षमता है। भाषाविद नोम चोम्स्की ने कहा है कि जन्म से ही मनुष्य में व्याकरण का बोध होता है, जो उन्हें बाहरी मदद के बिना अपनी प्रथम भाषा बोलने में सक्षम बनाता है। इसलिए, जब हम यह कहते हैं कि 'हर बच्चा सीख सकता है' तो इसमें एक चेतावनी जोड़नी होगी। वह यह कि यह सीखना या अधिगम एक औपचारिक अधिगम है जो तब शुरू होता है जब बच्चा स्कूल में क़दम रखता है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट कहती है कि "...स्कूली पढ़ाई हमेशा अधिगम की ओर नहीं ले जाती। दुनिया भर में जितने ग़ैर-शिक्षार्थी स्कूल के बाहर हैं, उससे ज़्यादा स्कूल में हैं।''

औपचारिक अधिगम के हर पहलू का मतलब पहले भी 'संरचना' ही था और अब भी यही है, फिर चाहे वह पाठ्यक्रम हो, पाठ्यचर्या हो,शिक्षण पद्धति हो, कक्षा का प्रोटोकॉल हो, बैठने की व्यवस्था हो या फिर समय सारणी हो। जो बच्चा इसमें फिट नहीं बैठता या स्वीकार्य मानदण्डों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाता उसे हम एक मुश्किल विद्यार्थी या सीखने की अक्षमताओं वाले विद्यार्थी का नाम दे देते हैं, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि हर बच्चा अलग होता है, जबकि सैद्धान्तिक रूप से हावर्ड गार्डनर की थ्योरी ऑफ़ मल्टीपल इंटेलिजेंस का बहुत स्वागत किया गया है। अगर हम इस बात से सहमत हैं कि बच्चों में विभिन्न प्रकार की ताक़तें (बहुबुद्धिमत्ताएँ) हैं तो यह बात भी निश्चित है कि शिक्षण विधियों को भी तदनुसार अलग-अलग होना चाहिए। साथ ही शिक्षण की विभिन्न शैलियों को अपनाना भी आवश्यक है। सभी बच्चों की शिक्षा में यह बात पहले से ही मानकर चलनी चाहिए कि उन्हें पर्याप्त देखभाल, उचित सुविधाएँ, स्वास्थ्य की अच्छी देखभाल व पोषण, स्कूल के अन्दर और बाहर दोनों जगहों पर सीखने के अवसर, समर्थनकारी वयस्क (माता-पिता और शिक्षक) तथा एक सुरक्षित व भयरहित माहौल मिलना चाहिए, विशेष रूप से पूर्व-विद्यालयीन स्तर पर। यदि हम यह मानते हैं कि हर बच्चा सीख सकता है तो ऐसा हो यह सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी भी हम वयस्कों की है, न कि बच्चों की।

कुछ समूह दूसरों की तुलना में अधिक असुरक्षित होते हैं, जैसे कि लड़कियाँ, प्रवासी श्रमिकों के बच्चे, संघर्षपूर्ण क्षेत्र में रहने वाले बच्चे, ड्रॉपआउट और पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चे आदि। अन्य कारक भी बच्चों के अधिगम को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ हैं— प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, यहाँ तक कि जहाँ सुविधाएँ हैं वहाँ भी प्रशिक्षण का ख़राब होना,अपर्याप्त शिक्षण सामग्री, ख़राब बुनियादी ढाँचे और पोषण। यह सभी बातें बच्चों को अधिगम से दूर रखती हैं। भारत में भाषा भी एक प्रमुख कारण है। और हालाँकि हम यह दावा करते हैं कि बच्चे अपनी गति से सीखते हैं, पर

हमारी मूल्यांकन प्रक्रियाएँ इतनी मानकीकृत होती हैं कि उनसे व्यापक विषमताएँ पैदा होती हैं। सभी को एक जैसी परीक्षाएँ, और बाद में प्रवेश परीक्षाएँ लिखनी और पास करनी होती हैं।

स्कूली शिक्षा द्वारा प्रदान किए जाने वाले कौशलों के बिना बच्चों को अवसरों से वंचित किया जाता है। उनके लिए ज़िम्मेदार नागरिकों के रूप में ख़ुद के लिए बेहतर भविष्य का निर्माण करने; सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने और अपनी ओर से सर्वश्रेष्ठ लौटाने की सम्भावना कम हो जाती है। ऐसे ही कई सरोकारों को सम्बोधित करने के लिए इस अंक में देश भर के लेखकों के लेखों को शामिल किया गया है। वे दृढ़ता के साथ यह बात स्थापित करते हैं कि वास्तव में हर बच्चा सीख सकता है बशर्ते कि शिक्षक समानुभूति और सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाएँ। फोकस लेख इस प्रकार के विवरणों की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं और अन्य लेख इस बात की पुष्टि करते हैं कि यदि रवैया सही हो तो क्या कुछ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए,एक लेख में लेखक देश के एक ऐसे दूरदराज़ हिस्से में बच्चों को शिक्षित करने के लिए किए गए प्रयासों का वर्णन करते हैं जहाँ विविध बोलियाँ बोली जाती हैं। एक अन्य लेखक बताते हैं कि अधिगम को बढ़ाने के लिए पूर्ण रूप से की गई सहभागिता और सहानुभूतिपूर्ण रवैये से क्या हो सकता है। एक लेखक विशिष्ट पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में वर्तमान शिक्षा नीतियों का विश्लेषण करते हैं और एक लेख में गणित, जिसे आम तौर पर ‘डरावना’ विषय माना जाता है, के शिक्षण पर व्यावहारिक सुझाव दिए गए हैं। एक लेख में भाषा के अधिग्रहण पर चर्चा करते हुए पढ़ने और साक्षरता, जो उच्च शिक्षा का आधार हैं, के लिए कहानियों और चित्रों का कल्पनाशील उपयोग करने की अनुशंसा की गई है। सभी लेखों के माध्यम से जो एक बात उभरकर आती है वह यह है कि विचारशीलता, सहानुभूतिपूर्ण समझ और कल्पना की सहायता से हर बच्चे में मौजूद सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाओं को उजागर किया जा सकता है,लेकिन अकल्पनीय और असंगत निर्वहन के कारण ऐसा करने से हतोत्साहित किया जाता है।

आपके फीडबैक का स्वागत है। हम अपने पाठकों को सूचित करना चाहते हैं कि लर्निंग कर्व के अगले अंक से एक नया स्तम्भ शुरू किया जा रहा है, जिसका शीर्षक है— सम्पादक को पत्र —जिसमें आपके विचारों, सुझावों और आलोचनाओं को स्थान दिया जाएगा। कृपया अपने पत्र नीचे दी गई ईमेल आईडी पर भेजें।

प्रेमा रघुनाथ
मुख्य सम्पादक
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org
अनुवाद : नलिनी रावल

इस अंक में

इस अंक में

सबके लिए शिक्षा | एक सम्भावित सुन्दर चित्र

अनन्त गंगोला

सबके लिए शिक्षा की अवधारणा समावेशी समाज की नींव है, लेकिन इसे केवल शिक्षा के मौजूदा विचार और उसकी प्रणाली का विस्तार करके सम्भव नहीं किया जा सकता है। इसके लिए तो सोच में एक वृहत बदलाव की आवश्यकता है। इसीलिए शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में मान्यताओं, विचारधाराओं, अभ्यासों और संसाधनों के बारे में सोचना आवश्यक है और इस बात का आकलन करना चाहिए कि यह उपयुक्त हैं या इनमें मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

यात्रा एक सपने की

सबके लिए शिक्षा का विचार एक सपना है जिसमें राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को इसलिए शिक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षा का किसी व्यक्ति और देश के विकास में अगाध महत्त्व है। अनुकरण करने के लिए यह अपने आप में एक उदात्त आदर्श है और समाज को निरक्षरता से साक्षरता की ओर ले जाने के लिए एक बहुमूल्य उपकरण भी। यह बहिष्करण से लेकर समावेशन तक, असमानता से समानता तक, अन्याय से न्याय तक, संघर्ष से शान्ति तक सामाजिक परिवर्तन के लिए एक वाहन भी हो सकता है। इसलिए यह सपना बहुआयामी है जिसके साथ प्रभाव और कार्यान्वयन की विविध अपेक्षाएँ जुड़ी हैं। प्रारम्भ में हरेक को शिक्षित करने की इच्छाशक्ति की कमी थी, जिसकी वजह से शिक्षा केवल समाज के उच्च वर्गों तक सीमित रही। यह एक ऐसा समाज था जिसमें बहुस्तरीय वर्ग सम्बन्धी गम्भीर मतभेद थे और शायद बदलाव इसलिए नहीं हो पाया क्योंकि विचारशीलता, सामूहिक सामाजिक विवेक तथा बुनियादी ढाँचे की कमी थी या इन सभी की कमी थी।

आज़ादी के पहले पाँच दशकों तक शिक्षा अधिकांश लोगों तक नहीं पहुँची थी। यह दूरी केवल स्कूल भवन से भौतिक दूरी नहीं थी, बल्कि एक विश्वास प्रणाली और शैक्षिक प्राथमिकताओं की अनुपस्थिति थी। इसने समावेशी समाज की ओर बुनियादी क़दम उठाने के लिए शिक्षा की शक्ति को नज़रअन्दाज़ कर दिया था। कई क्षेत्रों में स्कूल ही नहीं थे और अगर कहीं बच्चे और स्कूल दोनों थे भी, तो उसमें सभी को शामिल करने का संकल्प नहीं था।

संविधान के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण (यूनिवर्सल एलीमेंट्री एजुकेशन — यूईई) के साथ चौदह वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिदेश दिया गया था और बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इस लक्ष्य को ध्यान में रखा गया था। लेकिन तीर निशाने पर लग नहीं पाए : राधाकृष्णन आयोग (1948-49) और मुदलियार आयोग (1952-53) ने क्रमशः विश्वविद्यालय और माध्यमिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया और केवल कोठारी आयोग (1964-66) ने प्राथमिक शिक्षा को शामिल करने के लिए अपने दायरे का विस्तार किया, हालाँकि सार्वभौमिकता अभी भी महत्त्वकांक्षी सोच बनी हुई थी।

एक सुगम मार्ग

फिर सबके लिए शिक्षा पर विश्व सम्मेलन (ईएफए, जोमिटिएन, थाईलैंड, मार्च 1990) और वर्ल्ड एजुकेशन फोरम (डेकार, सेनेगल, अप्रैल 2000) में भारत की ओर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान गया। बाहरी फंडिंग व निजी संगठनों के बीच तालमेल से निजी-सार्वजनिक भागीदारी हुई। 1994 में सरकार के ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी), 2000 में प्रमुख कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) और उसके बाद 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम की शुरुआत हुई।

पिछले तीन दशकों में, प्राथमिक स्तर पर स्कूलों, शिक्षकों और विद्यार्थियों की संख्या में तेज़ी-से वृद्धि हुई है। ऐसे कई समुदाय, जो ऐतिहासिक रूप से औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र से बाहर थे, इसके अन्तर्गत आ गए। इनमें दूरदराज़ के स्थानों में या कठिन इलाक़ों में रहने वाले ऐसे आदिवासी और दलित समुदाय आते हैं जिन्हें सेवाएँ व सुविधाएँ नहीं मिल पातीं या पर्याप्त रूप से सेवाएँ नहीं मिल पातीं। इसमें बड़ी संख्या में लड़कियाँ भी शामिल हैं। इन सभी पहलों के कारण अभिभावकों के मन में आशा और आकांक्षाओं की लहर दौड़ गई क्योंकि इस अवधि के दौरान जिन बच्चों ने स्कूल में प्रवेश लिया, उनके अभिभावक या तो कभी स्कूल नहीं गए थे या प्राथमिक कक्षाओं से आगे की शिक्षा नहीं पा सके थे।

सबके लिए शिक्षा : एक प्रकाश स्तम्भ

नब्बे के दशक में शुरू हुए डीपीईपी की उपलब्धियाँ असाधारण रही हैं। सबके लिए शिक्षा के विचार ने समान अवसरों का निर्माण करके हमारे समाज को बदल दिया है और वर्तमान समय में भी निराशा, दुख, असमानता और ग़रीबी से घिरे कई लोगों में उत्साह, आत्मविश्वास, विचार और ज्ञान का

संचार किया है। आज, समुदायों के अनेक बच्चे और उनके अभिभावक अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद शिक्षा से लाभान्वित हुए हैं। और हालाँकि भारत में शिक्षा या विद्या का विचार नया नहीं है, फिर भी सबके लिए शिक्षा का विचार अपेक्षाकृत नया है। सामाजिक परिवर्तन के लिए मौन मंथन हुआ है। यह दीर्घ काल से संजोए हुए सपने को साकार करने का मौक़ा रहा है।

सरोकार : रुकावटें

यद्यपि वर्तमान समय में समावेशन के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा गया है, लेकिन हमें ख़ुद से पूछना होगा कि क्या हम सबके लिए शिक्षा के इस विस्तारित विचार के साथ समावेशी समाज को देखने, स्वीकार करने और उसकी ओर क़दम बढ़ाने के लिए तैयार हैं? क्या हम सामूहिक रूप से अधिक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण विश्व की इच्छा रखते हैं?

दोनों का जवाब नहीं है। जोमिटिएन सम्मेलन (1990) के बाद 1997 में हुई डेकार घोषणा ने एक अत्यावश्यक जनादेश तैयार किया और वित्तीय संसाधनों को उपलब्ध कराया ताकि राष्ट्र सबके लिए शिक्षा को अपना सकें। इसके परिणामस्वरूप एक प्रमुख कार्यक्रम एसएसए का शुभारम्भ हुआ। नए स्कूल खुले, नए विद्यार्थियों का नामांकन हुआ और नए शिक्षकों की भर्ती हुई।

लेकिन शिक्षक की तैयारी और अकादमिक समर्थन के लिए नई संरचनाओं को सुधारना और बनाना एक ऐसा महत्त्वपूर्ण पहलू था, और अभी भी है जिस पर लम्बे समय से ध्यान नहीं दिया गया है। इसके कारण अपर्याप्त या पूरी तरह से अनुपस्थित शैक्षिक समर्थन प्रणालियों के साथ ही बिना तैयार किए/अप्रशिक्षित शिक्षकों की भर्ती हुई। इस बात की समझ भी सीमित ही थी कि स्कूलों में आई विद्यार्थियों की इस बाढ़ से कैसे निपटा जाए, जिनमें से कई विद्यार्थी अपने परिवार में पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी थे। बच्चे स्कूल की भाषा और संस्कृति को समझने में असमर्थ थे और शिक्षक यह नहीं समझ पा रहे थे कि बच्चों के मिश्रित और बड़े समूह की भाषा या संस्कृति से कैसे निपटा जाए। देश के दूरदराज़ के हिस्सों के सरकारी स्कूलों में नियुक्त अधिकांश शिक्षकों के सामने यह चुनौती थी कि वे अपने से अलग समुदायों में कैसे रहें या इतनी दूर स्थित स्कूलों में कैसे आएँ-जाएँ। अप्रशिक्षित और कम वेतन पाने वाले शिक्षक सबसे ज़्यादा ज़रूरतमन्द तथा वंचित बच्चों की शिक्षा का ध्यान रख रहे थे। इन सारे मुद्दों की सही समझ न होने के कारण एक ग़ैर-निष्पादित सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली, ठीक से न सीखने वाले बच्चों, वियोजित समुदायों और हतोत्साहित शिक्षकों का निर्माण हुआ।

मूल्यांकन करने का समय

इसे कैसे सुधारा जा सकता है? क्या मौजूदा समझ, सरोकारों, संरचनाओं, भावनाओं और रणनीतियों के साथ सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना सम्भव है या इसके लिए नई समझ, नए सरोकारों व भावुकताओं के साथ नई रणनीतियों, संरचनाओं और मानदण्डों की आवश्यकता है?

बड़े बदलावों का मतलब है कई सारे छोटे बदलाव।

पहला परिवर्तन था विभिन्न समुदायों और लिंग के अ-पंजीकृत बच्चों का सरकारी स्कूल में प्रवेश, साथ ही विशेषाधिकार प्राप्त लोगों का इन स्कूलों से अलगाव। वे निजी स्कूलों में चले गए थे। नतीजतन, सरकारी स्कूल उन बेहद ग़रीब पृष्ठभूमि वालों के स्कूल बन गए जिनके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

दूसरा परिवर्तन था सरकारी शिक्षा प्रणाली से जुड़ने के लिए ग़ैर-सरकारी संगठनों के लिए स्थान बनना। ग़ैर-सरकारी संगठनों ने स्थानीय, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर स्कूलों और सचिवालय में अलग-अलग भूमिकाएँ निभानी शुरू कर दीं। टीच फॉर इंडिया (टीएफआई), कैवल्य एजुकेशन फाउण्डेशन, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन और कई अन्य संगठनों के योगदानों ने ज़मीनी स्तर पर प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया। अब इस क्षेत्र में अधिक लोग और समूह शामिल हैं जो विमर्श के लिए विभिन्न प्रकार के विचारों को सामने ला रहे हैं।

इन सभी घटनाक्रमों का सकारात्मक पक्ष यह है कि जो लोग छूट गए थे, वे हमारे समय के सबसे महत्त्वपूर्ण जीवन कौशल यानी पढ़ना और लिखना सीखने के दायरे में आ गए। कई विद्वान और सामाजिक रूप से जागरूक लोग गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की ज़िम्मेदारी साझा करने लगे। बच्चों के प्रारम्भिक वर्षों के स्वास्थ्य, पोषण और सामाजिक नींव को बेहतर बनाने के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन — ईसीई) का बहुत समर्थन हुआ। वैसे कहानी का दूसरा पक्ष यह है कि इसके बारे में आधी-अधूरी प्रतिबद्धताएँ और राजनीतिक इच्छाएँ थीं; समाज का बड़ा हिस्सा इसे लेकर पूर्ण रूप से उदासीन था, और; ज़रूरतों और माँगों को समझने के लिए शैक्षिक अनुसन्धान और नवाचार भी नहीं थे। इसलिए, अधिगम के परिणामों और बच्चों के अधिगम सम्बन्धी अनुभवों पर पड़ने वाला तात्कालिक प्रभाव और असर उत्साहजनक नहीं रहा है। सकारात्मक पक्ष के पहले विवरण से आशा जगती है और वह व्यापक निराशा से लड़ने में मदद करती है, लेकिन दूसरा विवरण जाने-अनजाने पहले से ही हताश समाज में और अधिक निराशा फैलाता है।

मेरी समझ और परिप्रेक्ष्य के अनुसार, सबके लिए शिक्षा का सुझाव एक नई और चुनौतीपूर्ण सामाजिक अवधारणा है। मौजूदा मानकों के माध्यम से इस नए सन्दर्भ का मूल्यांकन केवल स्थिति में निहित समस्याओं को बाहर लाता है, जिसके परिणामस्वरूप अपूर्ण और ग़लत चित्रण सामने आता है। यह बात शिक्षा के प्रयासों में लगे लोगों को और निराश कर सकती है। इसलिए, इस विशाल परियोजना के लिए नए मानकों को खोजने के लिए एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

बदलते हुए सन्दर्भों को समझना

हमारा देश न केवल तरह-तरह की विविधताओं से भरा है, बल्कि तरह-तरह की असमानताओं से भी भरा है। सबसे पहले तो बच्चे, शिक्षक और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले अन्य लोग एक ऐसे समाज से सम्बन्ध रखते हैं जो परम्परागत रूप से पितृसत्तात्मक और सामन्तवादी हैं। दूसरे, स्कूल भी इन्हीं और ऐसी ही कई अन्य सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक असमानताओं के बीच में कार्य करते हैं। तीसरा आयाम यह है कि यदि शिक्षा को सामाजिक-राजनीतिक समानता, आपसी भाईचारे या सहृदयता से अलग करके देखा जाए तो वह अपना अर्थ खो बैठेगी।

आइए इस मुद्दे को कुछ घटनाओं के आलोक में देखें। मध्य भारत के एक ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट) के प्राचार्य निरीक्षण के लिए अपने इलाके के एक स्कूल में पहुँचे। उपस्थिति रजिस्टर को देखते समय उन्होंने महसूस किया कि कुछ बच्चों के नाम अटपटे थे। प्राचार्य ने शिक्षक से इस विषय पर चर्चा की। शिक्षक ने कहा, "सर, मैं क्या कर सकता हूँ? उनके अनपढ़ माता-पिता ने उनका नाम इसी तरह से रखा है।"

प्राचार्य ने बच्चों को अपने माता-पिता को बुलाने के लिए घर भेजा। स्कूल गाँव के बग़ल में ही था जहाँ ज़्यादातर लोग 'बहेलिया' समुदाय के थे। वे पक्षियों को पकड़ने का अपना काम सुबह या शाम को किया करते थे, इसलिए वे शीघ्र ही स्कूल आ पहुँचे। फिर प्राचार्य ने बच्चों के नाम को अधिक साफ़-सुथरे या 'सभ्य' रूपों में बदलना शुरू किया, उदाहरण के लिए, चिन्ता बाई का नाम बदलकर चेतना कुमारी कर दिया गया, कल्लीबाई को कलावती में बदल दिया गया। पता नहीं यह बात माता-पिता को पसन्द आई या नहीं पर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं जताई। उन्होंने शायद इसे अपने बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करने की शर्त के रूप में स्वीकार कर लिया था।

चिन्ता बाई और कल्ली के नाम बदलने से कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल खड़े होते हैं :

- अगर स्कूल इन बच्चों के नामों को जगह नहीं देता तो क्या उनके जीवन के अनुभवों को जगह देगा?
- क्या शिक्षा केवल समाज के उस वर्ग के लिए है जिसका प्रतिनिधित्व चेतना कुमारियों और कलावतियों द्वारा किया जाता है?
- क्या किसी विशेष समुदाय को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी सांस्कृतिक पहचान को त्यागना होगा?

अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं।

स्कूलों में उन बच्चों की तारीफ़ करना एक आम बात है जो सबसे साफ़ कपड़े पहनते हैं और उन लोगों को दण्डित किया जाता है जिनके कपड़े गन्दे होते हैं। इसे ध्यान से देखने पर हमारा ध्यान उस भावनात्मक क्षति की ओर आकर्षित होगा जो ऐसी घटनाओं के कारण बच्चों को हो सकती है। भाषा भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इसका मानक रूप, उपयुक्त उच्चारण आदि पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए पहचान का संकट पैदा करते हैं। जिसने भी इसका अनुभव किया है वह जानता है कि यह सब कितना अपमानजनक होता है और व्यक्ति के आत्मविश्वास को हिला सकता है। इन मामलों से जूझते बच्चों को शिक्षक अकसर 'यह नहीं सीख सकते' की श्रेणी में रख देते हैं।

यह सभी उदाहरण शिक्षा के बारे में समझ और संवेदनशीलता पर सवाल उठाते हैं। कुछ बड़े सवाल इस प्रकार हैं :

- क्या बच्चों को एक साँचे में फिट हो जाना चाहिए या शैक्षिक प्रणालियों को उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के अनुसार बदलने के लिए पर्याप्त लचीला होना चाहिए?
- हम इस बात को कैसे स्थापित करें कि बच्चों के मौजूदा ज्ञान और स्कूल में ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के बीच की अन्तःक्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है?
- इस तरह की समझ शैक्षिक प्रक्रिया का हिस्सा कैसे बन सकती है?

आइए, अब हम शिक्षकों की तैयारी और स्वायत्तता पर एक नज़र डालते हैं। इस सन्दर्भ में, मुझे अपने शिक्षण के दिनों की एक घटना याद आ रही है जो हमें विचार करने पर मजबूर कर देती है। एक दिन मेरी कक्षा के बच्चे गुन्दीलाल नामक एक बच्चे की लगातार शिकायत कर रहे थे। मैंने बच्चों को कुछ काम दिया था और मैं अपने कामों को पूरा करने में व्यस्त था, इसलिए मेरा पूरा ध्यान क्लास पर नहीं था। जब शिकायतों को नज़र अन्दाज़ करना मुश्किल हो गया तो मैंने गुन्दीलाल को बुलाया और सख़्ती से उससे कहा, "तुम बहुत शरारत कर रहे हो! कान पकड़ो।"

गुन्दीलाल ने कोई जवाब नहीं दिया, तो मैंने फिर से ऊँचे स्वर में अपनी बात दोहराई। इस बार, उसने आगे आकर मेरे कान

पकड़ लिए। उसकी इस हरक़त पर पहले तो मुझे आश्चर्य हुआ और ग़ुस्सा भी आया लेकिन फिर मुझे महसूस हुआ कि मैंने तो केवल कान पकड़ने का निर्देश दिया था। इसलिए ग़लती गुन्दीलाल की नहीं थी। उसने 'कान पकड़ने' की बात को सज़ा के साथ नहीं जोड़ा था और न ही उसे इस तरह के व्यवहार का कोई पिछला अनुभव था।

ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं जिनके बारे में हम यह मानकर चलते हैं कि सभी बच्चे उनके बारे में जानते हैं, पर हम यह भूल जाते हैं कि स्कूल का माहौल और वहाँ के तौर-तरीक़े स्कूल जाने वालों की पहली पीढ़ी के लिए नए हैं। यह उन्हें न केवल अजीब बल्कि सहज ज्ञान के विपरीत भी लग सकते हैं।

मेरी यात्रा...

मध्य प्रदेश के रायसेन ज़िले में जंगल के बीच स्थित एक आदिवासी गाँव में काम करने के अनुभव ने मुझे बहुत-सी बातें सिखाईं। लेकिन जिस बात का उल्लेख मैं यहाँ करना चाहता हूँ, वह इस लेख के केन्द्रीय विचार यानी सबके लिए शिक्षा से सीधे तौर पर सम्बन्धित है।

मैंने गोंड आदिवासी समुदाय के बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। मुझे जल्द ही पता चल गया कि जिन्होंने सदियों से अपना समय बकरियों को चराने, खेतों में पक्षियों को उड़ाने, तेंदू पत्ते या महुआ इकट्ठा करने, मूसरी खोदने, पेड़ों पर चढ़ने और नदियों में तैरने में बिताया है, उन्हें चार-पाँच घण्टों तक स्कूल में एक जगह पर बैठाना अपने आप में एक बड़ी चुनौती होगी। इन बच्चों को एक दिन में कई किलोमीटर पैदल चलने और शारीरिक श्रम करने की आदत थी।

इतने लम्बे समय तक एक जगह पर बैठना उनके लिए कैसे सम्भव होगा? ऐसे में मैं उनमें पढ़ने और लिखने की क्षमता कैसे विकसित करूँगा? उन लोगों के लिए रविवार की छुट्टी का भला क्या महत्त्व था जिनका साप्ताहिक बाज़ार मंगलवार को लगा करता था? जब फ़सल बोने या काटने का समय आता था तो छोटे किसानों के घरों के बच्चों की भूमिका कैसे बदल सकती थी? इस तरह के सन्दर्भों का स्कूल के प्रशासन के साथ क्या सम्बन्ध था? अलग-अलग स्तरों पर स्कूलों के साथ काम करने वाले सभी लोगों के सामने यह सवाल आने चाहिए। यह सवाल हमें स्कूल को एक अलग नज़रिए से देखने को बाध्य करते हैं। हम स्कूल की इन मौजूदा मान्यताओं से हटकर सोच पाते हैं कि स्कूल एक निर्दिष्ट स्थान है जिसमें एक दिन को 45 मिनट की अवधि के कालखण्डों की एक समय सारिणी में विभाजित किया जाता है। बच्चों के एक अलग शारीरिक और सांस्कृतिक उन्मुखीकरण के लिए पूरी शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन की आवश्यकता है, जिसमें उनकी आदतों और रुचियों को ध्यान में रखा जाए और शिक्षकों को स्वायत्तता दी जाए।

जब मैं एक शिक्षक के रूप में काम करता था, तब परिस्थितियाँ मेरे लिए कुछ अनुकूल थीं। जैसे कि वह स्कूल सरकारी स्कूल नहीं था और उसे सरकारी पंजीकरण की आवश्यकता भी नहीं थी। साथ ही, गाँव के लोगों के अनुभव या आकांक्षाओं में शिक्षा की कोई निश्चित धारणा नहीं थी। इन दोनों बातों ने मुझे बच्चों के हितों और सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए नए विचारों के साथ प्रयोग करने के लिए आवश्यक लचीलापन प्रदान किया। मैंने एक शिक्षक के रूप में, अचानक प्राप्त इस स्वायत्तता का पूरी तरह से उपयोग किया। इसके परिणाम अपेक्षाओं से बेहतर निकले। अधिकांश बच्चों ने साक्षरता की दुनिया में बहुत रुचि के साथ प्रवेश किया और उनमें से लगभग आधे बच्चों ने स्कूल के आगे भी अपनी शिक्षा जारी रखी। उन्होंने, अपने गाँव और आस-पास के अन्य गाँवों के बच्चों की तुलना में, शिक्षा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल कीं। इन बच्चों के पास अपना आत्मविश्वास या सांस्कृतिक पहचान खोने का कोई कारण नहीं था।

सबके लिए शिक्षा — आगे का मार्ग

एक सकारात्मक कथ्य के निर्माण और मूल विचार के आस-पास की नकारात्मक धारणाओं का मुक़ाबला किए बिना कोई भी परिवर्तनकारी सामाजिक परिवर्तन नहीं हो पाया है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर (और प्रारम्भिक स्तर तक कुछ स्तरों पर) सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली एक ऐसी जगह बन गई है जो आवाज़हीन या विकल्पहीन समुदायों के बच्चों की सेवा करती है। कुलीन और मध्यम वर्ग के बच्चों का सरकारी प्रणाली से निजी स्कूलों में जाना एक तरह से स्कूल और प्रणाली दोनों से दूर चले जाना है। इससे सरकारी शिक्षा प्रणाली की प्रतिकूल आलोचना हुई है— बिना इस बात पर ध्यान दिए कि जो बच्चे सरकारी स्कूलों में हैं उनके अभिभावक व शिक्षक समुदाय के साथ-साथ स्वयं सरकार इससे किस प्रकार प्रभावित होगी। इस तरह से सार्वजनिक स्कूली शिक्षा से निजी स्कूली शिक्षा में जाना निराशावाद को जन्म देता है और समाज के बीच की खाई को बढ़ाता है।

जब कोई बच्चा स्कूल की दहलीज़ पार करता है तो वह अपने साथ न केवल अपना बस्ता, स्लेट व चॉक, किताबें और नोटबुक लेकर आता है, बल्कि अपनी पूरी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी साथ लाता है : उसका भरा हुआ या ख़ाली पेट, उसकी जिज्ञासाएँ, उसके डर, संकोच, मातृभाषा और अन्य पहलू भी उसके साथ चले आते हैं। और अगर यह बच्चा एक ऐसे परिवार से आता है जिसका शिक्षा की संरचना

के साथ पहले कोई सम्बन्ध नहीं रहा है तो स्कूल और शिक्षकों के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वे और भी अधिक लचीले बनें। यदि शिक्षक या विद्यालय द्वारा की गई माँगें सख़्त हैं और यदि वे बच्चे की ज़रूरतों के अनुसार झुकने को तैयार नहीं हैं, तो इसका केवल एक परिणाम होता है— विफलता। और इस परिणाम को समाज द्वारा बच्चे की विफलता के रूप में देखा जाता है। गुन्दीलाल, चिन्ताबाई और कल्ली जैसे पहले से ही वंचित बच्चों के स्कूल में सफल होने के लिए उन अवसरों का निर्माण करने की आवश्यकता होगी, जिनमें उनकी संस्कृति, अनुभव और प्रतिभाओं को सम्मानपूर्वक शामिल किया जाए। स्कूल में जो कुछ भी होता है, उसे इन बच्चों की ज़रूरतों और पृष्ठभूमि की परीक्षा में सफल होना पड़ेगा।

सबके लिए शिक्षा के इस कार्य में शामिल होने वाले लोगों की एक लम्बी सूची है— मंत्रियों से लेकर अधिकारियों, शिक्षाविदों और शिक्षकों तक। स्वैच्छिक संगठनों के लोग भी अब इस सूची में शामिल हो गए हैं। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की है। शिक्षकों के लिए विचार, संसाधन, स्वायत्तता और सम्मान सुनिश्चित करना मुख्य रूप से सरकारी शिक्षा संरचना की ज़िम्मेदारी है। इसमें नीति निर्माता, प्रशासक और प्रशिक्षण संस्थान शामिल हैं। वर्तमान समय में शिक्षकों और शिक्षा की स्थिति के बारे में सवाल उठाने से पहले हमें यह सवाल पूछना चाहिए : क्या शिक्षकों के लिए सबके लिए शिक्षा जैसे कार्य के लिए उचित और पर्याप्त समझ, संसाधन और सम्मान उपलब्ध है? मेरा तो यह विचार है कि शिक्षक को सबके लिए शिक्षा के सन्दर्भ में जिस तरह की तैयारी की ज़रूरत है, वह सरकार या समाज द्वारा प्रदान नहीं की जा रही है, हालाँकि यह स्पष्ट नहीं है कि इसका कारण इच्छाशक्ति की कमी है या संसाधनों की कमी है। यदि हाथ में लिया हुआ काम चुनौतीपूर्ण और नया है और इसे प्राप्त करने की तैयारी अधूरी है तो भला बड़े पैमाने पर सकारात्मक परिणामों की उम्मीद कैसे की जा सकती है? यदि हम सबके लिए शिक्षा को समावेशी समाज की दिशा में एक मूलभूत क़दम मानते हैं; तो फिर इससे उभरने वाले सरोकार भाषा, गणित और अन्य विषयों के पारम्परिक शिक्षण और आकलन के सन्दर्भ में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के हमारे सरोकारों तक कैसे सीमित रह सकते हैं? हमें शिक्षा से समाज की अपेक्षाओं को फिर से परिभाषित करना होगा तथा पाठ्यक्रम और शिक्षक की तैयारी को एक नए परिप्रेक्ष्य में देखना होगा।

इस वक़्त एक ऐसी साझा समझ विकसित करने की बहुत आवश्यकता है जो एक ओर सामूहिक चेतना में सबके लिए शिक्षा को बेहतर समाज के निर्माण के केन्द्र में रखे, उन लोगों को प्रेरित करे जो इस सामाजिक परियोजना के लिए काम कर रहे हैं और दूसरी ओर यह इस परियोजना के पथप्रदर्शक शिक्षकों का सम्मान व समर्थन करे और उनका स्वागत करे।



अनन्त गंगोला ने मध्य प्रदेश के नीलगढ़ गाँव में रहते हुए, कई वर्षों तक आदिवासी बच्चों के लिए एक वैकल्पिक शिक्षा बनाने की दिशा में काम किया। इस दौरान उन्हें आदिवासी लोगों के जीवन और परिवेश का गहराई से अध्ययन करने और उसे समझने का अवसर मिला। बाद में वे ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) में ज़िला समन्वयक रहे। पिछले पन्द्रह वर्षों से वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ हैं और उन्हें ज़मीनी स्तर के साथ-साथ ज़िला और राज्य स्तर पर काम करने का अनुभव है। उनसे anantgangola.ag@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

सबके लिए शिक्षा | रास्ते की चुनौतियाँ

हृदय कान्त दीवान

यह विचारधारा काफ़ी नई है कि शिक्षा सबके लिए हो और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी पढ़ना और लिखना सीखें। साथ ही सभी के पास शिक्षा के सभी स्रोतों और विकल्पों तक पहुँच हो। यह उस आन्दोलन का हिस्सा है जो एक ऐसे समाज को विकसित करना चाहता है जो सभी मनुष्यों का सम्मान करे और उनके साथ समानता का भाव रखे। यह आन्दोलन एक सदी से भी कम पुराना है और अभी तक दुनिया का एक बड़ा हिस्सा इस आन्दोलन में शामिल नहीं है। नीति और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा घोषणाओं के बावजूद यह सिद्धान्त उन जगहों पर भी व्यापक रूप से स्वीकृत नहीं है जहाँ यह अनिवार्य है।

सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखना

समाज के सभी सदस्यों को अवसर प्रदान करने का यह सूक्ष्म विचार ऐतिहासिक रूप से प्रसारित असाम्यपूर्ण व्यवहार और अधिकांश लोगों के लिए अवसरों की कमी वाली स्थिति से दूर हटने की ओर एक बड़ा क़दम था। भले ही बच्चों के लिए शिक्षा का विचार किसी न किसी रूप में पहले के कई समाजों का हिस्सा रहा हो, लेकिन इनमें से अधिकांश में, सभी बच्चों को प्रदान की गई शिक्षा समान नहीं थी और यह अनिवार्य भी नहीं थी। कई स्थानों पर अलग-अलग पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के स्कूल थे, यहाँ तक कि उनकी पाठ्यचर्या की अपेक्षाएँ और तरीक़े भी अलग-अलग थे। इन स्कूलों का सिद्धान्त और स्कूलों को निर्देशित करने वाला व्यापक सिद्धान्त काफ़ी हद तक सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए था। अठारहवीं शताब्दी के ज़ार निकलस का यह कथन इस बात को अच्छी तरह समझाता है :

“यह ज़रूरी है कि प्रत्येक स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषय और पढ़ाने के तरीक़े, बच्चों के भविष्य के लक्ष्य के अनुसार ही हों ताकि प्रत्येक बच्चा उस स्तर से ऊपर उठने का इरादा ना करे जो कि उसका प्रारब्ध माना गया है।”

शिक्षा का यह विचार उस विचार से बहुत भिन्न है, जो ऐसी सामाजिक गतिशीलता की आशा करेगा और उसे अनुमत करेगा जिसमें सामाजिक स्थितियों और सामाजिक पदानुक्रम की निरन्तरता क़ायम रहे, जो असाम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के विचार की बुनियाद का दर्शन है। यह हाल के कुछ दार्शनिक दृष्टिकोणों के नितान्त विपरीत है। उदाहरण के लिए हाल ही में व्यक्त किए गए मानव क्षमता सिद्धान्त को ही लीजिए। अमर्त्य सेन इसके एक मुख्य प्रस्तावक हैं। इस सिद्धान्त का तर्क है कि शिक्षा बच्चों की क्षमताओं और आकांक्षाओं के निर्माण का तरीक़ा है ताकि वे समाज का हिस्सा बनने में अपनी भूमिका ख़ुद चुन सकें। यह चुनाव करते समय वे उन सभी सम्भावनाओं से अवगत हों जो उनके सामने हैं और उनमें से किसी भी भूमिका में ख़ुद को सशक्त महसूस करें। शिक्षा से की जाने वाली यह अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और शिक्षा के अधिकार की योजना में की गई अपेक्षा से कहीं अधिक है। अभी तो निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार भी बहुत संघर्ष के साथ आया है और इसके कार्यान्वयन के लिए प्रतिबद्धता में बहुत रिक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए, यह उतने स्पष्ट रूप से शिक्षा के उद्देश्यों और मंशाओं को निर्दिष्ट नहीं करता है, जिस तरह से मानव क्षमता की रूपरेखा करती है। तो, मुद्दा यह है कि हालाँकि सारे समाज चाहते हैं कि बच्चे किसी तरह से शिक्षित हों, लेकिन दार्शनिक सिद्धान्तों और उद्देश्यों में भिन्नता के कारण शिक्षित करने की मंशा व सोची गई प्रणालियाँ बहुत अलग हो सकती हैं। इसलिए हमें यह सोचने की आवश्यकता है कि सारे समाज सभी बच्चों को शिक्षित क्यों करना चाहते हैं और उनके लिए उपयुक्त शिक्षा क्या है।

इस बात की आवश्यकता तो स्पष्ट है कि इन्सानों के सभी बच्चों को समाज द्वारा सिखाया जाए और उनमें सीखने की क्षमता हो। यह इन्सान के रूप में विकास और समाजीकरण की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा है। उपलब्ध मानव ज्ञान में वृद्धि होने के कारण शिक्षा की आवश्यकता परिवार द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा से अधिक होती गई; अतः शिक्षकों का और कुछ संगठित मंच तथा संरचनाओं का उदय हुआ ताकि वे बच्चों को पढ़ा सकें। परिणामस्वरूप, विभिन्न समाजों और समुदायों में विभिन्न प्रकार के स्कूल सामने आए। यह शिक्षक और यह संगठित मंच आजकल के स्कूलों की प्रकृति से बहुत अलग थे। उन्हें न तो राज्य द्वारा वित्तीय पोषण मिलता था, न ही वे राज्य द्वारा चलाए जाते थे। सिर्फ़ यही नहीं वे सभी के लिए उपलब्ध नहीं थे और लोकहित के लिए भी नहीं थे। वे काफ़ी हद तक कुलीन वर्ग की भलाई और राज्य के रखरखाव के लिए थे।

उस समय की शिक्षण विधियाँ मौखिक थीं और इनमें उन नियमों, विनियमों, आदर्शों और रीति-रिवाजों का सार शामिल था जिन पर समुदाय आधारित थे। सिखाए जा रहे शास्त्रों में जीवन और अस्तित्व के परिप्रेक्ष्य और दृष्टिकोण का विकास भी शामिल था। यह सिखाए जाने वाले व्यवहार के तरीक़ों और रीति-रिवाजों में अन्तर्निहित था। इसके अलावा प्रकृति, तर्क के नियम, विज्ञान, व्यापार और शिल्प के साथ-साथ उपलब्ध चिकित्सा ज्ञान के बारे में भी सिखाया जाता था। इन्हें सिखाने के कई आवश्यक सिद्धान्त समान हो सकते हैं, लेकिन सिखाने के रूप तथा संरचनाएँ विविध थीं, और इसलिए विषय सामग्रियाँ भी। हालाँकि ऐसी कोई विवशता नहीं थी कि सभी बच्चों को औपचारिक रूप से इसकी या किसी अन्य ज्ञान की शिक्षा दी जाए।

हम यह भी कह सकते हैं कि जैसे-जैसे समाज विकसित हुए, वैसे-वैसे स्कूलों की प्रकृति, उन्हें कैसे चलाया जाता था और उनमें क्या पढ़ाया जाता था, वह सब भी बदल गया। और जैसे-जैसे हम तुलनात्मक रूप से आज के क़रीब आते हैं, यानी कि पन्द्रहवीं शताब्दी के आस-पास की अवधि में, शिक्षा का नेतृत्व उन संस्थानों द्वारा किया जाने लगा जो किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक और धार्मिक आधार से जुड़े थे (इसके उदाहरण हैं— आश्रम स्कूल, मदरसा, कॉन्वेंट, मठ)। आध्यात्मिक रूप से प्रवृत्त यह सभी संरचनाएँ संगठित निकायों का हिस्सा नहीं थीं और कई समाजों में तो यह व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा संचालित की जाती थीं। क्या सीखा जाना चाहिए और क्या सिखाया जाए व किसका आकलन किया जाए, यह भी समाज-दर-समाज और वास्तव में संस्था-दर-संस्था था।

शिक्षा की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने का सवाल इसलिए पैदा हुआ ताकि माता-पिता को उन जगहों पर काम करने का अवसर मिल सके जहाँ उनके काम करने के घण्टे तय थे और जहाँ कार्य करने वालों को समय और कार्य करने के निश्चित तरीक़ों का पालन करना होता था। इसके अलावा, कुछ कौशल भी आवश्यक थे, उदाहरण के लिए, बच्चे को निर्देशों का पालन करने में सक्षम होना चाहिए। इसलिए जैसे योद्धाओं को और उच्च वर्गीय कुलीन लड़कियों को समाज की सम्भ्रान्त महिला होने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था, वैसे ही अब इस बात के लिए भी एक कारण था कि अन्य पृष्ठभूमि के बच्चे भी स्कूल में हों। एक व्यापक समूह को शामिल करने के लिए शिक्षा का विस्तार किया गया था, हालाँकि सभी बच्चे सीख सकते हैं या नहीं— इस पर गरमागरम बहस भी हुई। जो यह मानते थे कि सभी बच्चों को किसी न किसी तरह से पढ़ाया जा सकता है, और जो यह मानते थे कि ऐसा नहीं हो सकता— उन लोगों के बीच तनाव जारी रहा। यह बात सुकरात द्वारा ग़ुलाम लड़के को पढ़ाने वाली कहानी से स्पष्ट है। इसी तरह अँग्रेज़ी के एक प्रोफ़ेसर द्वारा एक अलग पृष्ठभूमि की लड़की को पढ़ाकर उसे 'लेडी' बनाने और उस जैसा ही व्यवहार करने के बारे में बनी फ़िल्म (माइ फेयर लेडी) उस संघर्ष को इंगित करती है जो समावेशन के बारे में समाज की चेतना में रहा है।

हालाँकि, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित बच्चों द्वारा दिए गए सीखने के सबूत, लड़कियों द्वारा विज्ञान और गणित में दिखाई गई क्षमता और इसी तरह के अन्य उदाहरणों ने धीरे-धीरे व्यवस्था को इस बात के लिए मजबूर किया कि उन्हें, कम से कम काग़ज़ पर, समान रूप से स्वीकार किया जाए। लेकिन व्यवहार और सोच में, सबूत खोजने के लिए किए गए शोध के प्रयासों, तर्क करने के लिए चुने हुए उपाख्यानों के उदाहरण और अन्य साधनों का उपयोग यह दर्शाने के लिए किया जाता है कि वंचित बच्चे और बालिकाएँ कमतर हैं, और अमूर्त तथा जटिल विचारों को सीखने में असमर्थ हैं। निर्णायक रूप से असाम्यपूर्ण व्यवहार को उचित ठहराने के लिए भी बहुत सारे प्रयास किए जाते हैं और इसके लिए पिछले कर्म या वर्तमान सामर्थ्य और क्षमता का हवाला दिया जाता है।

अन्ततः, मनुष्यों की समानता में विश्वास करने वालों की वकालत और अन्तर्निहित तुलनीय अक्षमता के ख़िलाफ़ भारी सबूतों के कारण नीति निर्धारण और रूपरेखा के उस आधार में बदलाव हुआ जिसके अनुसार सभी बच्चों को शिक्षित होने की आवश्यकता नहीं थी और वास्तव में, उनमें से अधिकांश सीखने के लिए सक्षम भी नहीं थे।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, बहिष्कृत बच्चों में बड़ी संख्या में लड़कियाँ शामिल थीं क्योंकि उन्हें न केवल शैक्षिक प्रक्रियाओं और अनुसन्धान नेतृत्वकर्त्ताओं जैसे कई और अन्य वरिष्ठ पदों से, बल्कि लगभग सभी मामलों में संरचना के स्तर पर ही बाहर रखा गया था। जिन कुछ महिलाओं को शिक्षित किया गया, उन्हें भी लड़कियों के लिए शिक्षा के सीमित ढाँचे में शिक्षित किया गया था, न कि सभी बच्चों के सार्वभौमिक कार्यक्रम के माध्यम से। एक सार्वभौमिक विद्यालय योजना में सभी लड़कियों को शामिल करने और उनसे गणित, विज्ञान, इंजीनियरिंग आदि की पढ़ाई करने की अपेक्षा करना अभी भी व्यापक रूप से स्वीकार्य नहीं है, यहाँ तक कि उन लोगों के लिए भी जो उन्हें शिक्षित करने और उनकी शिक्षा को सम्भव बनाने का कार्य करते हैं।

इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने के प्रयास में राज्य और आम लोगों की भूमिका को पहचानना होगा। शिक्षा की एक लागत भी होती है : स्कूल की लागत,

बच्चे को स्कूल भेजने में परिवार द्वारा लगने वाली लागत और स्कूल के बाद सीखने में बच्चे की सहायता करने में लगने वाली लागत व क्षमता। कम आय होने के कारण कई परिवारों के लिए स्कूल के बाद सीखने में बच्चे की सहायता पर होने वाले ख़र्चे के लिए धन जुटा पाना सम्भव नहीं होता।

जैसा कि मैंने शुरुआत में कहा है, सभी को शिक्षित करने के दृष्टिकोण के बारे में प्रमुख समझ यह है कि वे समाज के उपयोगी सदस्य बनें और एक स्थिर समाज बनाने में मदद करें। इसका एक निहितार्थ है कि प्रत्येक बच्चे को उस भूमिका के अनुसार शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए जो उसके लिए तय की गई है।

नए कुलीन वर्ग का उदय

समाज के लोकतंत्रीकरण,उद्योगीकरण और अवसरों के पैदा होने से शिक्षा आवश्यक हो गई थी और इसीलिए बड़ी संख्या में लोगों के लिए सम्भव हो सकी। पहले की तुलना में स्कूलों में अधिक बच्चे (अब तो और अधिक हैं) थे। समाज की बढ़ती जटिलता और उत्पादन व प्रबन्धन के लिए आवश्यक कौशलों के कारण विविध प्रकार के कौशलों से लैस व्यक्तियों की माँग (जो आज भी है) बहुत बढ़ गई। यहाँ तक कि जो लोग हाथों से काम करते थे, उनमें से कई ऐसे थे जिन्हें विशिष्ट शिक्षा और कौशल की आवश्यकता थी जो अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण थे। उत्पादन के साधनों और बाज़ार की प्रकृति में बदलाव के बाद कुछ गतिशीलता आई। इसके कारण अधिक मिश्रण हुआ और एक नए कुलीन वर्ग का उदय हुआ। यह कुलीन वर्ग नेतृत्व के साथ-साथ आर्थिक लाभ भी साझा करना चाहता था। बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी और इस संघर्ष की वजह से पहुँच, चयन और बहिष्करण की विधि के लिए प्रमुख मानदण्ड के रूप में 'प्रतिभाशाही' (meritocracy) का आगमन हुआ। इसे लोकतंत्र और कल्याण की मौजूदा धारणाओं के साथ जुड़ना था। इसी कारण से शिक्षा का विशिष्ट होना और शिक्षा का बड़ी संख्या के लिए तथा बच्चों के विविध समूहों के लिए होना— इन दोनों विचारों के बीच जो अनदेखा तनाव है, वह विभिन्न प्रकार से अभी भी जारी है। चूँकि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के अनुभवों के बाद लोकतंत्र और राज्य की कल्याणकारी भूमिका की अवधारणा विकसित हुई, इसलिए प्रत्येक बच्चे के औपचारिक रूप से शिक्षित होने और इस शिक्षा के उद्देश्य और प्रकृति के बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता भी बढ़ी। भारतीय संविधान ने सामाजिक पदानुक्रम में यथास्थिति को बनाए रखने और विकास के एक सामान्य कार्यक्रम में सभी को शामिल करने के बीच मौजूद संघर्ष को प्रतिबिम्बित किया। उद्देशिका में ऐसी प्रतिबद्धता व्यक्त की गई जिसे हासिल करना मुश्किल था और प्रशासकों के लिए भी इसे स्वीकार करना और इसपर विश्वास करना कठिन था।

1986 की शिक्षा नीति ने तनाव को चरम सीमा पर ला दिया और शिक्षा को मानव संसाधन विकास के रूप में परिभाषित करके वास्तविक मंशा और प्रचलित नीति और सार्वजनिक विश्वास पर ध्यान केन्द्रित किया। शब्दों का चयन स्पष्ट था : मानव 'संसाधन' थे, वे राष्ट्र के विकास के लिए थे (अर्थव्यवस्था और बाज़ार पढ़ें), जैसे कि विकास के लिए धन होता है। प्रत्येक व्यक्ति एक अलग-थलग व्यक्ति है और अर्थव्यवस्था और बाज़ार का लक्ष्य वितरण की समानता के बारे में किसी प्रकार की चिन्ता किए बिना उपभोग को अधिकतम करना है। अधिकतम व्यक्तिगत सुख, सम्पत्ति और सामग्री के उपभोग की सम्भावनाओं का निर्माण करने के लिए व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करना ही इसका सिद्धान्त है। व्यक्तियों की कोई सामाजिक ज़िम्मेदारी नहीं है, क्योंकि स्वीकृत सिद्धान्त यह है कि जिन लोगों के पास मूलभूत आवश्यक वस्तुएँ तक नहीं हैं, वे इस स्थिति में इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने शिक्षा में निवेश नहीं किया है (अपने स्वयं के प्रयास के सन्दर्भ में और साथ ही उनकी शिक्षा के लिए उनके माता-पिता की प्रतिबद्धता, प्रयास और योगदान के सन्दर्भ में)। इस प्रकार, मानवीय पूँजी सिद्धान्त (ह्यूमन कैपिटल थ्योरी — एचसीटी) से प्रेरित इस विचार का तात्पर्य यह है कि इस तरह की अर्थव्यवस्था में शैक्षिक उद्देश्यों और गतिविधियों को बाज़ार विश्लेषण और ऐसे तकनीकी विचारों से तेज़ी-से निर्धारित किया जाना चाहिए जो किसी अन्य नैतिक या न्यायसंगत सिद्धान्तों की बजाय बाज़ार को बढ़ने में मदद करते हैं।

इसलिए आज अच्छी गुणवत्ता वाले औपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में सभी बच्चों को शामिल करने की मूलभूत चुनौती इसकी माँग करने वाले दार्शनिक आधारों में विश्वास की कमी है। संविधान की उद्देशिका की प्रतिज्ञा को न तो समझा जाता है और न ही स्वीकार किया जाता है। यह स्पष्ट है कि समावेशन के लिए अवसर की जिस समानता की आवश्यकता होती है, वह यह सुनिश्चित किए बिना नहीं मिल सकती कि विकास के लिए अवसर, सुविधाएँ, चयन के अधिकार और विकल्प, कुछ हद तक तुलनीय स्तर पर, सभी बच्चों के लिए उपलब्ध हों।

इस प्रक्रिया में इस बात में विश्वास करने की आवश्यकता है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और उन्हें समान ध्यान और देखभाल की आवश्यकता है। मानव क्षमता के सिद्धान्त में शिक्षा से यह अपेक्षित है कि वह प्रत्येक बच्चे को अपना रास्ता चुनने की जागरूकता, सम्भावना और क्षमता देगी और

वैसा बनने देगी जैसा वह बनना चाहता है। इसके विपरीत, जिन प्रचलित सिद्धान्तों पर शिक्षा प्रणाली बनी है, वह बच्चे को मानव पूँजी के एक भाग के रूप में विकसित करती है जो अर्थव्यवस्था में आय का उत्पादक या जेनरेटर हो ताकि बाज़ार के आदान-प्रदान को अधिकतम किया जा सके। यह निरूपण शिक्षा पर हुए सभी ख़र्चों को आर्थिक निवेश मानता है और आर्थिक उत्पादन की वृद्धि के रूप में इस निवेश के प्रतिफल की माँग करता है। चूँकि नौकरियों की संख्या के विस्तार की सम्भावना और ऊपरी गतिशीलता में गिरावट आई है, इसलिए अधिक लोगों के लिए शिक्षा वाली बात के लिए ख़तरा तेज़ी-से बढ़ रहा है। शिक्षा तेज़ी-से संकरी से और संकरी छलनी बन गई है जिसमें बहुत सारे बच्चों को छाना जाने लगा है। यही इसका कार्यकारी उद्देश्य बन गया है और इसका लक्ष्य व इसकी उपलब्धता तदनुसार समायोजित की जाती है। इस प्रकार कुलीन वर्ग के लिए महँगे अवसरों के निर्माण के साथ अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा अधिक विशिष्ट और अधिक विशेषीकृत बन गई है। हालाँकि संकल्पनात्मक दस्तावेज़ और वर्णित उद्देश्य उद्देशिका की भावना और क्षमता सिद्धान्त की कुछ सूक्ष्म बातों के क़रीब हो सकते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि अधिकारों की रूपरेखा भी ऐसी शिक्षा तक सीमित हो गई है जो कि न्यूनतम है और काफ़ी हद तक मानव पूँजी के सिद्धान्तों के साथ जुड़ी है।

References

Amartya Sen's Capability Approach and Social Justice in Education Edited by Melanie Walker and Elaine Unterhalter Palgrave Macmillan 2007 Chapter 1, 2 and 3

Baptiste I (2001) Educating Lone Wolves: Pedagogical Implications of Human Capital Theory First Published May 1, 2001 Research Article https://doi.org/10.1177/074171360105100302

Behar Anurag, Learning Curve Issue 25, Page 2.

Chapter 2, Education – Meaning-origins, History and philosophy of education.

Dewan H K. Learning Curve Issue 25, Page 17

History of Education – Wikipedia, Accessed 1/19/20 5:26 PM. Indian Sub-continent, China, Greece and Rome, Formal education in the Middle ages (500 – 1500 AD). https://en.wikipedia.org/wiki/

Nussabaum M C, (2011) Creating Capabilities: The Human Development Approach, Martha C Nussbaum, The Benklap Press of Harvard University Press, Cambridge, Massachusetts and London England, 2011

Stanford Encyclopedia of Philosophy

The Capability Approach. First published Thu Apr 14, 2011; substantive revision Mon Oct 3, 2016 https://plato.stanford.edu/entries/capability-approach/

The origins of the world's first school – steemit.com

Tomassello M. (2014) A natural history of Human Thinking, Harvard University press, 2014

Tomassello M. (1999) The Cultural Origins of Human Cognition, Harvard University Press, 1999



हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के 'अनुवाद पहल' में कार्यरत हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे पिछले चालीस वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार से और विभिन्न पहलुओं पर काम कर रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षिक नवाचार और राज्य की शैक्षिक संरचनाओं के संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल

बच्चों की क्षमता में शिक्षक का विश्वास महत्त्वपूर्ण है

विमला रामचन्द्रन

“अगर मैं इन कक्षाओं में देखी गई मूल मान्यताओं और शिक्षण अभ्यासों को संक्षेप में बताना चाहूँ, तो यही कहूँगा कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात शिक्षकों का यह विश्वास होती है कि ‘हर बच्चा सीख सकता है; यह ज़िम्मेदारी हमारी है।’ यह शिक्षक हर बच्चे के सीखने के अनुभव को दिलचस्प बनाने की कोशिश करते हैं और बच्चों के उस मौजूदा ज्ञान का सम्मान करते हैं जिसे वह अपने साथ कक्षा में लाते हैं। इस ज्ञान का उपयोग करते हुए वह नए ज्ञान का निर्माण करते हैं... साथ ही यह शिक्षक अवधारणाओं को अपने आस-पास की दुनिया के साथ जोड़ने में भी बच्चों की मदद करते हैं ” (एस. गिरिधर, 2019, पृष्ठ 122)।

एस. गिरिधर की हालिया पुस्तक ऑर्डिनेरी पीपल, एक्स्ट्राऑर्डिनेरी टीचर्स (एस. गिरिधर, 2019) को पढ़ते हुए इन असाधारण शिक्षकों की जो एक ख़ासियत मुझे समझ आई वह थी उनका यह विश्वास कि प्रत्येक बच्चे में सीखने की सहज क्षमता होती है। इस विश्वास के कारण उनके काम करने के तरीक़े, उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले शिक्षणशास्त्र और सबसे महत्त्वपूर्ण बात बच्चों के साथ उनके सम्बन्धों पर बहुत फ़र्क़ पड़ा है।

पिछले तीस वर्षों के मेरे शोध ने मुझे यक़ीन दिलाया है कि शिक्षक का विश्वास इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह बच्चों के प्रति उनके रवैये, उनके द्वारा कक्षा में उपयोग किए जाने वाले शिक्षणशास्त्र और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, उनके समय प्रबन्धन को प्रभावित करता है। इससे वे यह सुनिश्चित कर पाते हैं कि वे हरेक बच्चे तक पहुँच सकें। इसी प्रकार से शिक्षक के पूर्वाग्रह, तरफ़दारी करना और दृष्टिकोण सीखने के लिए एक महत्त्वपूर्ण बाधा भी हो सकते हैं। यदि शिक्षक यह मानते हों कि कुछ जाति/वर्ग के बच्चों में सीखने की जन्मजात क्षमता नहीं होती तो इस बात की काफ़ी सम्भावना है कि वे उन बच्चों की उपेक्षा करें और केवल उन बच्चों पर ध्यान केन्द्रित करें जिनके बारे में उनकी यह मान्यता है कि वे सीख सकते हैं। यदि किसी शिक्षक का यह मानना हो कि लड़कियाँ गणित नहीं सीख सकती हैं तो वह उसी भावना को ज़ाहिर करेगा और तब शायद लड़कियों को सवाल पूछने या अपनी शंकाओं को दूर करने में डर लग सकता है।

सबसे पहले तो शिक्षक के विश्वास और उनके ज्ञान के बीच में अन्तर करना ज़रूरी है। ज्ञान दो प्रकार के होते हैं— ‘समुदाय द्वारा स्वीकृत वस्तुनिष्ठ ज्ञान (जैसे, आधिकारिक विषयवस्तु का ज्ञान) और व्यक्तिपरक ज्ञान। विश्वास व्यक्तियों के व्यक्तिपरक ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है और वस्तुनिष्ठ ज्ञान से अलग है...’ (टर्नर, क्रिस्टेंसन और मेयर, 2014, पृष्ठ 361)। 2011-12 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के लिए समावेशन और बहिष्करण पर मैंने एक अध्ययन का नेतृत्व किया था। उसमें हमने देखा कि शिक्षक और स्कूल के प्रमुख यह मानते थे कि बहुत ग़रीब परिवारों के बच्चों— विशेषकर आदिवासी और दलित बच्चों —में भाषा, गणित और विज्ञान सीखने की जन्मजात क्षमता नहीं होती। परिणामस्वरूप, उन्होंने उन बच्चों तक पहुँचने का कोई प्रयास ही नहीं किया जिनके बारे में उन्हें विश्वास था कि वे नहीं सीख सकते (रामचन्द्रन और नोरेम, 2012)। उसी अध्ययन में हम ऐसे शिक्षकों के सम्पर्क में भी आए जो सच्चे दिल से यह मानते थे कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और यह ज़रूरी नहीं कि घर का माहौल अधिगम के लिए हमेशा अवरोधक हो। जब हमने इस बारे में और खोज की तो पाया कि यह शिक्षक अत्यन्त ग़रीब और हाशिए पर रहने वाले बच्चों के साथ प्रभावी ढंग से काम करते थे और इस प्रयास में लगे रहते थे कि उन्हें बुनियादी अवधारणाएँ समझने में सक्षम बनाया जाए। ऐसे शिक्षकों का व्यक्तिपरक ज्ञान उनके इन्हीं अनुभवों पर आधारित था। समान रूप से महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कक्षा में यह बच्चे अपने साथ जो ज्ञान लाए हैं, उसी के आधार पर इन शिक्षकों ने नए ज्ञान का निर्माण करने की कोशिश की।

उदाहरण के लिए, एक शिक्षिका ने ब्लैकबोर्ड पर अलग-अलग कॉलम बनाए और एक ही शब्द को अलग-अलग भाषाओं में लिखा— जैसे उस क्षेत्र की मुख्य भाषा में, उस क्षेत्र की प्रमुख आदिवासी भाषा में, कक्षा में मौजूद अल्पसंख्यक आदिवासी समूह की भाषा में और अँग्रेज़ी में भी। इस तरह शिक्षिका ने अपनी कक्षा का प्रतिनिधित्व करती विभिन्न भाषाओं में किसी एक ही वस्तु को कैसे बताया जा सकता है— इस बात को

स्वीकार करके और इसपर चर्चा करके प्रत्येक बच्चे को सीखने की प्रक्रिया में तुरन्त शामिल कर लिया। एक अन्य स्कूल में मैंने देखा कि एक शिक्षक स्थानीय मान सिखाने के लिए पत्तियों और लकड़ियों के गट्ठे या बण्डल का उपयोग कर रहे थे। उस गाँव के सबसे ग़रीब समुदाय के बच्चे अपने माता-पिता को पत्तों के गट्ठे बनाते और उन्हें गिनते देखने के आदी थे। बच्चे अकसर पचास पत्तियों या सौ पत्तियों के गट्ठे बनाने में अपने माता-पिता की सहायता करते थे। गणितीय अवधारणाओं को वास्तविक जीवन की गतिविधियों से जोड़ने का जादुई प्रभाव हुआ— बच्चों को सीखना मज़ेदार लगा और वे उस गतिविधि के साथ ख़ुद को आसानी से जोड़ सके।

हमारे सामने कुछ बहुत ही रोचक विरोधाभास भी आए। नमूने के तौर पर लिए गए छह राज्यों के शिक्षकों के साथ हुई चर्चा ने एक आम धारणा को भी उजागर किया कि : अत्यधिक वंचित सामाजिक समूहों के बच्चे स्कूल में अच्छा प्रदर्शन नहीं करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि उन्हीं स्कूलों से मिली जानकारी से यह भी पता चला कि यह एक ग़लत धारणा है और वंचित सामाजिक समूहों के कई बच्चे अकादमिक रूप से वास्तव में अच्छा प्रदर्शन कर रहे थे। शिक्षक की धारणाओं और वास्तविकता के बीच एक असम्बद्धता है और यह बात उल्लेखनीय है कि जहाँ एक ओर शिक्षकों ने स्वयं उन बच्चों की ओर ध्यान दिलाया जो 'होशियार' और पढ़ने के लिए उत्सुक थे (उनमें से कई दलित/आदिवासी समूह के थे), वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों को भी पकड़े रखा…" (रामचन्द्रन और नोरेम, 2015, पृष्ठ 25-26)। जब हमने शिक्षकों से इस बारे में चर्चा की तो उन्होंने अपवादों की बात कही, और इस 'सफलता' का श्रेय व्यक्तिगत बच्चे की असाधारण क्षमताओं को दिया, भले ही वह एक ऐसे सामाजिक समूह या परिवार से आया हो जिसे वे सीखने में अक्षम समझ रहे थे।

वैश्विक प्रमाणों से पता चलता है कि सीखने और सिखाने के बारे में कुछ मज़बूत मान्यताओं के कारण शिक्षकगण रचनात्मक या अधिगम केन्द्रित शिक्षणशास्त्र को नहीं अपनाते हैं। सबसे पहली बात तो यह कि बहुत-से शिक्षक शिक्षार्थी और विषयवस्तु दोनों को अन्त:क्रियात्मक और परिवर्तनशील मानने की बजाय नियत या स्थिर मानते हैं। इन शिक्षकों का मानना है कि बच्चों के विकास का स्तर और व्यक्तिगत अन्तर, जैसे कि बुद्धि, दोनों ही पाठ्यचर्या को पढ़ा पाने की उनकी क्षमता को प्रभावित करते हैं, इसलिए उन्हें अपनी पढ़ाने की शैली या गति को इस तरह बदलना होगा कि वह सभी विद्यार्थियों के 'माक़ूल' हो। ऐसा ही एक विश्वास यह है कि शिक्षक यह मान सकते हैं कि अगर कुछ सिखाया जाता है (यानी समझाया या दर्शाया जाता है), तो उसे सीखा भी जाना चाहिए (नटल, 2004)। यदि विद्यार्थी नहीं सीखते हैं, तो इस समस्या के लिए विद्यार्थियों की (स्थिर) प्रेरणा, क्षमता या दृढ़ता की अपर्याप्तता को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है, शिक्षण को नहीं (फ्लोडेन, 1996)। 'इस तरह की मान्यताएँ उन मान्यताओं के एकदम विपरीत हैं जो एक अन्तःक्रियात्मक दृष्टिकोण का मार्गदर्शन करती हैं...' (टर्नर, क्रिस्टेंसन और मेयर, 2014, पृष्ठ 362; नटल 2004 और फ्लोडेन 1996 में क्रिस्टेंसन और मेयर द्वारा उद्धृत)।

इस समस्या का कारण शिक्षक का यह विश्वास है कि शिक्षकों को कक्षा के प्रबन्धन पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, बजाय यह सुनिश्चित करने के कि हर बच्चा सीखे। यह विश्वास तब प्रबल होता है जब सरकार शिक्षकों को पाठ्यक्रम पूरा करने के निर्देश देती है— शिक्षकों से अपेक्षा करती है कि वे सम्बन्धित राज्य सरकारों/शिक्षा बोर्डों द्वारा निर्धारित कार्यक्रम का पालन करें। शिक्षकों के साथ की गई चर्चा से पता चलता है कि उन्हें विवश होकर हर महीने पाठ्यक्रम के विशिष्ट खण्डों को पूरा करने के लिए समय सारणी का पालन करना पड़ता है। यह बात तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब विद्यार्थियों से पूछा जाता है कि वे ट्यूशन क्यों लेते हैं। विद्यार्थियों का कहना है कि ट्यूटर्स इस बात को सुनिश्चित करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं कि प्रत्येक पाठ को सीखा या याद कर लिया जाए। पाठ और उससे जुड़े हुए प्रश्न-उत्तर व्यवस्थित रूप से याद किए जाते हैं ताकि विद्यार्थी परीक्षा दे सकें। ट्यूटरों द्वारा निष्क्रिय अवलोकन या भागीदारी को प्रोत्साहित नहीं किया जाता है, जबकि कक्षा में, शिक्षक उन बच्चों की उपेक्षा करते हैं, जिन्हें 'कसौटी पर खरा उतरा हुआ' नहीं माना जाता। इससे निष्क्रिय अवलोकन या पीछे की बेंच में बैठने को बढ़ावा मिलता है और कक्षा में क्या हो रहा है, इसे अनदेखा किया जा सकता है।

यद्यपि रटकर सीखने की प्रक्रिया कक्षाओं और ट्यूशन केन्द्रों दोनों में एक आदर्श बन गई है, लेकिन बच्चों की क्षमता पर शिक्षक का विश्वास ही वह कुंजी है जिससे स्कूलों और ट्यूशन केन्द्रों में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है। जैसा कि लेखिका द्वारा किए गए 2015 के

अध्ययन (रामचन्द्रन और नोरेम 2015) में पाया गया था, कुछ विद्यार्थियों या जाति/लिंग या सामाजिक वर्ग की रूढ़ियों को लेकर शिक्षकों की जो अपेक्षाएँ होती हैं और जिसके साथ वे कक्षा में आते हैं, उससे बहुत फ़र्क़ पड़ता है। यह रूढ़ियाँ स्वयं पूर्ण होने वाली भविष्यवाणियों की तरह हैं — उन लोगों की उपेक्षा करना जिन्हें सीखने में अक्षम माना जाता है — जो ऐसे विद्यार्थियों को कक्षा के भीतर एक निष्क्रिय और असम्बद्ध स्थान में धकेल देती हैं। जब बच्चों को कक्षा के अन्दर हाशिए पर रखा जाता है, तो वे कक्षा की गतिविधियों की ओर से उदासीन हो जाते हैं। जैसे ही बच्चे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाते हैं, 'नो-डिटेंशन' का प्रचलित नियम (जिसे शिक्षक 'कोई आकलन नहीं' कहते हैं) न सीखने के बढ़ते हुए बोझ को और बढ़ाता है। नौवीं कक्षा में दाख़िला लेने के बाद स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों के साथ फोकस-समूह चर्चा से पता चला कि वे अकादमिक अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहे थे और इसलिए उनके पास स्कूल छोड़ने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

पढ़ाई में असफलता और उसे पूरा करने में असमर्थता बच्चों के ड्रॉपआउट का एक महत्त्वपूर्ण कारण बनकर सामने आई— स्कूल छोड़कर जाने वाले बच्चों के माता-पिता ने कहा, "शिक्षकों की कमी थी, स्कूल में पढ़ाई नहीं हो रही थी, इसलिए बच्चों की पढ़ाई छूट गई।"

एक अन्य समूह में माता-पिता ने कहा, "हम चाहते थे कि हमारे बच्चे आठवीं कक्षा के बाद भी पढ़ाई जारी रखें, लेकिन उन्होंने स्कूल छोड़ने का फ़ैसला किया क्योंकि 'वे कक्षा आठ तक कुछ ख़ास नहीं सीख पाए थे और इसलिए वे आगे पढ़ाई नहीं करना चाहते थे' — उन्हें पढ़ाई मुश्किल लगी।" दिलचस्प बात यह है कि पढ़ाई में दिलचस्पी न होना शोध टीम को यह सूचित करने का एक तरीक़ा बन गई कि बच्चे सीख नहीं रहे (रामचन्द्रन और नागपाल 2019)।

उपर्युक्त अन्तर्दृष्टि और जानकारी में कुछ भी नया नहीं है— शिक्षा समुदाय सदा से इस बात को जानता है कि शिक्षक के विश्वास को सम्बोधित करना शायद सबसे कठिन मुद्दा है। व्यवस्थापक, शिक्षक-प्रशिक्षक और शैक्षिक शोधकर्ताओं को पता नहीं है कि इस मुद्दे से कैसे निपटा जाए। इस समझ के बावजूद, सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण मुख्य रूप से विशिष्ट विषय ज्ञान या अवधारणात्मक समझ पर केन्द्रित है —जिन्हें हार्ड स्पॉट्स कहा जाता है। मौजूदा मान्यताओं और पूर्वाग्रहों को दूर करने का कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं किया जाता है। यह एक उपेक्षित क्षेत्र रहा है— हालाँकि असाधारण स्कूलों या शिक्षकों की केस स्टडीज़ से बार-बार संकेत मिलता है कि प्रेरित और अपने कार्य के साथ प्रामाणिक रूप से जुड़े शिक्षक बच्चों की शिक्षा को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। यदि उनका विषय ज्ञान पर्याप्त नहीं भी होता है तो वे अन्य शिक्षकों या अन्य सहायता प्रणालियों (जैसे शिक्षक मंचों या विषय मंचों) से मदद लेने में हिचकते नहीं।

आवधिक आकलनों — चाहे वह सरकारी (एनसीईआरटी) या निजी/ग़ैर-सरकारी एजेंसियों एएसईआर, ईआई) द्वारा किया गया हो — ने हमें बताया है कि वास्तव में देश भर में सरकारी और निजी स्कूलों में भी अधिगम को लेकर बहुत बड़ा संकट है। फिर भी, ज़ोर अधिक आकलन करने और (हाल ही में) यादृच्छिक नियन्त्रण परीक्षण (रैंडम्ज़ाइड कंट्रोल ट्रायल – आरसीटी) अध्ययन करने पर है। भारत को पोलिश या फ़िनिश के उदाहरण से सबक़ लेना चाहिए और शिक्षक के 'विश्वास', शिक्षक के 'आत्मविश्वास', शिक्षक की 'स्वायत्तता' और शिक्षकों के ज्ञान और कौशल पर ध्यान देना चाहिए। हालाँकि एनईपी 2019 का मसौदा अधिगम सम्बन्धी संकट को स्वीकार करता है, लेकिन इसे सम्बोधित कैसे किया जाए, इस बारे में ज़्यादा विचार नहीं किया गया है।

अधिगम और शिक्षा की गुणवत्ता के मुद्दे को सामाजिक और आर्थिक असमानता के साथ बारीकी से जोड़ा गया है। अब यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि बच्चे स्कूल में जो 'सामाजिक पूँजी' लाते हैं, वह सफलता का एक महत्त्वपूर्ण भविष्यवक्ता है। इसका अर्थ यह है कि जिन बच्चों के माता-पिता शिक्षित हैं, जिनको किताबें और अन्य पठन सामग्रियाँ उपलब्ध हैं, जिनको रचनात्मक कला व मीडिया अधिक सुलभ हैं और जो संसाधन समृद्ध वातावरण में रहते हैं — वे शैक्षिक प्रक्रिया से उन बच्चों की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करते हैं जो संसाधनहीन वातावरण से आते हैं। इसके विपरीत, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समुदायों के बच्चे, जो अपने शिक्षकों और साथी विद्यार्थियों से स्कूल में विभिन्न तरह के भेदभावों का सामना करते हैं, अल्प आत्मसम्मान व आत्मविश्वास और बहुत ही कम 'अधिगम' के साथ स्कूल छोड़ देते हैं।

जैसे-जैसे लड़कियाँ शैक्षिक सोपान पर ऊपर चढ़ती हैं, उन्हें एक और प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पड़ता है— उन्हें अपनी पसन्द का विषय नहीं मिलता है। कई राज्यों में तो (विशेष रूप से कुछ उत्तर और पश्चिमी राज्यों में) लड़कियों के माध्यमिक विद्यालय विज्ञान, गणित या वाणिज्य जैसे विषयों का विकल्प पेश ही नहीं करते। इसी तरह आदिवासी क्षेत्रों में

और सर्वाधिक वंचित आदिवासी समुदायों के बच्चे न केवल भेदभाव का अनुभव करते हैं, बल्कि प्राथमिक स्तर से परे स्कूलों तक उनकी पहुँच भी बहुत कम है।

शिक्षक के विश्वास को केन्द्र में लाने से हमें इस विषय पर बातचीत करने में मदद मिल सकती है कि प्रत्येक शिक्षक के लिए यह मानना क्यों ज़रूरी है कि हर बच्चे में सीखने की क्षमता है। शायद यह माँग इस समय में अतिशयपूर्ण लगे जब सामाजिक ध्रुवीकरण बढ़ रहा है और हमारे राजनीतिक और सामाजिक नेता अधिक पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देने में व्यस्त हैं; यह समझाने की बजाय कि यदि शिक्षा समान रूप से और इस तरीक़े से दी जाए कि सभी बच्चों को सीखने का मौक़ा मिले तो अपने देश को आगे बढ़ाने का यही एकमात्र तरीक़ा हो सकता है। शायद यह शिक्षकों, उनके दृष्टिकोण, विश्वास और उनके ज्ञान के साथ शुरुआत करने का एक अच्छा समय है।

References

Giridhar, S. 2019. Ordinary People, Extraordinary Teachers: The Heroes of Real India. Westland Publications. Chennai.

Ramachandran, Vimala and Nagendra Nagpal. 2019. Status of Secondary Education in Rajasthan – insights from a qualitative study in Chittorgarh District, Draft Report, ERU Consultants Private Ltd. New Delhi.

Ramachandran, Vimala and Taramani Naorem. 2012. Inclusion and exclusion of students in the school and in classrooms in primary and upper primary schools: A qualitative study commissioned by SSA, MHRD, GOI. Technical Support Group, EdCIL, New Delhi.

Turner, Julianne C, Andrea Christensen and Debra K Meyer. 2014. Teacher's Beliefs about Student Learning and Motivation, in L J Saha and A G Dworkin (eds.), International Handbook on Research on Teachers and Teaching (pp361-371). Springer. UK.



विमला रामचन्द्रन प्राथमिक शिक्षा, लड़कियों की शिक्षा, महिला सशक्तीकरण और बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण व शिक्षा तथा बच्चों की देखभाल के तौर-तरीक़ों से सम्बन्धित बिन्दुओं पर काम कर रही हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे शोधकर्ताओं और अभ्यासकर्ताओं का नेटवर्क बनाने के लिए 1998 में एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट की स्थापना की (जिसे अब ईआरयू कंसल्टेंट्स प्राइवेट लिमिटेड के रूप में जाना जाता है)। 2011 से 2015 के मध्य तक वे नेशनल फैलो और नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन (NUEPA) में प्रोफ़ेसर ऑफ़ टीचर मैनेजमेंट एंड डेवलपमेंट थीं। वर्तमान में वे ईआरयू कंसल्टेंट्स प्राइवेट लिमिटेड (www.eruindia.org) की निदेशक हैं। उनसे vimalar.ramachandran@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल

कहानी के माध्यम से बच्चों को जोड़ना

अमृता मसीह

बतौर शिक्षक मेरा यह मानना है कि बच्चे उस विषय को ज़्यादा समय तक याद रखते हैं जो पारम्परिक शिक्षण विधियों की बजाय कहानियों द्वारा सिखाया जाता है। कहानी कहने की कला, विशेषकर भाषाओं के मामले में, बच्चों को इतने प्रभावी तरीक़े से जोड़े रखती है कि वे लम्बे समय तक अवधारणाओं या पात्रों को याद रख पाते हैं।

इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने सोचा कि क्यों न मैं अपनी शिक्षण योजना बनाने से पहले विद्यार्थियों से कहानी कहने के बारे में कुछ चर्चा करूँ और उनके विचार भी जान लूँ। यदि शिक्षक कक्षा की गतिविधियों के डिज़ाइन के बारे में बच्चों से सलाह लें तो इससे शिक्षकों को बच्चों की ज़रूरतों और रुचियों के अनुसार योजना बनाने और कक्षा प्रक्रिया में उनकी भागीदारी बढ़ाने में मदद मिलती है।

इसलिए मैंने बच्चों से पूछा कि वे कहानी कहने के बारे में क्या सोचते हैं। उन्होंने मेरे साथ अपने विचार इस प्रकार साझा किए : हमें कहानी के माध्यम से नए शब्दों और वाक्य संरचनाओं के बारे में पता चलता है। हम प्रश्न निर्माण करना भी सीखते हैं। पढ़ना-लिखना और वर्तनी आसान हो जाती है क्योंकि कहानी बहुत मज़ेदार होती है। हम नए शब्दों का सही उच्चारण सीखते हैं। बच्चों के विचार जानकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई। बच्चे हमारी तरह सोचते हैं, लेकिन हम वयस्क लोग कभी-कभी कक्षा प्रक्रियाओं पर उन्हें अपने विचार साझा करने के अवसर नहीं देते हैं।

जब शिक्षक बच्चों के साथ चर्चा करते हैं और योजनाएँ बनाते हैं, तो हम उन गतिविधियों के दौरान उनकी रुचि और जुड़ाव देख सकते हैं जिनके लिए उन्होंने भी अपने विचार दिए हैं। इसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :

शिक्षक : जो कहानी हम आज या कल पढ़ने वाले हैं, उनके बारे में आपने जो विचार दिए थे, क्या हमें उन सभी विचारों पर ध्यान देना चाहिए?

बच्चे : नहीं, हम तीन विचारों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

शिक्षक : तो हमें किन बातों पर ध्यान देना चाहिए?

बच्चे : हम कहानी से नए शब्द छाँटकर लिखेंगे। शब्दकोश में उनके अर्थ देखेंगे और नए शब्दों का प्रयोग करते हुए कुछ वाक्य बनाएँगे।

शिक्षक : ठीक है। हमें और क्या करना चाहिए?

बच्चे : हम पढ़ने और लिखने का अभ्यास करेंगे।

शिक्षक : तो चलो, पहले कहानी चुन लें।

कहानी कहने की गतिविधि के लिए कहानी चुनने के लिए मैंने उन्हें कुछ किताबें दीं। उन्होंने एलिस इन द वंडरलैण्ड को चुना।

मैं कहानी सुनाने लगी। सभी बच्चे ध्यान से सुन रहे थे, वे कहानी के चित्रों की सराहना कर रहे थे क्योंकि मैं उन्हें कहानी सुनाते-सुनाते चित्र भी दिखा रही थी। कहानी पढ़ते समय कुछ बच्चे मेरी आवाज़ में होने वाले उतार-चढ़ाव को ध्यान से सुन रहे थे। कहानी से दो अनुच्छेद पढ़ने के बाद मैंने उनसे कुछ प्रश्न पूछे, जैसे— मुझे कहानी के कुछ शब्द बताओ। अब तक कहानी में कौन-से मुख्य पात्र आए हैं? कहानी में किस बारे में बात की जा रही है?

कहानी में सुने कुछ शब्दों को सूचीबद्ध करने के बाद बच्चों ने कहा कि उन दो पैराग्राफ़ों में मुख्य पात्र एक छोटी लड़की और एक सफ़ेद खरगोश था। कहानी एक छोटी लड़की के बारे में थी जो एक खरगोश के पीछे भाग रही थी। हम बीच-बीच में कहानी की काल्पनिक दुनिया में आई विभिन्न वस्तुओं और पात्रों के बारे में भी बात कर रहे थे। कहानी समाप्त होने के बाद हमने उन विभिन्न शब्दों के बारे में बात की जो उन्होंने पहली बार सुने थे, उन्हें शब्दकोश में देखा और उन शब्दों के साथ वाक्य बनाए। उस दिन की कक्षा विद्यार्थियों के साथ एक अद्भुत अनुभव के साथ समाप्त हुई।

अगले दिन मैंने विद्यार्थियों को दो समूहों में विभाजित किया ताकि वे मिल-जुलकर सीख (पीयर लर्निंग) सकें। यह बच्चों के पढ़ने का दिन था और कुछ बच्चे कुछ शब्दों के उच्चारण के बारे में पूछ रहे थे।

अगले दिन की शुरुआत हमने एलिस इन द वंडरलैण्ड कहानी पर बने एक वीडियो देखने के साथ की। बच्चे पुस्तकालय के कमरे में चुपचाप बैठे थे जहाँ मैंने उनके लिए फ़िल्म की व्यवस्था की थी। हमने फ़िल्म देखने के बाद उसपर चर्चा करने का फ़ैसला किया। फ़िल्म देखने के बाद कुछ बच्चों ने कहा कि उन्होंने इससे पहले इतनी शानदार और काल्पनिक फ़िल्म

नहीं देखी थी। वे सभी फ़िल्म पर चर्चा करके बहुत ख़ुश थे। उन्होंने फ़िल्म का आनन्द लिया और हमने फ़िल्म और किताब के बीच के अन्तर पर चर्चा की। अगले दिन मैंने विद्यार्थियों से कहा कि वे एलिस और सफ़ेद खरगोश के बारे में अपनी ख़ुद की कहानी लिखें। मैं बच्चों द्वारा लिखी गई कुछ कहानियाँ और विभिन्न प्रश्न साझा करूँगी।

अन्त में मैंने कहानी पर आधारित छह वाक्य लिए और उनका क्रम बदल दिया। फिर बच्चों से कहा कि वे उन्हें उचित क्रम में व्यवस्थित करें। अधिकांश विद्यार्थी कहानी के वाक्यों को सही क्रम में रख पाए। हमने कुछ और गतिविधियाँ भी कीं, जैसे— शब्दों और अक्षरों के क्रम बदलना, रिक्त स्थान में तुकान्त शब्द आदि। यह सभी गतिविधियाँ बच्चों द्वारा तैयार की गई थीं।

कहानी कहने की यह गतिविधि बहुत उपयोगी रही क्योंकि विद्यार्थियों के मन में उन विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से भाषा सीखने की दिलचस्पी जागी जिनमें वे नियोजन के चरण से ही सक्रिय रूप से शामिल थे। इससे पता चलता है कि कुछ रणनीतियों को बदलने से शिक्षक के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी सीखने में मदद मिलती है।

भाषा की कक्षा के लिए कुछ विचार

- शिक्षण योजना बनाने के चरण से ही कक्षा को शामिल करें लेकिन यह स्पष्टता रखें कि क्या पढ़ाया जाना है।
- योजना को छोटे-छोटे अंशों में विभाजित करें, जैसे कि कहानी को समझना, उसे पढ़ना, उसके बारे में लिखना, उच्चारण, अनुक्रमण आदि।
- सरल कहानी वाली पुस्तकें चुनें जिसमें बहुत सारे पात्र न हों।
- यदि सम्भव हो तो कहानी पर आधारित फ़िल्म दिखाएँ। इससे बच्चे कहानी के साथ अधिक गहराई से जुड़ेंगे।
- मौखिक और लिखित कार्य करवाएँ।



अमृता मसीह 2012 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़ में कार्य कर रही हैं। उन्होंने 2000 में एक निजी स्कूल में अपना शिक्षण कार्य शुरू किया जहाँ वे अँग्रेज़ी और विज्ञान पढ़ाती थीं। इसके बाद वे विज्ञान की शिक्षिका के रूप में काम करने लगीं। उन्होंने जीव विज्ञान और शिक्षा में स्नातक और रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। हाल ही में डीएलएड की पढ़ाई पूरी की है और उन्हें बच्चों के साथ काम करना पसन्द है। उनसे amrita.masih@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

अधिगम के लिए सहायक वातावरण बनाना

अरुणा ज्योति

'हर बच्चा सीख सकता है', यह कथन मुझे यह सोचने पर मजबूर करता है कि वह 'क्या सीखता है'? क्योंकि मेरे लिए, एक स्तर पर, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि हर बच्चा सीख सकता है।

जब हम यह मानकर चलते हैं कि सीखना केवल स्कूलों में ही सम्भव है तब यह एक विवादास्पद प्रश्न बन जाता है। स्कूल का अर्थ है 'उपलब्धि' के लिए, 'प्रतियोगिता' करने के लिए, 'प्रदर्शन' करने के लिए और 'सफल' होने के लिए सीखना... अभिभावक या शिक्षक के रूप में हमारी यह आकांक्षा होती है कि हमारे बच्चे अपने जीवन में सफल हों। बच्चे की 'क्षमता', 'रुचियाँ', 'चुनौतियाँ', 'योग्यताएँ' आदि यहाँ पर मायने नहीं रखतीं। इसलिए बच्चों को स्कूल भेजना और वह भी एक 'अच्छे स्कूल' (जिसकी परिभाषा हममें से हर एक के लिए अलग-अलग होती है) में भेजना पालन-पोषण का एक बेहद महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन जाता है।

> "वैसे तो शिक्षा का मूल उद्देश्य बच्चों को उनकी क्षमता विकसित करने, जीवन में एक सार्थक मार्ग को परिभाषित करने और उसका अनुकरण करने में सक्षम बनाना है; लेकिन वैश्वीकरण ने शिक्षा प्रणाली पर एक अतिरिक्त दबाव डाला है कि वह ऐसे 'विजेता' तैयार करे जो योग्यतम की उत्तरजीविता की दौड़ में लड़ने के लिए तैयार हों।" — मीनू आनन्द

मीनू आनन्द का यह कथन फ़िल्म तारे ज़मीन पर की याद दिलाता है। यह फ़िल्म मुझे वहाँ तक तो अच्छी लगी जब एक संवेदनशील शिक्षक बच्चे की समस्या को पहचान लेता है और उसे प्रेरित करने के तरीक़े खोजता है। बच्चों की प्रतिभा को पहचानना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है और उन्हें आशा देता है। वे ख़ुशी-ख़ुशी स्कूल आने के लिए तत्पर रहते हैं और लगातार आते रहते हैं। यह बच्चों को अपने हिसाब से रहने देने का एक सुन्दर तरीक़ा भी है। साथ ही हम ख़ुद को भी यह याद दिला पाते हैं कि लोग विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभाशाली हो सकते हैं। लेकिन फ़िल्म को लेकर मुझे समस्या (व्यक्तिगत रूप से) तब हुई जब बच्चे को 'विजेता' होना ही था!

सीखने में बच्चों की मदद करने के लिए शिक्षकों को निस्सन्देह रूप से विभिन्न रणनीतियों का उपयोग करना चाहिए, जैसे— बच्चों को पढ़ाई में शामिल करने के लिए गतिविधि आधारित अधिगम का उपयोग करना, प्रश्न पूछने को प्रोत्साहित करने के लिए चर्चा करना, अधिगम को दिलचस्प बनाने के लिए टीएलएम और वर्कशीट्स आदि का उपयोग करना। मैं ऐसी अनेक चीज़ों की सूची बना सकती हूँ जिनका उपयोग शिक्षक करते हैं और कड़ी मेहनत भी करते हैं ताकि बच्चों को सीखने में मदद मिल सके।

तो भी हम इस सच्चाई से इन्कार नहीं कर सकते कि हर कक्षा में ऐसे बच्चे होते हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई होती है। वे कक्षा में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते, अधीर होते हैं, उनके व्यवहार को लेकर समस्याएँ होती हैं, वे गृहकार्य नहीं करते या दिया गया कार्य पूरा नहीं करते आदि। कक्षा में इस प्रकार के मुद्दों के कई कारण हो सकते हैं, मसलन अधिगम सम्बन्धी समस्याएँ (जैसे डिस्लेक्सिया आदि), विशेष आवश्यकताएँ, पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी या भावनात्मक समस्याएँ। मैं यहाँ पर विशेष आवश्यकताओं वाले मुद्दे को छोड़ रही हूँ और व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं और पहली पीढ़ी के सीखने वाले बच्चों से सम्बन्धित मुद्दों की बात करूँगी।

मुद्दे कई हो सकते हैं : आक्रामकता, हिंसा, चिड़चिड़ापन, अवज्ञा, टालना या थकावट, नींद, सुस्ती की शिकायतें आदि। कई बार इस तरह के व्यवहार बच्चे की किसी आन्तरिक गड़बड़ी की अभिव्यक्ति हो सकते हैं। जो बच्चे भावनात्मक रूप से परेशान होते हैं, वे स्कूल के माहौल के एक या अधिक महत्त्वपूर्ण पहलुओं के साथ समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। उन्हें सीखने में समस्या होती है क्योंकि वे ध्यान देने में सक्षम नहीं होते हैं। उन्हें दोस्ती करने में कठिनाई होती है, हो सकता है कि वे अपने आप को अलग कर लें और कक्षा की गतिविधियों में भाग लेना बन्द कर दें। सभी बच्चों में अन्तर्निहित ताक़त होती है और वे सीखने में सक्षम होते हैं, बशर्ते कि कक्षा या स्कूल के कार्यक्रम उन्हें एक सकारात्मक वातावरण प्रदान करें। उनके सीखने की जगह सहायक, उत्साहजनक, सुरक्षित और हितकारी होनी चाहिए।

ऐसा वातावरण बनाने के लिए शिक्षकों को अच्छी तरह से तैयार होना पड़ेगा। बच्चे के व्यवहार के पीछे का कारण जानने के लिए बच्चों की थोड़ी बहुत देखभाल करने और व्यक्तिगत रूप से उनका ध्यान रखने से वास्तव में उनकी बहुत

मदद हो सकती है। बच्चों से उनकी भावनाएँ व्यक्त करवाना आसान काम नहीं है क्योंकि हो सकता है कि उन्हें अपनी भावनाओं को प्रभावी ढंग से व्यक्त करना नहीं सिखाया गया हो। ऐसे समय में शिक्षक बच्चे के सीखने के लिए उचित या वांछनीय व्यवहार के नमूने पेश कर सकते हैं। चूँकि भावनाओं को व्यक्त करने में समय लगता है और इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है, इसलिए बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि शिक्षक बच्चों को सँभालते समय अपनी भावनाओं को कैसे नियंत्रित करते हैं। बच्चों के साथ नियमित रूप से अनौपचारिक बातचीत करने से इस सम्बन्ध में मदद मिल सकती है। जब बच्चे काम कर रहे होते हैं, उस समय कुछ शिक्षक हल्का-हल्का और मधुर संगीत भी बजाते हैं ताकि उन्हें शान्त और तनावमुक्त वातावरण मिले। कुछ शिक्षक बच्चों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए चित्र बनाने या रंग भरने को कहते हैं, तो कुछ अन्य बच्चों को अपने व्यवहार पर चिन्तन करने के लिए समय देते हैं। मुझे लगता है कि शिक्षकों को इस तरह की रणनीतियों का सहारा लेने से पहले बच्चों की शैली और सुविधा के आधार पर इनका चयन करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि कौन-सी रणनीति उनके लिए सबसे सही रहेगी।

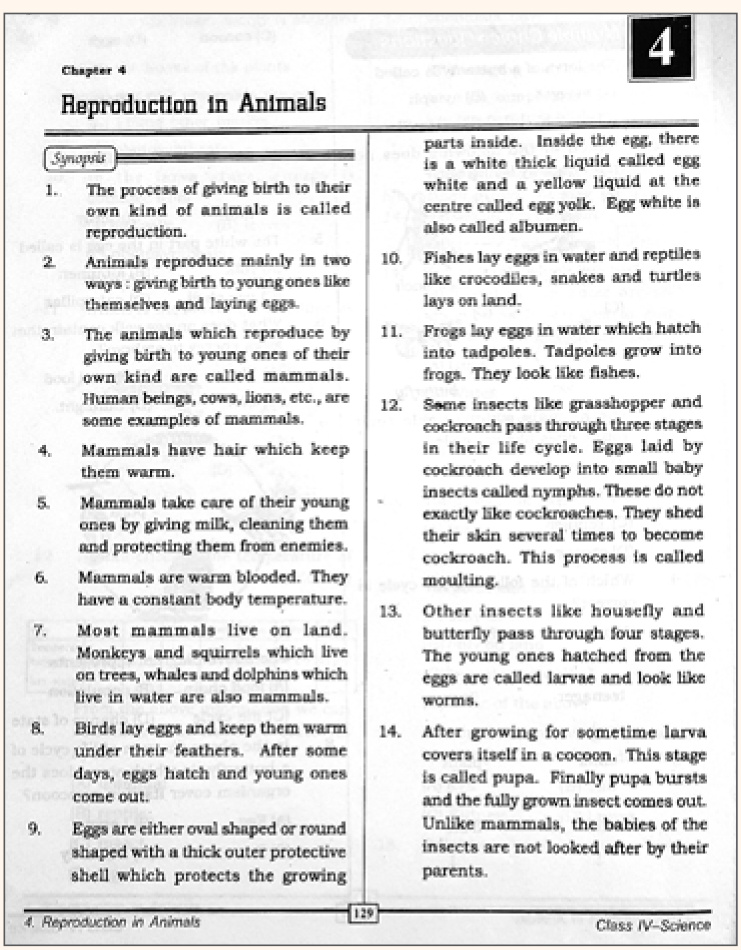
किन्तु किसी बच्चे के मुद्दों के बारे में कोई निष्कर्ष निकालने से पहले विशेष चिकित्सकों, अभिभावकों और विशेषज्ञों के साथ इस मामले पर चर्चा करना बेहतर होगा।

मेरी जानकारी के अनुसार बच्चे कभी-कभी केवल इसलिए अधीर हो जाते हैं क्योंकि वे कक्षा में ऊब जाते हैं। इसका कारण यह है कि जो कुछ पढ़ाया जा रहा है या तो वे उसके बारे में ज़्यादा जानते होते हैं (उससे परिचित होते हैं) या फिर शिक्षक जो पढ़ा रहे हैं वे उससे जुड़ नहीं पाते। यह भी हो सकता है कि वे रोज़मर्रा के किसी काम के चलते कक्षा में ध्यान न दे पा रहे हों, जैसे कि शाम को जन्मदिन की पार्टी, माँ का अस्वस्थ होना या घर में किसी गड़बड़ी का होना, दिन की शुरुआत ही ग़लत होना, गृहकार्य न करना इत्यादि। इसलिए वे मानसिक रूप से कक्षा में उपस्थित नहीं होते हैं। वे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी भी हो सकते हैं जो स्कूली शिक्षा और सीखने के तरीक़ों के साथ तालमेल बैठाने में समय ले रहे हैं।

कुछ ऐसी रणनीतियाँ जो शायद कारगर हो सकती हैं

जो बच्चे दूसरों की तुलना में होशियार होते हैं

हम किस आधार पर किसी को होशियार मानते हैं? शिक्षक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जब बच्चा कक्षा के स्तर के वे



Chapter 4

4

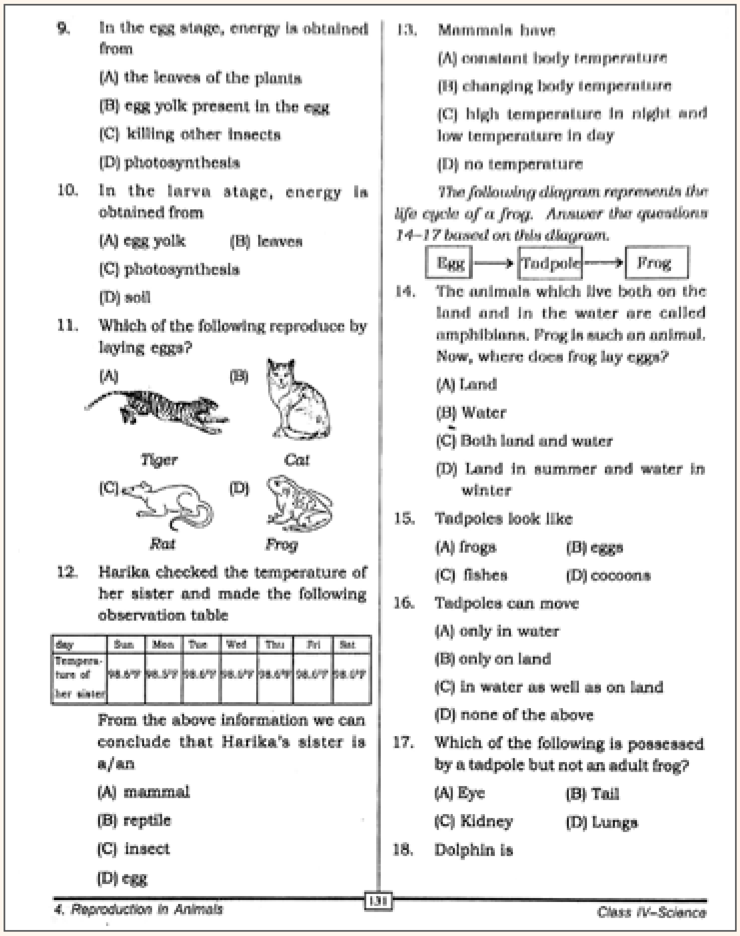
Reproduction in Animals

Synopsis

1. The process of giving birth to their own kind of animals is called reproduction.
2. Animals reproduce mainly in two ways : giving birth to young ones like themselves and laying eggs.
3. The animals which reproduce by giving birth to young ones of their own kind are called mammals. Human beings, cows, lions, etc., are some examples of mammals.
4. Mammals have hair which keep them warm.
5. Mammals take care of their young ones by giving milk, cleaning them and protecting them from enemies.
6. Mammals are warm blooded. They have a constant body temperature.
7. Most mammals live on land. Monkeys and squirrels which live on trees, whales and dolphins which live in water are also mammals.
8. Birds lay eggs and keep them warm under their feathers. After some days, eggs hatch and young ones come out.
9. Eggs are either oval shaped or round shaped with a thick outer protective shell which protects the growing parts inside. Inside the egg, there is a white thick liquid called egg white and a yellow liquid at the centre called egg yolk. Egg white is also called albumen.
10. Fishes lay eggs in water and reptiles like crocodiles, snakes and turtles lays on land.
11. Frogs lay eggs in water which hatch into tadpoles. Tadpoles grow into frogs. They look like fishes.
12. Some insects like grasshopper and cockroach pass through three stages in their life cycle. Eggs laid by cockroach develop into small baby insects called nymphs. These do not exactly like cockroaches. They shed their skin several times to become cockroach. This process is called moulting.
13. Other insects like housefly and butterfly pass through four stages. The young ones hatched from the eggs are called larvae and look like worms.
14. After growing for sometime larva covers itself in a cocoon. This stage is called pupa. Finally pupa bursts and the fully grown insect comes out. Unlike mammals, the babies of the insects are not looked after by their parents.

4. Reproduction in Animals 129 Class IV–Science

सभी काम कर ले जो सभी से अपेक्षित हैं, तो उसके बाद ही उसे कोई अतिरिक्त काम दिया जा सकता है। बच्चे को विभिन्न दृष्टिकोणों से एक ही समस्या (अवधारणा) का हल करने के विस्तृत करने का अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही अभ्यास के नाम पर बार-बार एक ही तरह का काम करके यंत्रवत रूप से उसे करने के बोझ को महसूस किए बिना उसी अवधारणा



9. In the egg stage, energy is obtained from
(A) the leaves of the plants
(B) egg yolk present in the egg
(C) killing other insects
(D) photosynthesis

10. In the larva stage, energy is obtained from
(A) egg yolk (B) leaves
(C) photosynthesis
(D) soil

11. Which of the following reproduce by laying eggs?
(A) Tiger (B) Cat
(C) Rat (D) Frog

12. Harika checked the temperature of her sister and made the following observation table

day	Sun	Mon	Tue	Wed	Thu	Fri	Sat
Temperature of her sister	98.6°F	98.5°F	98.6°F	98.6°F	98.6°F	98.6°F	98.6°F

From the above information we can conclude that Harika's sister is a/an
(A) mammal
(B) reptile
(C) insect
(D) egg

13. Mammals have
(A) constant body temperature
(B) changing body temperature
(C) high temperature in night and low temperature in day
(D) no temperature

The following diagram represents the life cycle of a frog. Answer the questions 14–17 based on this diagram.

Egg → Tadpole → Frog

14. The animals which live both on the land and in the water are called amphibians. Frog is such an animal. Now, where does frog lay eggs?
(A) Land
(B) Water
(C) Both land and water
(D) Land in summer and water in winter

15. Tadpoles look like
(A) frogs (B) eggs
(C) fishes (D) cocoons

16. Tadpoles can move
(A) only in water
(B) only on land
(C) in water as well as on land
(D) none of the above

17. Which of the following is possessed by a tadpole but not an adult frog?
(A) Eye (B) Tail
(C) Kidney (D) Lungs

18. Dolphin is

4. Reproduction in Animals 131 Class IV–Science

अवसर देकर उसे चुनौतीपूर्ण बनाएँ। उदाहरण के लिए, गणित में यदि गुणन संक्रिया की बात चल रही है तो शिक्षक आमतौर पर एक अंकीय से दो अंकीय, दो से तीन अंकीय, तीन से चार अंकीय— इस तरह से आगे बढ़ते हैं। बच्चे 4×25 को केवल पहाड़े के ज्ञान का उपयोग करके हल करने की बजाय अपने सवाल ख़ुद बना सकते हैं, वे पहाड़े में मिलने वाले पैटर्न खोज सकते हैं, कहानी-प्रश्न या इबारती प्रश्न के माध्यम से इसे हल कर सकते हैं, अपने ख़ुद के कहानी-प्रश्न बना सकते हैं और इस तरह के सवालों के जवाब खोज सकते हैं, कि हालाँकि 25×4 और 4×25 का उत्तर समान है, फिर उन्हें इस तरह लिखने में क्या अन्तर है। शिक्षक बच्चों को सवाल हल करने के विभिन्न तरीक़ों से भी अवगत करा सकते हैं। उदाहरण के लिए मुझे याद है कि एक बच्चा 40 + 42 को हल करने के लिए पहले 40 + 40, जोड़ रहा था और फिर 2 जोड़ रहा था। घटाव के सवालों में बच्चों को आगे की गिनती करना सिखाया जाता है, लेकिन कुछ बच्चों के लिए उलटी गिनती करना सुविधाजनक हो सकता है —ऐसे विभिन्न तरीक़ों से सवाल हल करने की अनुमति दें। यह अभ्यास, बच्चे को अपनी सोच के दायरे को पर काम करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। इससे बच्चे का जुड़ाव भी बना रहेगा। बेशक, इस सबके लिए शिक्षक को योजना बनानी पड़ेगी।

जो बच्चे आसानी से ऊब जाते हैं

उस बच्चे का क्या जो कक्षा में इसलिए ऊब जाता है क्योंकि जो कुछ सिखाया जा रहा है उससे वह जुड़ नहीं पाता? शिक्षकों को चाहिए कि वे ऐसे तरीक़े खोजें जिससे बच्चे अवधारणाओं को वास्तविक जीवन के साथ जोड़ सकें या ऐसे उदाहरणों का उपयोग करें जिससे बच्चे को अपना नया अधिगम आस-पास की चीज़ों से जोड़ने में मदद मिले —वैसे भी यह एक सामान्य रणनीति के रूप में आवश्यक है। कुछ बच्चों को लम्बे समय तक इसकी आवश्यकता हो सकती है और शिक्षकों को इसके बारे में जानकारी होनी चाहिए।

इसके अलावा अगर अवधारणाओं या विषय सामग्री को छोटे और प्रबन्धनीय अंशों में विभाजित कर दिया जाए तो उससे भी बहुत मदद मिल सकती है। उदाहरण के लिए यदि 'जानवरों में प्रजनन' विषय पढ़ाना है तो विषय सामग्री को बच्चे के लिए

चित्रानुसार फिर से तैयार किया जा सकता है अन्त में दिए गए जवाब की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसका उद्देश्य यह है कि बच्चा सीख जाए, इसलिए समय के साथ-साथ (बशर्ते कक्षा में सही उत्तर देने की चिन्ता दूर हो जाए) बच्चे यह सीख जाएँगे कि पहले से उत्तरों को न देखें।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के सामने आने वाले मुद्दे

उपरोक्त रणनीति को कुछ हद तक पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों की भी मदद करनी चाहिए, हालाँकि उनके मुद्दे कुछ अलग होते हैं। वे कई अन्य कारणों से चिन्ता का अनुभव कर सकते हैं, जैसे— नई जगह, नई परिस्थिति, नए लोग, लम्बे समय तक घर से दूर रहना, भाषा की बाधा आदि। इस बात की सम्भावना बहुत अधिक है कि यह बच्चे या कुछ अन्य बच्चे (जो ज़रूरी नहीं कि पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हों) असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन करें। शायद कुछ बच्चे कक्षा में रहते हुए भी कक्षा से अलग हो जाएँ, शिक्षकों को जवाब न दें या प्रतिक्रिया न दिखाएँ (तीसरी कक्षा में मेरे पास एक ऐसा बच्चा था जिसे कक्षा में बोलने के लिए लगभग एक साल लग गया था), कुछ आक्रामक हो सकते हैं, कुछ धौंस जमाने वाले बन सकते हैं, कुछ बिना किसी स्पष्ट कारण के रोने लग सकते हैं (कुछ भी नया होने पर चिन्ता करने लगना)। जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया, किसी प्रकार की चिन्ता का होना और विभिन्न प्रकार की अनसुलझी भावनात्मक समस्याओं का सामना करना इस तरह के व्यवहार का कारण हो सकता है। इसलिए शिक्षकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे बच्चे के साथ घनिष्ठता स्थापित करें (उम्र या कक्षा का स्तर कोई बाधा नहीं है— भावनात्मक मुद्दे किसी भी आयु वर्ग के लिए एक समस्या हो सकते हैं —क्या हम सभी व्यक्तिगत तनाव की स्थितियों के कारण बुरे दिनों से नहीं गुज़रते?)

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को लेकर शिक्षकों को ज़्यादातर इस समस्या का सामना करना पड़ता है कि बच्चों को घर में अकादमिक सहायता प्रदान करने वाला या उनसे अपना गृहकार्य करवाने वाला कोई नहीं होता है। पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों की परिभाषा ही यह है कि जो पहली बार स्कूल जा रहे हैं। अतः बतौर शिक्षक यह सोचना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ऐसी स्थितियों में गृहकार्य की प्रकृति कैसी हो या गृहकार्य देने के क्या कारण हैं। जब यह स्पष्ट है कि बच्चे गृहकार्य नहीं कर सकते तो फिर उसे देते रहने का क्या अर्थ है? थोड़ा रचनात्मक होने और बच्चों की पारिवारिक स्थितियों पर विचार करने से बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। शिक्षक आसानी से बच्चों में अन्य ऐसी आदतें डाल सकते हैं जो अकादमिक अधिगम का मार्ग प्रशस्त करती हों, जैसे— वे बच्चों के लिए स्कूल के बाद के समय के लिए कार्यकलाप निर्धारित कर सकते हैं (वस्तुतः यह एक प्रकार की समय सारणी ही होगी क्योंकि हो सकता है कि माता-पिता के पास अपने बच्चों के साथ बिताने का समय न हो), दिनचर्या निर्धारित करके उनमें काम करने की आदतें विकसित कर सकते हैं, उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकते हैं (जैसे कि लेबल, साइन बोर्ड, टीवी आदि), समय प्रबन्धन के कौशल सिखा सकते हैं (स्कूल के लिए तैयार होने के लिए सुबह ठीक समय पर जागने जैसी सरल आदतें)।

एक बार फिर मैं इस तथ्य पर ज़ोर देना चाहूँगी कि यह रणनीतियाँ केवल छोटी कक्षाओं के लिए नहीं हैं। बड़ी कक्षाओं में भी कई ऐसे बच्चे होते हैं जिनमें ऐसे अनुशासन और स्व-नियमन की आदतें कम ही होती हैं। शिक्षक जो कार्य बच्चों को देते हैं उसके बारे में समझाने के लिए उन्हें अतिरिक्त प्रयास करना चाहिए। अभिभावकों से अनुरोध किया जा सकता है कि गृहकार्य करते समय वे अपने बच्चे के पास रहें या बच्चों से सिर्फ़ इतना पता करें कि क्या उन्हें कोई काम पूरा करना है। भले ही वे कोई अकादमिक सहायता प्रदान न कर पाएँ लेकिन अगर वे अपने बच्चे की स्कूलिंग और सीखने की प्रक्रिया में शामिल भर हो जाएँ तो बच्चा पढ़ाई करने के लिए प्रेरित हो सकता है। अभिभावक के साथ इस तरह की भागीदारी और जुड़ाव से निश्चित रूप से मदद मिलेगी और वे अपने बच्चों का समर्थन करना शुरू कर देंगे। इस तरह के जुड़ाव के लिए अभिभावक-शिक्षक सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण होते हैं। जब अभिभावक सम्मानित और जुड़ाव महसूस करेंगे तो वे यह भी सुनिश्चित करेंगे कि उनका बच्चा नियमित रूप से स्कूल जा रहा है क्योंकि कई मामलों में स्कूल न जाना भी अपने आप में एक चिन्ता का विषय हो सकता है।

माना कि अंक बच्चों के अधिगम का एक संकेतक हैं और अभिभावक भी उन्हें महत्त्वपूर्ण मानते हैं। लेकिन स्कूल, अभिभावक-शिक्षक बैठकों के दौरान अभिभावकों के साथ विचारपूर्ण बातचीत करके, अधिगम को प्रमाण आधारित बनाने की पहल कर सकते हैं। शिक्षकगण अभिभावकों के साथ बच्चों के काम की वर्कशीट, उत्तर पुस्तिकाएँ और नोटबुक साझा कर सकते हैं और अभिभावक को उनके बच्चे के काम और क्षमता के बारे में समझा सकते हैं। अकसर इस पर विचार नहीं किया जाता है क्योंकि अभिभावक शिक्षित नहीं होते और यह महसूस किया जाता है कि शायद वे यह सब समझ न पाएँ। मुझे लगता है कि बतौर शिक्षक यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि बच्चों के काम को अभिभावकों के साथ साझा करें और अभिभावकों का यह अधिकार है कि वे अपने बच्चे के कार्य-प्रदर्शन के बारे में जानें। अभिभावक-शिक्षक की बैठकों को शिकायतों की बैठकें नहीं बनना चाहिए क्योंकि इसी कारण से माता-पिता इन बैठकों से बचने की कोशिश

करते हैं। यदि हम वास्तव में मानते हैं कि 'हर बच्चा सीख सकता है' तो हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हम बच्चे के गुणों को उजागर करने के साथ-साथ यह भी बताएँ कि उन्हें किन क्षेत्रों में सुधार करना है। कुछ स्कूल अभिभावक-शिक्षक की बैठकों में शैक्षिक फ़िल्में दिखाते हैं। यह सभी अभिभावकों को अपने बच्चे की शिक्षा में शामिल करने के तरीक़े हैं, न कि सिर्फ़ उनके अकादमिक क्षेत्रों में शामिल करने के।

सभी विद्यार्थी विविध आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ स्कूल आते हैं, इस लिहाज से कोई भी विद्यार्थी मौलिक रूप से भिन्न नहीं है। स्कूल ऐसे बच्चों की सहायता करने के लिए उपचारात्मक कक्षाएँ, अतिरिक्त कक्षाएँ भी चलाते हैं। उपचारात्मक कक्षाएँ तभी सफल होंगी जब शिक्षक बच्चों के सीखने के अन्तराल को पाटने के लिए विभिन्न रणनीतियों का उपयोग करेंगे और कक्षा में की गई चीज़ों को दोहराएँगे नहीं। अन्यथा बच्चे इन कक्षाओं में शामिल न होने के बहाने ढूँढ़ेंगे। यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू समुदाय का जुड़ाव है : हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि अभिभावक, शिक्षक और स्कूल एक ही दिशा में सोचते हों, एक ही उद्देश्य के लिए काम कर रहे हों और बच्चों की भलाई के लिए एक-दूसरे का समर्थन करते हों।

बतौर शिक्षक यह हम सब पर निर्भर है कि हम बच्चों की ज़रूरतों को पहचानें और उन्हें अधिगम के लिए एक सुरक्षित और अनुकूल वातावरण प्रदान करें। अधिगम या सीखने के बारे में अपनी यादों को ताज़ा करने के लिए एनसीएफ 2005 दस्तावेज़ के अध्याय 2 (सीखना और ज्ञान) पर फिर से एक बार नज़र डालना लाभदायक हो सकता है।

References

Tom. E.C. Smith, Polloway, et al. (2015) Teaching Students with Special Needs in Inclusive Settings. Toronto; Pearson Canada Inc

National Curriculum Framework 2005

Anand, M. (2015) Globalisation and Indian School Education: Impact and Challenges. European Scientific Journal, 1: 235–49.



अरुणा ज्योति अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में प्राध्यापक हैं। उन्हें स्कूल अध्यापिका के रूप में कई वर्षों का अनुभव है। परामर्श और विशेष आवश्यकताओं के विभाग के प्रमुख के रूप में उन्होंने धीमी गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों के लिए एक गतिविधि केन्द्र स्थापित किया है। अरुणा वीएचएस अस्पताल, चेन्नई और एसएनईएचए (धीमी गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों के लिए एक केन्द्र) में स्वयंसेवक रही हैं। अरुणा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन स्कूलों की उस टीम में भी रही हैं, जिसने आरम्भ के छह अज़ीम प्रेमजी स्कूल स्थापित किए थे। उन्होंने इन स्कूलों में शिक्षक व्यावसायिक विकास, पाठ्यक्रम विकास, सीसीई, ईसीई, विशेष शिक्षा और किशोरावस्था से सम्बन्धित क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर काम किया है। उनसे aruna.v@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

विषयों की रेलगाड़ी पर चिट्ठी की सवारी

चन्द्रिका सोनी

विषयों की सीमा हटने से सीखना कितना मज़ेदार हो जाता है यह हर शिक्षक साथी ने महसूस किया होगा। और छोटे बच्चे तो वैसे ही विषयों की इस सीमा में नहीं बँधते। उनका मन करेगा, तो पर्यावरण की हवा संगीत की कॉपी में मिलेगी, गीतों की माला हिन्दी की कॉपी में और टोकरी से ग़ायब चार आम पर्यावरण के पन्नों में। सारे विषय एक-दूसरे से इस तरह गुँथे हुए हैं कि बच्चे उन्हें अलग करना भी नहीं चाहते। उसपर अगर दो विषयों में मिलता-जुलता कोई प्रकरण हो तो फिर खिचड़ी और पुलाव तो होना ही है। ऐसे ही एक ख़ूबसूरत अनुभव से मेरा सामना हुआ कक्षा तीसरी में। मैं इस कक्षा के साथ एक ख़ास जुड़ाव महसूस करती हूँ। क्योंकि हर रोज़ मेरा इस क्लास में कम से कम दो से तीन बार जाना होता है और कभी-कभी तो एक दिन में चार बार भी हो जाता है।

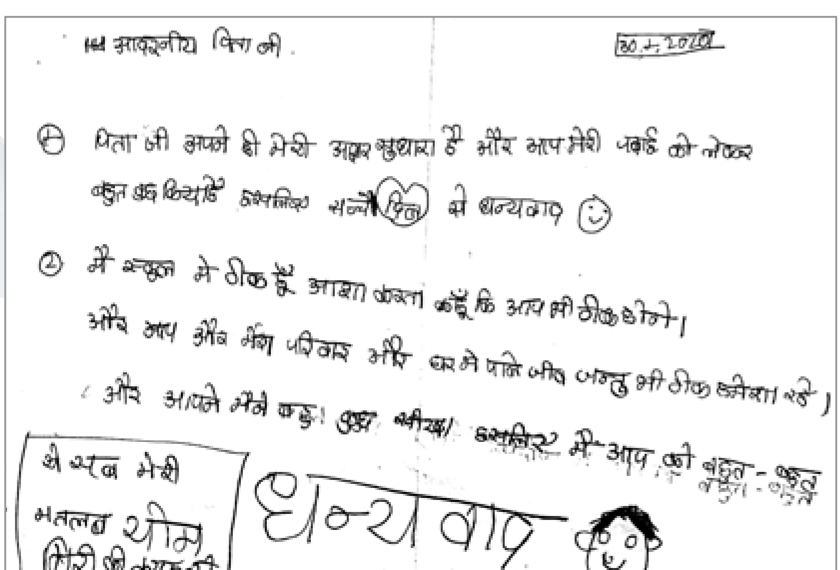
यहाँ मैं दो विषयों पर काम करती हूँ—पर्यावरण अध्ययन और हिन्दी। हिन्दी विषय से जुड़कर मैं पहली बार काम कर रही हूँ, इसलिए भाषा की जटिलता कभी-कभी मुझे उलझा देती है और कभी-कभी नई राह भी खोल देती है, जो मुझे दूसरे विषय— पर्यावरण अध्ययन में भी मदद कर जाती है। कभी-कभी जब दोनों विषयों में एक ही प्रसंग (थीम) हो तो दोनों को साथ में पढ़ाने का उभयनिष्ठ (कॉमन) तरीक़ा भी मिल जाता है।

दो विषयों में मिलती-जुलती थीम का एक ऐसा ही उदाहरण है :

'घटती दूरियाँ' (संचार के साधन पर आधारित) — पर्यावरण अध्ययन में।

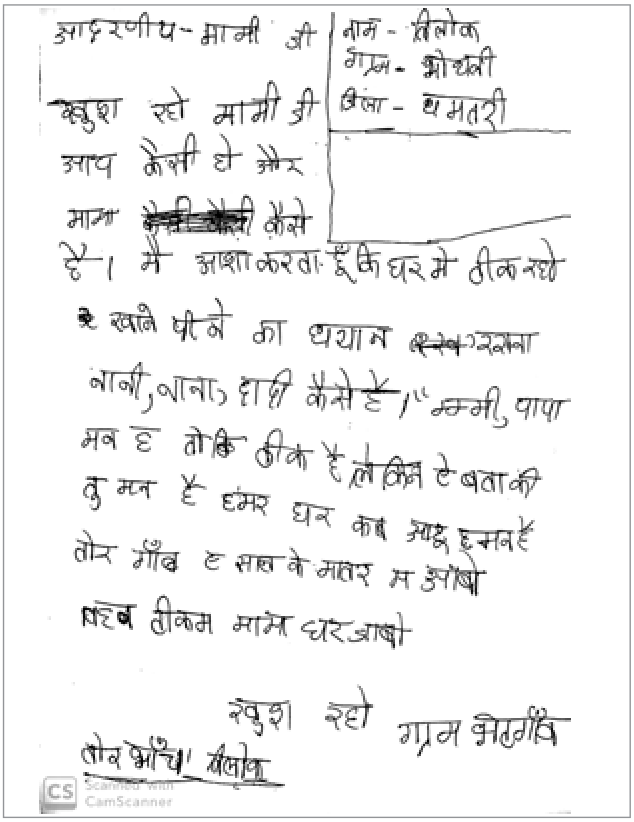
'मैत्री बाग़' (पत्र लेखन की शुरुआत) — हिन्दी में।

पर्यावरण अध्ययन में संचार के साधनों का टॉपिक हमेशा परेशान करता है, क्योंकि अभी के बच्चे पत्र लेखन न करते हैं, न घर में किसी को पत्र लिखते देखते हैं। वैसे भी आजकल मोबाइल संचार के ज़माने में चिट्ठी लिखना तक़रीबन ग़ायब ही हो गया है, वैसे ही जैसे पुराने समय में सन्देश भेजने के लिए कबूतरों का इस्तेमाल। यही हाल अब लेटर बॉक्स का भी है। दिखते भी नहीं और इस्तेमाल भी नहीं होते। बच्चों को पत्र लिखना और उसके पहुँचने की प्रक्रिया को समझाना हवा में महल बनाने के समान ही मुश्किल लगता है। बच्चों ने न कभी अन्तर्देशीय देखा है, न पोस्टकार्ड। न उन्होंने इन सबका प्रयोग होते देखा है। लिफ़ाफ़े से तो फिर भी उनका आमना-सामना हो ही जाता है, राखी के समय या शादी के कार्डों के रूप में।



---

[1]A zoo in Bhilai, Chhattisgarh, India.

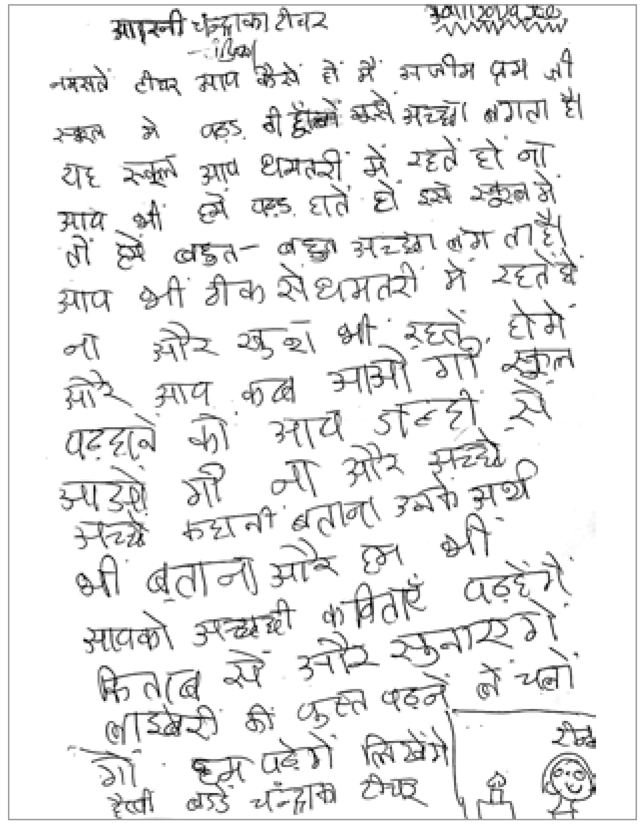


आदरणीय मामी जी
नाम - तिलोक
ग्राम - भोथली
जिला - धमतरी

खुश रहो मामी जी आप कैसी हो और मामा कैसे है। मै आशा करता हूं कि घर मे ठीक रहो खाने पीने का धयान रखना नानी, नाना, दादी कैसे है। मम्मी, पापा मन ह तो ठीक है लेकिन ये बताकी तु मन हे हमर घर कब आहु हमरहे तोर गाँव ह सब के मतर म आबो प्रहव तीकम मामा घर आबो

खुश रहो ग्राम भोथली

तोर भाँचा तिलोक



आदरणी चन्द्रिका टीचर

नमस्ते टीचर आप कैसे हो मैं अजीम प्रेम जी स्कूल मे पढ़ती हूँ मुझे अच्छा लगता है यह स्कूल आप धमतरी में रहते हो ना आप भी हमें पढ़ाते हो इस स्कूल मे तो हमें बहुत- बहुत अच्छा लगता है आप भी ठीक से धमतरी मे रहते हैं ना और खुश भी रहते होंगे और आप कब आओगे स्कूल पढ़ाने को आप जल्दी से आइये गी ना और अच्छे अच्छे कहानी बताना उसके अर्थ भी बताना और हम भी आपको अच्छी कविताएं पढ़ेंगे किताब से और सुनाएंगे लाइब्रेरी की कुछ पढ़ने को चलो गो हम पढ़ेगो लिखेंगे

चन्द्रिका टीचर

लेकिन फिर भी वे चिट्ठियों की आवाजाही की प्रक्रिया से तो अनजान ही रहते हैं।

ऐसे में यह प्रक्रिया बच्चों को कैसे समझाई जाए मैं यही सोच रही थी कि हिन्दी में 'मैत्री बाग़' पाठ की शुरुआत हुई। इसने मुझे रास्ता दिखाया। इस पाठ में एक चाचा अपने भतीजे को पत्र लिखकर मैत्री बाग़ के बारे में विस्तार से बता रहे हैं। इस पाठ को पढ़ने के बाद बच्चों ने भी अपने-अपने दोस्त, परिवार के सदस्यों और शिक्षकों के नाम कुछ पत्र लिखे। अब बात आई पत्र भेजने की।

पत्र भेजने के लिए पता लिखना होता है। उसे लेटर बॉक्स में डालना होता है। इस प्रक्रिया में दिक़्क़त महसूस हुई। पर्यावरण अध्ययन की किताब में छपा चित्र भी भ्रमित करता है। कौन-सा चरण किसके बाद आता है यह आप चित्र देखकर नहीं समझ सकते। मसलन, यह स्पष्ट नहीं होता कि डाकघर में चिट्ठी जमाता व्यक्ति भेजने वाले व्यक्ति के शहर के पोस्ट ऑफ़िस को दर्शा रहा है या चिट्ठी प्राप्त करने वाले व्यक्ति के शहर को। इस टॉपिक पर रोल प्ले कराना काफ़ी सहायक होता है, पर वह भी सही तरीक़े से हो पाए यह सुनिश्चित कर पाना मुश्किल हो सकता है।

इन्हीं सब दुविधाओं के बीच मुझे एकलव्य प्रकाशन की किताब ख़त का ध्यान आया। यह एक बहुत ही ख़ूबसूरत छोटी-सी कहानी है जो एक नन्ही बच्ची अपूर्वा ने अपने दादाजी (आजोबा) के नाम लिखी है, जो नागपुर में रहते हैं। अपूर्वा ने यह कहानी अपने दादाजी के जन्मदिन के अवसर पर बधाई देने के लिए लिखी है। वह चाहती है कि ख़त समय पर उसके दादाजी के पास पहुँच जाए। उसने लिफ़ाफ़े पर दो सुन्दर आँखें और मुस्कराहट बताने वाला एक चित्र बनाया है। और अन्दर ख़ूबसूरत फूलों की बेल के बीच सन्देश लिखा है।

फिर वह उस पत्र को लेटर बॉक्स में डालते हुए कहती है, "जल्दी जाना मेरे दादू के पास।"





इस तरह उस चिट्ठी के नागपुर पहुँचने तक की यात्रा काफ़ी ख़ूबसूरत ढंग से लिखी गई है। इस कहानी को जब मैंने बच्चों के साथ साझा किया तो बच्चों के चेहरों पर एक प्यारी मुस्कान थी। तभी मैंने सोचा इसी को रोल प्ले में शामिल किया जाए।

हमने कुछ प्यारे-प्यारे पात्र बनाए। चार बच्चे लेटर बॉक्स बने, एक बच्ची अपूर्वा और एक बच्चा उसका पत्र। छह बच्चे अलग-अलग जगह जाने वाले पत्र और पार्सल बने। दो बच्चों ने डाकिए की भूमिका निभाई। कुछ बच्चे पोस्ट ऑफ़िस के कर्मचारी बने जो सील लगाने और पत्र छाँटने का काम करते हैं। कोई साइकिल तो कोई ट्रेन के डिब्बे बने। इस तरह कक्षा के आधे बच्चे इस गतिविधि में शामिल थे। बाक़ी बच्चे इस प्रक्रिया को होता देख रहे थे और काफ़ी ख़ुश थे।

कैसे लेटर बॉक्स में जाने के बाद पत्र डरता है, अँधेरे से; बाक़ी पत्रों के पीछे छुप जाता है; कैसे ट्रेन की आवाज़ पर सहम जाता है; कैसे उसकी दोस्ती नागपुर जाने वाले पार्सल बॉक्स के साथ होती है और वह पूरी रात ट्रेन में उस बड़े बॉक्स के पास सोता रहता है; उसपर जब ठप्प करके मुहर लगाई जाती है तो कैसे वह आँखें मीच लेता है। बच्चों ने हर पात्र बख़ूबी निभाया और पत्र भेजने की प्रक्रिया और विभिन्न चरण समझे।

बच्चों की भागीदारी इतनी उम्दा थी कि हमने ये सोचा कि क्यों न यह पूरी प्रक्रिया सुबह की सभा में करके दिखाएँ, ताकि बाक़ी सब भी इस ख़ूबसूरत गतिविधि और जटिल प्रक्रिया को आसानी से समझ पाएँ। बच्चे पूरे जोशोख़रोश से सम्बन्धित नाटक बनाने में लग गए। यह नाटक हम आने वाले बुधवार को दिखाने वाले थे।

तो इस तरह हिन्दी की पाठ्यपुस्तक से शुरू हुआ अध्ययन का एक विषय (पत्र) पर्यावरण अध्ययन विषय के चरणों को समझाता हुआ सुबह की सभा तक की यात्रा करने चला। इस विषय की समझ बनाने के दौरान हमें बच्चों के कुछ ख़ूबसूरत विचारों को जानने का मौक़ा मिला। कुछ अंश बहुत ख़ूबसूरत थे जो उन्होंने अपने माता-पिता को लिखे थे। उन्हें हमने उनके पालकों तक भी पहुँचाया। पालक भी बहुत ख़ुश हुए।



चन्द्रिका सोनी अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी में पर्यावरण अध्ययन की शिक्षिका के रूप में कार्यरत हैं। बतौर शिक्षिका, वह बच्चों के साथ मिल-जुलकर कार्य करने, रचनात्मक कार्यों से बच्चों की प्रतिभाओं को नए आयाम देने, कौशल आधारित पर्यावरण शिक्षण में विशेष रुचि लेती हैं। उनसे chandrika.soni@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

बच्चे विविध तरीक़ों से सीखते हैं | संगारेड्डी-अनुभव

ईसीई टीम (संगारेड्डी)

बाला और देविका 3 से 6 साल की उम्र के उन 3.3 करोड़ बच्चों में से हैं जो महिला विकास एवं बाल कल्याण मंत्रालय की समेकित बाल विकास सेवा (ICDS) द्वारा संचालित लगभग 13 लाख आँगनवाड़ी केन्द्रों (AWCs) में जाते हैं। यह आँगनवाड़ी केन्द्र पोषण, स्वास्थ्य और प्रारम्भिक शिक्षा सेवाएँ प्रदान करती हैं। यहाँ पर बच्चे शिक्षकों द्वारा संचालित खेलों और सार्थक गतिविधियों के माध्यम से सीखते हैं। आँगनवाड़ी केन्द्रों में आने वाले अधिकांश बच्चे वंचित परिवारों से आते हैं। क्या इन बच्चों के सीखने की क्षमता उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर निर्भर करती है? यदि वे बड़े होकर पढ़ना या लिखना नहीं सीखते हैं और बाद में स्कूल छोड़ देते हैं तो क्या यह उनकी ऐसी व्यक्तिगत कमियों के कारण है जो ख़राब आदतों, आलस्य या शिक्षा में अरुचि जैसे कारकों से प्रभावित हैं? क्या ग़रीबी, जाति, धर्म और अन्य सामाजिक भिन्नताएँ उनके सीखने की क्षमता के लिए ज़िम्मेदार हैं?

पहला केस

पृष्ठभूमि

3 साल की एक स्वस्थ बच्ची देविका, केवल 'अम्मा' और ऐसी ही कुछ एकल शब्द- ध्वनियों को बुदबुदा सकती है और उसे एक ऐसी बदकिस्मत बच्ची माना जाता था जो बोल नहीं सकती। उसके माता-पिता उसकी भाषाई अक्षमता को लेकर चिन्तित थे और उन्होंने कई साधु-महात्माओं की पूजा की तथा कई अनुष्ठान किए। वे थक चुके थे, निराश थे क्योंकि इन प्रयासों से कोई परिणाम नहीं निकल रहा था। जब कोई उम्मीद नहीं बची तो हर तरफ़ से निराश माँ ने 'प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा-दिवस' (अभिभावक-शिक्षक मीटिंग) में भाग लिया। उस बैठक में शिक्षक ने प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ईसीई) के महत्त्व को समझाया एवं बच्चों के उचित विकास के लिए उन्हें प्रारम्भिक वर्षों में जो अवसर मिलने चाहिए उनके सम्बन्ध में बताया। माँ ने तुरन्त देविका को आँगनवाड़ी केन्द्र में भर्ती कराया।

हस्तक्षेप

शुरू-शुरू में तो देविका काफ़ी झिझकती थी लेकिन शिक्षक द्वारा खेलने के अवसर दिए जाने पर वह जल्द ही अन्य बच्चों के साथ घुल-मिल गई और उनके साथ खेलने लगी। आँगनवाड़ी केन्द्रों की भौतिक व्यवस्था ऐसी थी कि देविका वहाँ के बारे में और अधिक जानने को उत्सुक हुई। वह खेल की सामग्रियों में रुचि दिखाती और उनकी ओर इशारा करते हुए अस्पष्ट शब्दों में कुछ बोलती। शिक्षक ने उसकी मदद की और उन चीज़ों के नाम बोलकर बताए जिनकी ओर देविका इशारा करती थी। जब उसी की उम्र के अन्य बच्चे भी उसकी ओर ध्यान देने लगे तो उनकी मदद से उसे सरल शब्दों को सीखने में मदद मिली। धीरे-धीरे वह छोटे वाक्य बनाने लगी। देविका की माँ ने यह बात सुनिश्चित की वह नियमित रूप से केन्द्र में आए। शिक्षक ने भी उसे प्रोत्साहित किया और कक्षा में सभी गतिविधियों में उसे भाग लेने दिया तथा कई अवसर प्रदान किए। इसके परिणामस्वरूप एक अन्तर्मुखी और ग़ैर-सहभागी बच्ची, एक सक्रिय और ख़ुशमिज़ाज बच्ची बन गई।

चिन्तन

आँगनवाड़ी केन्द्र में सीखने का भयमुक्त माहौल के होने के कारण देविका ख़ुशी-ख़ुशी चीज़ों का पता लगाकर सीखने में सक्षम हो सकी। शिक्षक ने बातचीत, कहानी सुनाने, एक्शन गीत गाने और खेल जैसी गतिविधियों के माध्यम से सीखने के अवसर पैदा किए, जिससे देविका की भाषा का विकास समृद्ध हुआ और उसे निरन्तर समर्थन के माध्यम से सीखने में मदद मिली। इसमें उसकी माँ ने भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। माँ ने सुनिश्चित किया कि देविका नियमित रूप से केन्द्र में जाए और साथ ही घर पर उसके साथ समय बिताया और जो कुछ उसने केन्द्र में सीखा था, उसे उसके साथ बैठकर दोहराया। अभिभावक-शिक्षक की एक मीटिंग में देविका की माँ ने अन्य बच्चों के माता-पिता के साथ अपने अनुभव साझा किए जिससे इस बात को बल मिला कि बच्चों के विकास में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण है।

दूसरा केस

पृष्ठभूमि

जब बाला 3 साल का था तब वह आँगनवाड़ी केन्द्र में शामिल हुआ। उस समय वह बहुत शान्त रहता था और केन्द्र के एक कोने में चुपचाप बैठा रहता, जबकि अन्य बच्चे गतिविधियों में भाग लेते। वह किसी से बात नहीं करता था। अगर उससे कोई सवाल पूछा जाता तो भी वह जवाब नहीं देता था। बाला के माता-पिता अलग हो चुके थे और वह अपनी माँ के साथ रहता

था। दिहाड़ी मज़दूर होने के कारण वह उसके साथ अधिक समय नहीं बिता पाती थी। जब उसके माता-पिता साथ थे, तब वह लगभग हर रोज़ यही देखता था कि उसका शराबी पिता उसकी माँ को परेशान कर रहा है। एक दिन उसके पिता ने बाला और उसकी बड़ी बहन को बाथरूम में बन्द कर दिया और उनकी माँ को जलाने की कोशिश की। सौभाग्य से उसकी माँ बच गई और उसके पिता को जेल भेज दिया गया। तबसे बाला ने अपनी माँ और बहन के अलावा किसी और से बात करना बन्द कर दिया।



हस्तक्षेप

शिक्षक उससे बातें करते, जान-बूझकर उसे बात का जवाब देने के लिए कहते और उसे खिलौनों के साथ खेलने के लिए प्रोत्साहित करते। आँगनवाड़ी केन्द्र की सहायिका ने भी उसके साथ बैठना शुरू किया। उसे अन्य बच्चों के साथ गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। वे व्यक्तिगत स्वच्छता की ओर भी उसका ध्यान दिलाती थीं क्योंकि वह केन्द्र में साफ़-सुथरे ढंग से नहीं आता था। उसने सहायिका के साथ खेलना शुरू किया और धीरे-धीरे अन्य बच्चों के साथ भी जुड़ गया। कुछ ही महीनों में वह खेल सम्बन्धी गतिविधियों में बख़ूबी हिस्सा लेने लगा। साथ ही कला सम्बन्धी गतिविधियों में भी सक्रियता से भाग लेने लगा; इतना ही नहीं वह ब्लॉक्स और स्ट्रा जैसी सामग्रियों का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग करने लगा।

चिन्तन

शिक्षक और सहायक की ओर से जो ध्यान, समर्थन और प्रोत्साहन बाला को मिला, उसकी वजह से वह अपने घर के प्रतिकूल माहौल के कारण उत्पन्न अपनी परेशानियों से निपट सका। जब एक बार बाला को यह महसूस हुआ कि वह सुरक्षित है और आराम से ख़ुद को व्यक़्त कर सकता है तो वह अन्य बच्चों के साथ खेलने लगा और उसने गतिविधियों में भाग लेना भी शुरू कर दिया। बच्चे के इसी आत्मविश्वास ने आगे चलकर सीखने और विकास के और अधिक अवसर पैदा किए।

निष्कर्ष

आँगनवाड़ी केन्द्रों में आने वाले अधिकांश बच्चे पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले होते हैं, जिनका जीवन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं और वित्तीय अड़चनों से बाधित होता है। देविका और बाला उन छोटे बच्चों के प्रतिनिधि हैं जो यह साबित करते हैं कि बच्चों के सीखने की क्षमता उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती। उनकी देखभाल और सहायता करने वाले ऐसे शिक्षक, जो उन्हें समान अवसर एवं शिक्षण का एक आनन्ददायी वातावरण प्रदान करें, उनके जीवन में बहुत बड़ा बदलाव ला सकते हैं। ऐसे योग्य शिक्षक, जो अनुभवों और समग्र विकास के बीच के सम्बन्ध को समझते हैं और प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होते हैं, उच्च-गुणवत्तापूर्ण ईसीई कार्यक्रम को निष्पादित करने में उनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

यह शिक्षक एक सुरक्षित और स्वच्छ वातावरण का निर्माण करते हैं और पाठ्यचर्या सम्बन्धी अन्य बुनियादी ढाँचे को बनाए रखते हैं, जैसे रनिंग ब्लैकबोर्ड, अधिगम-कोना (Learning Corner), बैठने की गोलाकार व्यवस्था, प्रिंट-समृद्ध वातावरण इत्यादि और इस प्रकार सीमित वित्तीय संसाधनों के बावजूद बच्चों के समग्र विकास के लिए उन्हें सीखने के अवसर देते हैं। वे बच्चे के सर्वोत्तम विकास को बढ़ावा देने के लिए आँगनवाड़ी केन्द्रों, माता-पिता और समुदाय के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध और उनके बीच पारस्परिक जुड़ाव का भी निर्माण करते हैं। बच्चों को सिखाने के लिए कोई एक तरीक़ा नहीं है। प्रत्येक बच्चा विशिष्ट है और वह अलग-अलग तरीक़ों से, अलग-अलग समय और विभिन्न स्थानों पर सीखता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को ऐसे अवसर दे जिससे वे अपने आसपास की चीज़ों का अनुभव कर सकें, प्रयोग और सवाल कर सकें ताकि उनके सोचने की क्षमता बढ़े और इस बात में उन्हें बच्चों का समर्थन करना चाहिए। फिर हर बच्चा सीख सकेगा।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा पहल

संगारेड्डी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा पहल, 3 से 6 साल के बच्चों के समग्र विकास के लिए आँगनवाड़ी केन्द्रों को जीवन्त शिक्षण केन्द्रों में बदलने और उसके शिक्षकों को चिन्तनशील अभ्यासकर्ता (reflective practitioner) बनाने के लिए उनकी क्षमता विकास पर ध्यान केन्द्रित करती है। यह हस्तक्षेप समेकित बाल विकास सेवा योजना के मौजूदा व्यवस्थात्मक संसाधनों के तहत किया जा रहा है। शिक्षकों की क्षमता का विकास, गुणवत्तापूर्ण प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रम की और बच्चों के लिए उपलब्ध शुरुआती अधिगम के अवसरों की धुरी है। हमारा अनुभव बताता है कि इस तरह का समग्र 'सेवाकालीन क्षमता विकास मॉडल' बच्चों के विकास के

लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम को निष्पादित करने के लिए शिक्षकों की क्षमता को प्रभावी ढंग से विकसित कर सकता है।

तेलंगाना के संगारेड्डी जिले के सभी शिक्षकों का सेवाकालीन क्षमता विकास एक बहु-आयामी मॉडल के माध्यम से किया जा रहा है। शिक्षकों के साथ हम कई मंचों के माध्यम से जुड़े हैं जैसे कार्यशालाएँ, केन्द्र-स्तरीय संलग्नता, सेक्टर-स्तरीय बैठकें, परियोजना सम्बन्धी बैठकें, ईसीसीई दिवस, बाल-मेला, सेमिनार, शिक्षक-मेला और पत्रिका आदि। इन जुड़ावों से प्राप्त अन्तर्दृष्टि से शिक्षकों को अपने साथियों के साथ अच्छे



अभ्यासों को साझा करने और उनसे सीखने में मदद मिलती है। अनुभवात्मक दृष्टिकोण शिक्षकों को उन गतिविधियों का व्यावहारिक अनुभव प्रदान करता है जिन्हें वे बच्चों के साथ कर सकते हैं ताकि वे बच्चों में महत्त्वपूर्ण जीवन-कौशलों का विकास करने में सक्षम हो सकें।

शिक्षक के प्रभाव-क्षेत्र में बच्चों के अधिगम को सक्षम करने वाले कारक एक अच्छे ईसीई कार्यक्रम के कुछ महत्त्वपूर्ण, बुनियादी तत्व यहाँ दिए गए हैं जो आँगनवाड़ी केन्द्रों में आने वाले बच्चों में अधिगम और विकास को सक्षम कर सकते हैं और जो शिक्षक के नियन्त्रण में हैं। एक दिशा-निर्देश के रूप में इसका उपयोग करने से शिक्षक इस कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने में सक्षम होंगे :

- शिक्षक प्रतिदिन स्वास्थ्यकर और पौष्टिक भोजन प्रदान करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि बच्चे भोजन से पहले और भोजन के बाद अच्छी तरह से हाथ धोएँ और उसके बाद दोपहर को कम-से-कम एक घण्टे के लिए सोएँ।
- शिक्षक, हर महीने बच्चों के विकास (लम्बाई और वजन) को मापते हैं।
- शिक्षक केन्द्र पर एक प्राथमिक चिकित्सा किट रखते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि केन्द्र में और उसके आस-पास स्वच्छ और सुरक्षित वातावरण हो।
- शिक्षक थीम पर आधारित समय-सारिणी के अनुसार अधिगम के लिए एक प्रेरक वातावरण बनाते हैं और बच्चों को खेल की सामग्री सुलभ कराते हैं।
- शिक्षक, बच्चों के कार्य को रिकॉर्ड करते हैं और उन्हें प्रदर्शित करते हैं।
- शिक्षक बच्चों की देखभाल करते हैं और अनुशासन के सकारात्मक तरीक़ों का उपयोग करते हैं।
- शिक्षक, खेल और भोजन के दौरान बच्चों के बीच मेल-जोल को प्रोत्साहित करते हैं।
- शिक्षक रोज़ाना कम-से-कम तीन से चार घण्टे ईसीई कार्यक्रम का संचालन करते हैं।

एक अच्छे ईसीई कार्यक्रम के लिए कुछ शिक्षण-अभ्यास

एक छोटे से गाँव में शैलजा नामक एक शिक्षिका, अधिगम-कोने में तब तक बच्चों को मुक्त रूप से खेलने देती हैं, जब तक कि अधिकांश बच्चे आँगनवाड़ी केन्द्र में नहीं आ जाते। उन्होंने कक्षा में ऐसे विभिन्न कोने बनाए हैं जिनके माध्यम से बच्चों को स्वयं खोजबीन और अनुभव करने के अवसर मिलते हैं। बच्चे आपस में बातचीत करते हैं, सहयोग करते हैं, साझा करते हैं, समूहों में काम करते हैं, अपनी बारी का इन्तज़ार करते हैं और इस प्रकार उनकी सामाजिक दक्षताओं में सुधार होता है। बच्चों को मुक्त रूप से खेलने देने के साथ-साथ शिक्षिका, अपने मार्गदर्शन में इंडोर एवं आउटडोर खेलों को खेलने के अवसर भी प्रदान करती हैं।



क्रियाकलाप	समयावधि
कक्षा के भीतर एवं बाहर, मुक्त और मार्गदर्शित खेल के अवसर प्रदान करें।	60 मिनट
‘सर्कल टाइम’ में बच्चों के साथ/ उनके बीच सार्थक अन्तःक्रिया का सुगमीकरण करें।	पूरे दिन में 60 मिनट
बच्चों के व्यवहार का अवलोकन करने और उनके सामाजिक कौशलों का मार्गदर्शन करने के लिए दिनचर्या की घटनाओं का उपयोग करें।	हर समय
बच्चों को रचनात्मक अनुभव प्रदान करें।	20 मिनट
बच्चों को पढ़ने के (साक्षरता के) त्वरित मौके देना।	30 मिनट
बुनियादी संख्या-ज्ञान सम्बन्धी कौशलों को बढ़ावा देने के लिए वस्तुओं की खोजबीन और प्रयोग में बच्चों को संलग्न करें।	30 मिनट

जब सभी बच्चे केन्द्र में पहुँच जाते हैं तो वे उन्हें एक गोल घेरे में बैठा देती हैं और दीवार पर चिपके नाम-चार्ट पर बच्चों के हस्ताक्षर लेकर उनकी उपस्थिति दर्ज करती हैं। इस तरह विभिन्न गतिविधियों को एकीकृत करते हुए, उनके माध्यम से वे बच्चों को साक्षरता-अनुभव प्रदान करती हैं। ‘सर्कल टाइम’ में वे बातचीत से शुरू करते हुए कहानी, गीत और बुनियादी संख्या-ज्ञान सम्बन्धी गतिविधियाँ करवाती हैं। सर्कल टाइम की गतिविधियों में, बच्चों को सुनने, बोलने और ध्यान देने के अवसरों को समृद्ध करने के लिए वे ठोस वस्तुओं और प्रिंट-सामग्री का उपयोग करती हैं।

बच्चों को कहानी की किताबें भी मिलती हैं जिनमें वे चित्र-पठन और पढ़ने का नाटक करते हैं। मौसम-चार्ट, नियम-चार्ट, प्रदर्शन बोर्ड जैसे अन्य क्रियाकलाप बच्चों को कार्यात्मक प्रिंट की ओर ले जाने के समृद्ध अवसर देते हैं। शैलजा बच्चों को विभिन्न भावनाओं को पहचानने, समझने और उन्हें अपने दैनिक जीवन के अनुभवों से जोड़ने के अवसर प्रदान करती हैं। बच्चों से जो प्रश्न वे नियमित रूप से पूछती हैं, उनमें एक है, ‘आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं?’ इसका उत्तर देने के लिए प्रत्येक बच्चा एक भावना-कार्ड चुनता है और अपनी वर्तमान भावना का कारण बताता है। व्यावहारिक अनुभव, विचारशील प्रश्न, हँसी-खेल, अनुवर्ती गतिविधियाँ, व्यवहार का उचित प्रदर्शन, मुक्त खेल के सत्र, उच्च एवं निम्न गहनतापूर्ण गतिविधियों के बीच सन्तुलन तथा मुक्त और मार्गदर्शित गतिविधियाँ आदि कुछ ऐसे तरीक़े हैं जिनका उपयोग वे एक दिन की सभी गतिविधियों में करती हैं।

अनुभवों के आधार पर नीचे कुछ सरल किन्तु प्रमुख क्रियाकलापों का उल्लेख किया गया है जिन्हें शिक्षक को हर दिन आँगनवाड़ी में करना चाहिए। बच्चों के विकास पर इनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।



एक अच्छे ईसीई कार्यक्रम के लिए महत्त्वपूर्ण कारक

एक प्रभावी व अच्छी तरह से डिज़ाइन किया गया ईसीई-कार्यक्रम वह होता है जो प्रशिक्षित और सक्षम शिक्षकों द्वारा प्रदान किया जाए। ऐसे शिक्षक जो अनुभवों और समग्र विकास के बीच के सम्बन्ध को समझते हों और बच्चों की ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील हों। यह महत्त्वपूर्ण कारक हैं :

आधारभूत सुविधाएँ

छोटे बच्चों के अधिगम और विकास के लिए एक ऐसे भौतिक वातावरण की आवश्यकता होती है जो खुला-खुला हो, अनुकूल और सुरक्षित हो। प्रारम्भिक शिक्षा के वातावरण में इन बातों का शामिल होना आवश्यक है- पर्याप्त स्थान, स्वच्छ शौचालय, रनिंग ब्लैकबोर्ड, अधिगम-कोने, बैठने के लिए गोल घेरा आदि। इसके अलावा बच्चों को इनडोर और आउटडोर दोनों स्थानों पर सीखने और खेलने के लिए बहुत सारी दृश्य, स्पर्श और पाठ्य-सामग्री की आवश्यकता होती है।

सुनीता ने 8 साल पहले एक छोटे से किराए के कमरे में शिक्षक के रूप में काम करना शुरू किया, जहाँ पूर्व-प्राथमिक शैक्षिक गतिविधियों के संचालन की गुंजाइश नहीं थी। उन्होंने जगह बदलने की कोशिश की लेकिन लोग आँगनवाड़ी केन्द्र के लिए किराए पर जगह देने को तैयार नहीं थे। जब उन्हें पता चला कि प्राथमिक स्कूल के रसोईघर का उपयोग नहीं किया जा रहा है तो उन्होंने गाँव वालों के सहयोग से स्कूल के मुख्य अध्यापक से मुलाकात की और स्कूल परिसर में आँगनवाड़ी केन्द्र शुरू करने की मंजूरी माँगी। कुछ महीने बीत गए लेकिन कोई जवाब नहीं आया। इस दौरान मुख्य अध्यापक इस बात का अवलोकन कर रहे थे कि सुनीता अपने केन्द्र में बच्चों को अधिगम के बेहतर अवसर प्रदान करने के लिए किस तरह के प्रयास कर रही हैं। उनका ध्यान इस



बात पर भी गया कि उनके अपने स्कूल में पहली कक्षा में जो बच्चे थे, उनमें जो बच्चे आँगनवाड़ी केन्द्र से आए थे और जो वहाँ से नहीं आए थे - उनकी क्षमताओं में स्पष्ट अन्तर था। इसलिए उन्होंने आँगनवाड़ी केन्द्र के लिए स्कूल में एक ऐसा कमरा देने की पेशकश की जो काम में नहीं लिया जा रहा था और रसोईघर से बेहतर भी था। एक महीने के भीतर सुनीता ने उस कमरे को छोटे बच्चों के अधिगम के लिए एक ऐसे जीवन्त स्थान में बदल दिया जिसका वातावरण प्रिंट-समृद्ध था। बच्चों की दैनिक गतिविधियों के लिए बेहतर जगह पर जाने की उनकी दृढ़ इच्छा उनके निरन्तर प्रयासों के कारण पूरी हुई।

पाठ्यक्रम

बच्चों के समग्र विकास के लिए एक चरणबद्ध उपयुक्त पाठ्यक्रम आवश्यक होता है। इसमें अन्तःक्रियात्मक शिक्षण के माध्यम से व्यावहारिक व क्रियाशील अनुभव, खेल-आधारित अभ्यास, बाहरी गतिविधियों और सामग्री के साथ जुड़ाव को शामिल करना चाहिए।

उनका काम रुका नहीं, बल्कि उन्होंने बच्चों को अधिगम के व्यावहारिक अनुभव प्रदान करने के लिए सरल, बिना-लागत वाले और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग करके ख़ुद ही ऐसे टीएलएम बना लिए।

शिक्षक

आँगनवाड़ी के अधिकांश शिक्षक कठिन परिस्थितियों में काम करते हैं और अच्छा काम करने का प्रयास करते हैं। शिक्षकगण, अधिगम के अनुभव के अभिन्न अंग हैं और उन्हें हमारे विश्वास और समर्थन की आवश्यकता होती है। आँगनवाड़ी शिक्षक के कार्य को स्कूल-शिक्षक के कार्य की तरह ही जटिल माना जाना चाहिए। नए शिक्षकों के लिए पेशेवर योग्यता आवश्यक है और मौजूदा शिक्षक बेहतर शिक्षक बन सकें इसके लिए आवश्यक है कि सेवाकालीन कार्यक्रमों को सतत रूप से संचालित किया जाए।

प्रशान्ति नामक शिक्षिका एक ऐसे गाँव में आँगनवाड़ी केन्द्र चलाती हैं, जहाँ घरों की छतें केवल घास-फूस से बनी हुई हैं। आँगनवाड़ी के लिए जो सबसे अच्छा स्थान वे किराए पर ले सकती थीं, वह मिट्टी के फर्श वाला,



बालमणि नामक शिक्षिका शिक्षण-अधिगम सामग्री (टीएलएम) का उपयोग करके बच्चों के विकास के लिए कई अवसर प्रदान कर रही हैं। वे बच्चों के बुनियादी संख्या-ज्ञान सम्बन्धी क्षमताओं, जैसे कि मिलान करना, वर्गीकरण, पैटर्न बनाना आदि को बढ़ाने के लिए रंगीन कपड़े के टुकड़ों, अण्डे की ट्रे, कागज़ के गिलासों आदि का उपयोग करती हैं। विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के साथ, विविध गतिविधियों को करने के कारण बच्चों के ध्यान देने की अवधि बढ़ी है, जिससे शिक्षिका कम समय में ही विभिन्न अवधारणाओं को विकसित कर पाई। इस प्रकार टीएलएम की अनुपलब्धता के कारण

स्टील के पैनल से बना एक छोटा-सा कमरा था। वे कुछ नया सीखना चाहती थीं और आँगनवाड़ी केन्द्र को विकसित करने में रुचि रखती थीं, अतः उन्होंने अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में भाग लिया। उन्होंने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विभिन्न घटकों को समझा और सीखी हुई बातों को लागू करना शुरू कर दिया। उन्होंने मौजूदा कमरे की फर्श पर चटाई बिछाई, दीवारों को रंगीन प्रिंट-समृद्ध तस्वीरों से ढक दिया, अधिगम के कोनों को व्यवस्थित किया और बच्चों के साथ गतिविधियों का संचालन शुरू किया। कुछ ही महीनों में माता-पिता और समुदाय के

सदस्यों को यह परिवर्तन साफ़ नज़र आने लगा जिसके परिणामस्वरूप नामांकन में वृद्धि हुई। जब उन्होंने एक जिला-स्तरीय संगोष्ठी में अपनी कहानी प्रस्तुत की तो ऐसे कई शिक्षक, जो इसी तरह की अड़चनों के बीच काम करते हैं, उनके इस अनुभव से प्रेरित हुए।

परिवार

परिवार को बच्चे के अधिगम और विकास के वातावरण के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से के तौर पर पहचानने की आवश्यकता है। अतः आँगनवाड़ी केन्द्र, माता-पिता और समुदाय के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों और पारस्परिक जुड़ाव को विकसित करना महत्त्वपूर्ण है।

अनीता नामक शिक्षिका ने देखा कि समुदाय में कई ऐसे बच्चे थे जो आँगनवाड़ी केन्द्र में नहीं आते थे। उन्होंने माता-पिता और समुदाय के सदस्यों को मासिक रूप से आयोजित 'प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा दिवस' (अभिभावक-शिक्षक मीटिंग) में आमन्त्रित करना शुरू कर दिया और उन्हें आँगनवाड़ी केन्द्र में होने वाली सभी दैनिक गतिविधियों और बच्चे के विकास पर इनके प्रभाव के बारे में बताया। बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व को समझाने के लिए वे उन लोगों के घर भी गईं जो इन बैठकों में शामिल नहीं हुए थे। समुदाय ने आँगनवाड़ी केन्द्र को 'भोजन मिलने के स्थान' के बदले एक ऐसे 'जीवन्त अधिगम केन्द्र' के रूप में देखना शुरू किया जहाँ बच्चे अपनी क्षमताओं का विकास करते हैं। समुदाय के नज़रिए में यह बदलाव लाने में उन्हें छह महीने लगे। इससे अनीता को केन्द्र का नामांकन 25 से 40 तक बढ़ाने में मदद मिली।

References

Early Childhood Education Initiative Sangareddy. (2017). *Anganwadi Teachers Development Tracking.* Sangareddy. Azim Premji Foundation. Unpublished.

Early Childhood Education Initiative Sangareddy. (2018). *Anganwadi Teachers Capacity Development Model for Impactful Early Learning.* Sangareddy. Azim Premji Foundation. Unpublished.

Ministry of Women and Child Development. (2016). *Anganwadi Centres,* 2013. Delhi. Government of India.

**Names have been changed to protect the identities of the children.*

ईसीई टीम (संगारेड्डी)। अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ईसीई) पहल, 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के समग्र विकास के लिए आँगनवाड़ी केन्द्रों को जीवन्त शिक्षण-केन्द्रों में बदलने के उद्देश्य से चिन्तनशील अभ्यासकर्ता बनने के लिए शिक्षकों के क्षमता-विकास पर ध्यान केन्द्रित करती है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

रोज़नामचा बनाम चिन्तन | एक शिक्षक की डायरी

गजेन्द्र कुमार देवांगन

26 जुलाई, 2019

आज काम की शुरुआत कुछ शारीरिक गतिविधियों से हुई। लगभग दस मिनट की गतिविधि से हम सब थक गए और गोला बनाकर बैठ गए। आज कुल पच्चीस बच्चे उपस्थित थे जिनमें से सोलह नवप्रवेशी थे। कल कुछ बच्चों से परिचय हुआ था परन्तु एक दिन में उनका नाम जान पाना सम्भव नहीं है। आज अनेक चेहरे बिल्कुल नए थे अतः उनका नाम जानना, परिचय करना पहली आवश्यकता थी। मैंने बहुत ही सहजता से अपना परिचय दिया। अपना नाम बताया और कहा कि आप मुझे 'गजेन्द्र टीचर' कह सकते हैं। बात आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "आप तो मेरा नाम जान गए लेकिन यदि मुझे आपको बुलाना हो तो कैसे बुलाऊँगा? यदि आप लोग अपना नाम बता दें तो मैं आपको नाम से बुला सकूँगा।" इन बातों को मैंने बहुत ही सहजता से रखा। अब तक अनेक बच्चों को लग चुका था कि नाम बताना आवश्यक है। मुझे यक़ीन ही नहीं हो रहा था कि आज पहले ही दिन कुछ ऐसा भी होगा, मेरी बात ख़त्म भी नहीं हुई थी कि बच्चे खड़े होकर बारी-बारी से अपना नाम बताने लगे। यह सभी बच्चे आज ही इस विद्यालय में आए थे। मैं काफ़ी आश्चर्यचकित हुआ, मेरे अब तक के शिक्षकीय पेशे में आज पहला दिन था जब अनेक बच्चे बिना किसी इशारे व आग्रह के स्वयं से अपना नाम बता रहे थे।

बच्चों के इस तरह के व्यवहार के पीछे क्या कारण था? सही–सही बता पाना तो सम्भव नहीं है। परन्तु ऐसा लगता है इसका एक बड़ा कारण हमारा व्यवहार है। विद्यालय के शुरुआती दिनों में बच्चों के ठहराव व विद्यालय के प्रति आकर्षण बढ़ाने के लिए और वे अपेक्षित व्यवहार करें इसके लिए हमारा व्यवहार भी बच्चों की अपेक्षा के अनुरूप होना चाहिए। हमें यह समझने की ज़रूरत है कि एक बच्चे के लिए विद्यालय में सब कुछ नया है— भवन, साथी, वातावरण, शिक्षक, भाषा, विद्यालय की प्रक्रियाएँ इत्यादि। बच्चे फलते-फूलते हैं जब उनके अनुभवों व भाषा को स्थान दिया जाता है। कक्षा-कक्ष की ओर बच्चों को आकर्षित करने के लिए हमें उनकी भाषा में बात करनी चाहिए, उनके पास बैठना चाहिए, उनके साथ हँसी-मज़ाक करना चाहिए और उनकी समस्याओं के बारे में पूछना चाहिए। बच्चों को यह एहसास कराना आवश्यक होता है कि वह इस नई जगह में सुरक्षित हैं।

आज की एक दूसरी गतिविधि साझा करना चाहूँगा। बच्चों को लेखन हेतु स्लेट दी गई थीं। कुल छब्बीस स्लेट वितरित की गई थीं। लेखन अभ्यास पूरा होने के बाद सबसे स्लेट को एक जगह रखने का आग्रह किया गया था। लेखन अभ्यास कुछ अधिक समय तक हो गया था जिससे बच्चों में थोड़ी नीरसता आ गई थी। उन्हें ऊर्जावान बनाए रखने के लिए गतिविधि बदलना आवश्यक था।

मैंने बच्चों से कहा, "आपको देने से पहले मैंने स्लेट को गिना नहीं था, कितनी स्लेट हैं यह जानना आवश्यक है। तो चलो, गिनती करते हैं।" अब स्लेट बीच में थीं और हम सब चारों ओर गोल घेरे में बैठे थे। तय हुआ कि मैं एक–एक स्लेट उठाते जाऊँगा और सब गिनते जाएँगे। गिनती शुरू हुई। कई बार बच्चे गिन रहे होते और मैं स्लेट उठाकर रखना रोक देता था, यह सोचकर कि बच्चे गिनती जारी रखेंगे। लेकिन वह बहुत सजग थे। वह या तो दूसरे बच्चों को रोकते या मुझे स्लेट रखने को कहते। कुछ बच्चे क्रम से गिनती बोल नहीं पा रहे थे, अतः संख्या के नाम व संख्या में अन्तर हो रहा था। फिर बच्चों ने ख़ुद को सही किया और फिर से गिनना शुरू किया। बार–बार गिनती करते हुए जब हम छब्बीस की संख्या तक पहुँचते तो मैं कुछ बहाना बनाकर फिर से गिनने को कहता। ऐसा कई बार हुआ। आज की गिनती की प्रक्रिया अनेक बच्चों के लिए बड़ी चुनौती बन गई थी। वे सही–सही संख्या जानना चाहते थे। यह काम काफ़ी रोचक हो गया था। सभी बच्चों का ध्यान गिनती पर ही था। हमने दो–तीन बार अँग्रेज़ी में भी गिनती की।

इस पूरी गतिविधि की ख़ास बात यह थी कि बच्चे पूरे समय व्यस्त थे। दूसरी बात, उपयोग किया गया यह टीएलएम कोई आकर्षक व खर्चीली वस्तु नहीं थी। कक्षा में हमारा टीएलएम ऐसा होना चाहिए जिसे बच्चे छू सकें, दूर से देख सकें, स्वयं उपयोग कर सकें। टीएलएम मज़बूत और टिकाऊ होने के साथ-साथ बच्चों के लिए सुरक्षित और परिवेश में आसानी से उपलब्ध होने चाहिए।

यहाँ हमारा उद्देश्य गिनना था और हम चाहते थे कि बच्चे ठोस वस्तुओं को गिनना सीखें। बच्चों के साथ काम करते हुए एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात होती है हमारी प्रस्तुति शैली। शिक्षक अपनी भाषा, लहजे, अभिनय व कुशलता से किसी भी साधारण वस्तु को असाधारण बना लेता है। बच्चों सहित मुझे भी आज गिनती करने में बहुत मज़ा आया।

29 जून, 2019

आज पूरे दिन का काम योजना के अनुसार हुआ। विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से प्रयास किया गया कि प्रत्येक बच्चे को मैं भली-भाँति जान व पहचान सकूँ ताकि बच्चे भी विद्यालय को घर जैसा समझें, विभिन्न गतिविधियों में उन्हें मज़ा आए, उन्हें लगे कि वे विद्यालय में सुरक्षित हैं, उनकी बातों को सुना जाता है और उन्होंने अब तक जो सीखा है वह महत्त्वपूर्ण है।

आज दिन भर हुए काम कुछ इस प्रकार रहे।

मैं पहली कक्षा में पहुँचा। कुछ बच्चे कक्षा में खेल रहे थे। मैंने उनसे हाथ मिलाकर 'गुड मॉर्निंग' कहा। कक्षा की बैठक व्यवस्था ठीक करनी थी, अतः मैंने अन्य कक्षा के कुछ बच्चों को बुलाया और उनके सहयोग से दरी–गद्दों को ठीक किया। सभा पश्चात बच्चों को नाश्ते में 'चना' दिया जाना था। मैंने प्रत्येक बच्चे के पास जाकर यह सुनिश्चित किया कि वो चना दरी पर बिना गिराए खाएँ।

हम सब घेरा बनाकर खड़े हो गए। बच्चों ने कुछ शारीरिक गतिविधियों का अभ्यास किया— sit down, stand up, hands up, hands down, turn around आदि निर्देशों का पालन किया निर्देशों के क्रम को अचानक बदलकर बोलने से बच्चों को धोखा होता था जो कि उनके मज़े का कारण बनता था और वे ख़ूब ठहाके लगाकर हँस पड़ते थे। इस गतिविधि के बाद सभी घेरे में बैठ गए। इस दौरान 'आम की टोकरी', 'मोटूराम हलवाई' तथा 'गमला' कविताओं को समूह स्वर में पूरे जोश व अभिनय के साथ गाया गया। फिर मैंने उनसे बोर्ड की ओर मुँह करके बैठने का आग्रह किया और बोर्ड पर निम्नलिखित शब्द लिखे— 'गमला', 'नल', 'रस्सी', 'मछली' तथा 'घर'। अधिकांश बच्चे शब्दों को पढ़ पा रहे थे क्योंकि अनेक बच्चे पूर्व में किसी न किसी विद्यालय में जा चुके थे हालाँकि कुछ बच्चों के लिए यह शब्द बिल्कुल नए थे। अतः उनके लिए शब्दों के चित्र बनाकर नाम बोलने का अभ्यास किया गया व शब्द–चित्र के द्वारा पहचान बनाने का प्रयास किया गया।

अब तक बोलने–गाने में बहुत समय बीत चुका था और गतिविधि बदलने की आवश्यकता थी। बच्चों से बोर्ड में लिखे शब्दों व चित्रों को देखकर लिखने का आग्रह किया गया। बच्चों के लेखन के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि कुछ ही बच्चों के लेखन स्पष्ट थे। मुझे लगा कि ज़्यादातर बच्चों के साथ लेखन पूर्व अभ्यास कराने की आवश्यकता है। यदि उन्हें ठीक से क़लम पकड़ना आ जाए, आकृतियों की समझ हो जाए तो लेखन करना सहज हो सकेगा। अभी बच्चों के लेखन में आकृति अनुसार बनावट में सुधार की बहुत आवश्यकता दिख रही थी। लेखन का अभ्यास बोर्ड में अनेक सरल चित्र बनाने तथा साथ ही साथ बच्चों की कॉपियों के अवलोकन के ज़रिए शुरू हुआ। अब तक के पूरे समय में लगभग एक घण्टे से अधिक समय बीत चुका था और कुछ बच्चे पानी पीने, शौचालय जाने की माँग कर रहे थे, अतः उन्हें पाँच मिनट के लिए जाने दिया गया।

अब गणित विषय को केन्द्र में रखते हुए काम शुरू किया गया। सबसे पहले समूह स्वर में एक से तीस तक मौखिक गिनती बोलने का अभ्यास हुआ, जो कि काफ़ी बार दुहराया गया। इसके पीछे मेरा उद्देश्य था, बच्चों को संख्या क्रम याद हो जाए व जो बच्चे गिनती बोलना जानते हैं उनका अभ्यास हो जाए। इसी दौरान हमने एक और गतिविधि की। हमने बड़े–बड़े मनकों (जोड़ो ज्ञान किट वाले) को गिनने का अभ्यास किया। हमने इन मनकों को एक ढेर बनाकर ज़मीन पर रख दिया। फिर मैंने समूह में से किन्हीं भी दो बच्चों को एक साथ सामने आने को कहा। एक बच्चे से कहा कि वह दोनों हथेलियों को जोड़कर फैलाकर रखे व दूसरा साथी ज़मीन से एक–एक मनका उठाकर पहले साथी की हथेली पर रखता जाए। शेष बच्चे जो इस काम को देख रहे थे वे मनका हथेली में रखते ही संख्या बोल रहे थे। कुछ सलाह के बाद बच्चे सही–सही गिन रहे थे। वे मनका हथेली में रखने के बाद ही गिन रहे थे। इस गतिविधि में भागीदारी करने में सभी बच्चे उत्सुक थे अतः सभी बच्चों को जोड़ियों में सामने आने का अवसर दिया गया। हमने 1 से 10 तक की वस्तुओं को गिनने का अभ्यास किया।

थोड़ी देर विश्राम के पश्चात पुनः गणित विषय पर काम शुरू हुआ। इस समय चित्र के माध्यम से छोटा–बड़ा, ऊपर–नीचे की अवधारणा को समझने का प्रयास हुआ। चित्र देखकर ज़्यादातर बच्चे छोटे व बड़े तथा ऊपर–नीचे समझ रहे थे। बच्चे संख्या के आधार पर कम व ज़्यादा को भी बता पा रहे थे। अनुमान क्षमता के विकास व कम–अधिक को और स्पष्ट करने के लिए एक गतिविधि की गई। मैंने स्लेट, बच्चों की कॉपी, कक्षा पुस्तकालय की पुस्तकों, प्लास्टिक के कुछ ब्लॉक्स को निकाला और हम सब गोल घेरा बनाकर बैठ गए। अब मैं अपने दोनों हाथों में कुछ वस्तुएँ उठाकर बच्चों से पूछता, "बताओ किस हाथ में अधिक वस्तुएँ हैं?" सभी बच्चे अपना–अपना विचार बोल रहे थे। कभी-कभी मैं एक ही प्रकार की वस्तुओं को उठाता था तो कभी अलग–अलग वस्तुओं को। इस प्रकार से वस्तु उठाना व बच्चों से संख्या पूछना कई बार हुआ। इसी बीच मैंने बच्चों को बताया कि कौन-सी वस्तु अधिक है इसे कैसे जान सकते हैं और उन्हें जोड़ी बनाकर कम या अधिक को ज्ञात कर लेने की युक्ति भी बता दी। जोड़ी बनाने के काम में अनेक बच्चे मदद कर रहे थे।

पिछले तीन दिनों से भोजन के पश्चात बच्चों को लगभग पन्द्रह मिनट तक फ्री प्ले का समय दिया गया। इस दौरान

बच्चे विभिन्न खेल सामग्रियों (ब्लॉक्स, किचन सेट आदि) से व्यक्तिगत रूप से व छोटे–छोटे समूहों में खेलते हैं। यह समय भी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य का हिस्सा है क्योंकि इस दौरान अलग–अलग गाँवों से आए बच्चों का आपस में परिचय होता है व मित्रता बढ़ती है। शारीरिक विकास को बल मिलता है क्योंकि बच्चे दौड़ते-भागते हैं, ब्लॉक्स को जोड़ते-तोड़ते हैं, कुछ नया बनाने के लिए सोचते हैं और किचन–डॉक्टर के सेट से खेलते समय विभिन्न पात्रों का अभिनय करते हैं। वे न जाने ऐसे कितने क्षेत्रों में काम करते हैं जो इस उम्र में सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं।

एक बच्चा, जो कक्षा में सबसे छोटा है दिन भर सक्रिय रहता। अपने अवलोकन में मैंने पाया कि वह किसी भी काम को बीस-तीस सैकण्ड से अधिक समय तक एकाग्र होकर नहीं करता है। वह हर समय अलग–अलग काम करने के लिए उत्सुक रहता है। वह अभी बहुत ही कम बातें करता है, अनेक बार पूछने पर एकाध शब्द में कुछ बोलता है। मैं उसे इधर–उधर भागते व धक्का-मुक्की करते देखता। मुझे लगा कि उसकी एकाग्रता बढ़नी चाहिए, हाथों की पकड़ में मज़बूती आनी चाहिए, उसे सन्तुलन बनाना और गम्भीरता से सीखना आना चाहिए। तो मैंने उसके लिए एक गतिविधि सोची।

मैंने उसे पास बुलाकर बैठाया और वही मनके दिए जिन्हें हमने भोजन के पहले गिना था। लगभग बीस मनके थे। मैंने उससे कहा कि इन मनकों को एक के ऊपर एक रखना है। मैंने उसे करके भी दिखाया। वह उत्साह से काम में जुट गया। उसके प्रयास देखने लायक थे। कभी झुककर, कभी लेटकर, कभी घुटने के बल बैठकर, कभी हाथों तो कभी पैरों में रखकर वह मनकों को जमाने लगा। पर वह मुश्किल से दो-तीन मनके ही एक के ऊपर एक रख पाया। लगभग दस मिनट तक उसने ख़ूब हाथ–पैर मारे। उसके बाद वह परेशान हो गया और काम छोड़कर भागने के लिए तैयार हो गया था। तो मैंने उसके लिए दूसरा काम तैयार किया। मैंने उसे कहा कि इन मनकों को रस्सी में पिरोए। फिर उसी उत्साह के साथ वह काम में लग गया। हालाँकि इस बार का काम पहले से कुछ आसान था परन्तु मुसीबत यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। रस्सी का किनारा काफ़ी फैला हुआ था और मनके के छेद में आसानी से नहीं जा रहा था। उसने मनके में रस्सी डालने के लिए एड़ी–चोटी एक कर दी। आख़िरकार उसकी मेहनत रंग लाई और एक समय के बाद वह अपनी कोशिश में कामयाब रहा। काम पूरा होने के बाद मैंने भी सुकून की एक गहरी साँस ली।

इसके बाद गतिविधि बदलते हुए मैंने सभी बच्चों से एक–एक कविता सुनी, प्रत्येक बच्चे की कॉपी में उसकी रुचि व क्षमता अनुसार होमवर्क लिखकर दिया। दिन भर की धमा-चौकड़ी, उछल-कूद, भागमभाग से तन और मन थककर चूर हो गया। कक्षा के बाद मुझे शान्ति व आराम की आवश्यकता थी जो किसी–किसी दिन ही नसीब हो पाता है, क्योंकि कक्षा के बाद अगले दिन की तैयारी करने की बाध्यता हो जाती है। सफल कक्षा के लिए सफल और व्यावहारिक योजना बनाना अति आवश्यक होता है। बच्चों का प्यार और कुछ करने की इच्छाशक्ति काम करने की ऊर्जा देते हैं तभी तो मन से काम करना आसान हो जाता है। आज का दिन मुझे भी काफ़ी अच्छा लगा। लगता है मैं अपने उद्देश्य में धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा हूँ और बच्चों के काम व प्यार से मुझे सफलता अवश्य मिलेगी।



गजेन्द्र कुमार देवांगन विज्ञान में स्नातक हैं और उन्होंने हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने डीएड भी किया है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़ में शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। इससे पहले वे शासकीय प्राथमिक शाला में बारह वर्षों तक अध्यापन करते रहे हैं। हिन्दी भाषा के साथ-साथ बच्चों के लिए चित्र, खेल, कविता, कहानी, गतिविधि बनाने में उनकी विशेष रुचि रही है। उन्हें पाठ्यपुस्तक की कविताओं को लयबद्ध करके ढोलक-डफली बजाते हुए बच्चों के साथ गाना, नाचना पसन्द है। उनसे gajendra.dewangan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

आनन्ददायी अधिगम के माध्यम से साक्षरता

इन्दिरा विजयसिम्हा

दक्षिणी ओडिशा के रायगढ़ जिले के एक दुर्गम कोने में स्थित है एक उनींदा सा गाँव- काशीपुर। धीरे-धीरे बलखाती हुई पहाड़ियों और सोतों के कारण यह गाँव किसी चित्र सरीखा सुन्दर और सुहावना लगता है। यह पहाड़ियाँ खेतों की चारखानेदार रज़ाई से ढकी हुई हैं और दर्शक इस प्राकृतिक दृश्य में मौजूद तरह-तरह के हरे रंग देखकर दंग रह जाता है।

लेकिन यहाँ के लोगों के जीवन की वास्तविकता को देखें तो वह बहुत अच्छी नहीं है। पहाड़ियों में समृद्ध खनिज-निक्षेप छुपे हुए हैं जिनकी वजह से खनन कम्पनियाँ अपनी शोर-शराबेदार मशीनों और विशालकाय ट्रकों के साथ यहाँ आई हैं। यहाँ मुख्यतः आदिवासी आबादी है जो सदियों से औपनिवेशिक व उत्तर-औपनिवेशिक शासकों का शोषण सहने के अलावा दीर्घकाल से ग़रीबी का सामना करती आई है और मलेरिया का शिकार है। यहाँ साक्षरता की दर कम है और लगभग तीस साल पहले तक यहाँ कोई स्कूल नहीं था। अग्रगामी नामक संगठन ने लोगों के अधिकारों को सुनिश्चित करने और शोषण के ख़िलाफ़ उन्हें सशक्त बनाने के लिए समुदायों के साथ काम करने के उद्देश्य से इस गाँव में अपना कार्य शुरू किया। इन क्षेत्रों में सरकार द्वारा स्कूल स्थापित करने के बहुत पहले ही अग्रगामी ने काशीपुर के आस-पास की बस्तियों में रात्रि-पाठशालाएँ शुरू की थीं और इन स्कूलों में पढ़ना-लिखना सीखने वाले युवक-युवतियाँ अपने उन दिनों के असाधारण उत्साह को आज भी याद करते हैं। आख़िरकार जब सरकार ने बच्चों को शिक्षित करने की ज़िम्मेदारी ली तो अग्रगामी ने आजीविका और स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने का फ़ैसला किया। अफ़सोस की बात यह थी कि अग्रगामी ने देखा कि स्कूलों के होते हुए भी बच्चे जल्दी ही स्कूल छोड़ देते थे और पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्यून साक्षरता और ग़रीबी के चक्र में फँसे रहने का सबसे ज़्यादा ख़तरा लड़कियों को था। लगभग पन्द्रह साल पहले अग्रगामी ने लड़कियों के लिए एक प्राथमिक स्कूल शुरू किया जिसे मुक्त ज्ञान कुटीर (एमजीके) कहा जाता है।

नवाचार की आवश्यकता

अन्य स्कूलों की तरह ही अग्रगामी स्कूल में भी शिक्षक पारम्परिक तरीक़े से पढ़ाते आ रहे थे यानी पहले अक्षरों पर ध्यान केन्द्रित करते थे और बाद में पाठ्यपुस्तकों से ज़ोर से पढ़ते थे तथा बच्चे उसे दोहराते थे। अग्रगामी की संयुक्त निदेशिका विद्या दास ने जो कुछ देखा, उससे उन्हें निराशा हुई। उन्होंने कहा, "यह ऐसा ही था मानो शिक्षकों की नीरस वाणी रूपी कम्बल के नीचे बच्चों की रचनात्मक क्षमता दब गई हो!" उन्होंने लिखा, "...जिस स्कूली शिक्षा में बच्चों को रचनात्मक और दिलचस्प तरीक़े से अपने दिमाग और संज्ञानात्मक क्षमताओं का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन और अवसर प्रदान नहीं किया जाता तथा यान्त्रिक रूप से याद करने पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जाता है, वह शिक्षा बच्चों के मानसिक विकास को प्रभावित करती है। इससे बच्चों की रुचि घटती है और अधिगम धीमा हो जाता है, और इस कारण, साक्षरता के बुनियादी कौशल तक को हासिल करने के लिए सामान्यतः लगने वाले समय से दोगुने से अधिक समय की आवश्यकता होती है।" (अग्रगामी वार्षिक रिपोर्ट, 2016-17)।

इस चिन्ता के चलते विद्या दास ने साक्षरता सिखाने के लिए एक अलग दृष्टिकोण के बारे में सोचा जिसे रचनात्मक भाषा विकास प्रयास या सीएलडीई (क्रियेटिव लैंग्वेज डेवलपमेंट एफर्ट) कहा गया। इस दृष्टिकोण में पारम्परिक प्रक्रिया को छोड़कर, एक अधिक बाल-केन्द्रित और समग्र भाषा दृष्टिकोण को अपनाया जाता है, जिसमें ज्ञात शब्दों, वस्तुओं, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं, मज़ेदार कविताओं और गीतों (जिन्हें बच्चे आसानी से याद रख सकते हैं) के माध्यम से ध्वन्यात्मक समझ पैदा की जाती है। इससे अधिगम अधिक सहज और जल्दी होता है और यह बच्चे और शिक्षक दोनों के लिए कम तनावपूर्ण होता है।

सीएलडीई क्या है?

एमजीके स्कूल में विकसित मॉडल पर आधारित क्रिएटिव लैंग्वेज डेवलपमेंट एफर्ट (सीएलडीई), आदिवासी जिलों में सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में साक्षरता को मज़बूत करने का एक प्रयास है। इसका लक्ष्य है ओडिशा के आदिवासी जिलों में पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चों की पढ़ने की क्षमता और भाषागत क्षमताओं में सुधार करना। यहाँ के समुदाय का साक्षरता या स्कूली शिक्षा का कोई इतिहास नहीं है। इन इलाकों में सरकारी प्राथमिक स्कूलों में कम योग्यता प्राप्त और अल्प-प्रेरित शिक्षक होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी करने के बाद भी अधिकांश विद्यार्थियों का पठन-कौशल लगभग न के बराबर होता है। सीएलडीई की पद्धति में कई अनूठी विशेषताएँ हैं।

यह वर्णमाला-केन्द्रित पद्धति की प्रक्रिया को उलट कर, साक्षरता-अधिगम को प्राकृतिक भाषा सीखने की तरह सहज बनाने का प्रयास करती है। यह बच्चों को इस बात के लिए तैयार करती है कि वे पठन के ध्वनि-विज्ञान को समझ लें। इसके लिए बच्चों को अर्थपूर्ण शब्दों, वाक्यों व विचारों के माध्यम से, जिसकी शुरुआत घर-परिवार, परिचित वस्तुओं, कविताओं व कहानियों के साथ होती है, लिखित भाषा से जुड़ने और उसे आत्मसात करने के अवसर दिए जाते हैं। बच्चे को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि शब्द और अक्षर की ध्वनियों के बीच का सम्बन्ध स्थापित हो सके। इस प्रकार पढ़ना, लिखना और साक्षरता का विकास साथ-साथ चलता है। यह कार्यक्रम साक्षरता और पढ़ने के विकास के एक अद्वितीय रचनावादी मॉडल पर आधारित है।

सीएलडीई के चरण

सीएलडीई, बच्चों की बुनियादी क्षमताओं पर आधारित है यानी कि भाषा सम्बन्धी एवं सीखने की क्षमताएँ। छह साल की उम्र में जब बच्चे औपचारिक स्कूली शिक्षा में प्रवेश करते हैं, तब वे कम से कम एक भाषा जानते होते हैं। शोध बताते हैं कि छह साल की उम्र में बच्चा 2000 से अधिक शब्दों का उपयोग कर सकता है और उससे कई अधिक शब्द समझ सकता है। वे ख़ुद को पूर्ण वाक्यों में व्यक्त कर सकते हैं और किसी घटना के बारे में बात कर सकते हैं या कोई कहानी सुना सकते हैं। यह देखते हुए कि बच्चे शब्दों के माध्यम से, सक्रियता से अपनी दुनिया की समझ बना रहे हैं, सीएलडीई बच्चों को लिखित भाषा की यात्रा की शुरुआत कराने के लिए शब्दों पर ध्यान केन्द्रित करती है। इसमें निम्नलिखित चरण हैं:

सार्थक शब्दों के माध्यम से साक्षरता-निर्देश शुरू करें :

- वर्णमाला के अक्षरों को याद करने से शुरू करने की बजाय, सीएलडीई तरीक़े में बच्चों को सीधे ही उनके स्वयं के नाम, परिचित वस्तुओं, जानवरों और पक्षियों के नाम जैसे पूर्ण शब्दों से परिचित कराया जाता है। यदि बच्चे के घर की भाषा में किसी वस्तु या जानवर के लिए कोई अलग शब्द है तो शिक्षक बच्चे को यह समझने में मदद करते हैं कि एक ही वस्तु के लिए दो ऐसे शब्द हो सकते हैं जिनके अर्थ समान हों। उस शब्द को जैसे लिखा जाता है वैसे ही बोलने में बच्चे की मदद की जाती है, यह स्वीकार करते हुए कि बच्चे की अपनी भाषा में उसके लिए एक अलग शब्द का उपयोग किया जाता है।
- बच्चों को पूरे शब्दों को लिखने का अभ्यास करने दें : लिखित शब्दों से परिचित होने की प्रक्रिया में बच्चे उन शब्दों को लिखने का अभ्यास करते हैं जो उन्होंने सीखे हैं।
- शब्दों से पहचान को बढ़ाने के लिए खेलों और गतिविधियों का उपयोग करें : जैसे-जैसे बच्चे पूरे शब्द सीखना शुरू करते हैं, शब्दों से उनकी पहचान को, विभिन्न खेलों और गतिविधियों जैसे चित्र-शब्द मिलान, छूटे हुए अक्षर भरना और बिंगो गेम के माध्यम से बढ़ाया जाता है।
- कविताएँ और गाने सिखाएँ : बच्चों को कविताएँ और गाना गाने में आनन्द आता है। गानों का प्रिंट उन्हें दिया जाता है ताकि उन्हें गाते समय वे उसका अनुसरण कर सकें। एक ही कविता या गीत को विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करके गाया जा सकता है - जब ऐसा करते हैं तो जिन बच्चों के घरों में अलग भाषा बोली जाती है उन्हें लगता है कि उन्हें भी कक्षा में शामिल किया जा रहा है और वे कक्षा के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं।
- कहानी की पुस्तकों से परिचय कराएँ : जैसे-जैसे बच्चे पढ़ने और लिखने के माध्यम से लिखित शब्दों से परिचित होते जाते हैं, वैसे-वैसे उन्हें कहानी की पुस्तकों से भी परिचित कराया जाता है। इसके लिए कहानी को ज़ोर से पढ़ने और पुस्तक सम्बन्धी अन्य गतिविधियाँ करवाई जाती हैं।
- बच्चों को लिखित अभिव्यक्ति करने के लिए प्रोत्साहित करें : सीएलडीई पद्धति में पढ़ना और लिखना साथ-साथ चलते हैं। बच्चों को जो पढ़ाया जा रहा है उसे लिखने और उसके परे भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
- जब बच्चे कई पूर्ण शब्दों को पढ़ना सीख लें तब औपचारिक रूप से उन्हें अक्षर और मात्रा का परिचय दें।

सीएलडीई की शिक्षण विधि

सीएलडीई शिक्षकों के प्रशिक्षण में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि भाषा और साक्षरता की अवधारणात्मक समझ विकसित करने में उनकी मदद की जाए। साक्षरता का अर्थ है स्वतंत्र रूप से सोचने में सक्षम होना, जो पढ़ा है उसका अर्थ समझना और लेखन के माध्यम से अपने विचारों, सोच या भावनाओं को सम्प्रेषित करने में सक्षम होना। सीएलडीई पद्धति में अर्थ-निर्माण को प्रमुखता दी जाती है और डिकोडिंग करना बाद में आता है। शिक्षकों की मदद इस बात में भी की जाती है कि वे भाषा की प्रकृति को ध्वनि-प्रतीक प्रणाली के रूप में समझें। वे उस तरीक़े पर चर्चा करते हैं जिससे बच्चे स्वाभाविक रूप से अपने घर में बोली जाने वाली भाषा सीखते हैं। बच्चों को देखकर शिक्षकों को उनके अधिगम में खेल के महत्त्व का एहसास होता है। सीएलडीई शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वे :

- बच्चों को न तो डाँटें और न ही दण्ड दें वरन एक दोस्ताना और भयमुक्त वातावरण का निर्माण करें।
- बच्चों को उस भाषा में स्वतंत्र रूप से बोलने के लिए प्रोत्साहित करें जिसमें बच्चा सहज हो। अगर शिक्षक

बच्चे की घरेलू भाषा बोल सकते हों तो इससे बहुत मदद मिलेगी। शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों की बातें ध्यान से सुनें और उनके साथ दोस्ताना तरीक़े से बातचीत करें और बच्चे की भाषा को समझने की कोशिश करें।

- सीएलडीई पद्धति में निहित सिद्धान्तों और सहायक पुस्तकों से परिचित हों। दिए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार पुस्तकों का उपयोग करें।
- खेल के माध्यम से सिखाएँ जैसे अभिनय-गीत को सीखना और सुनाना, चित्र बनाना और रंग भरना, बच्चे की उँगली को इन कविताओं की पंक्तियों पर चलाते हुए पढ़ने की नकल करना (भले ही पढ़ने की वास्तविक क्षमता अभी तक विकसित नहीं हुई हो) और पिक्चर-कार्ड के साथ खेलना आदि। इन विधियों का उपयोग करके शिक्षक पाठ्य से बच्चे का परिचय कराने और बच्चे को सहजता से उस पाठ्य को स्मृति में अंकित करा पाने में मदद कर सकते हैं। खेल के माध्यम से बच्चे न केवल उन बातों का अभ्यास करते हैं जिन्हें वे जानते हैं, बल्कि वे नई चीज़ें भी सीखते हैं। अब यह बात मान्य है कि वास्तव में खेल संज्ञानात्मक विकास को सुगम बनाता है।
- जब भी आवश्यकता हो और सम्भव हो, कविताओं और गीतों का अनुवाद बच्चों की घरेलू भाषा में करें। चूँकि आदिवासी ओडिशा में कई भाषाएँ हैं, इसलिए शिक्षक के लिए ऐसा करना हमेशा सम्भव नहीं होता है।
- बच्चों के अधिगम का समर्थन करने के लिए टीएलएम बनाएँ और उनका उपयोग करें।
- कहानियों, रोल-प्ले(role-play), ज़ोर से पढ़ना, नाटकीयकरण और ऐसी अन्य गतिविधियों का उपयोग करके बच्चों की किताबों में रुचि विकसित करें।
- स्कूल के आस-पास के समुदाय के साथ अच्छा तालमेल रखें।

सहायक सामग्री

सीएलडीई कार्यक्रम में काऊ डाके क (कौवा क कहता है) नामक एक कार्यपुस्तिका-एवं-प्राइमर बच्चों और शिक्षकों दोनों को बहुत पसन्द आई है। इसकी प्रस्तावना में सीएलडीई पद्धति में निहित मूल अवधारणाओं को समझाया गया है। इसमें चित्र बनाने और रंगने का महत्त्व, बच्चों द्वारा प्रतीकों की सही ढंग से नकल करने की आवश्यकता, दो-आयामी निरूपण को समझने का महत्त्व और पढ़ने के विकास के क्रमिक चरणों को भी समझाया गया है। इसके साथ ही यह प्रस्तावना शिक्षकों को उनकी पाठ-योजना बनाने में मदद करती है और कक्षा की गतिविधियों के लिए कई सुझाव देती है। काऊ डाके क के अलावा इस कार्यक्रम ने कई अन्य टीएलएम विकसित किए हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपनी कक्षा के अधिगम को जीवन्त बनाने के लिए कर सकते हैं।

क्या सीएलडीई प्रभावी है?

एमजीके का दौरा करने से हमें पता चलेगा कि यह पद्धति कितनी प्रभावी है। जब मैं शुरू में इस स्कूल में गई तो कक्षा एक के उन बच्चों से बेहद प्रभावित हुई जिन्होंने अपने जीवन में पहली बार स्कूल आना शुरू किया था और ऐसा करते हुए उन्हें लगभग छह महीने ही हुए थे। जब इन उत्साही छोटी लड़कियों से नाम लिखने को कहा गया तो उन्होंने निस्संकोच एक-दूसरे का नाम लिख दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरा नाम सुनकर उसे भी ख़ुशी-ख़ुशी लिख दिया। उनमें से बहुतों ने पुस्तकालय से पुस्तकें ली थीं और वे उन्हें पढ़ने में सक्षम थीं! इस बात ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया कि दूसरे स्कूलों में बहुत सारे बच्चे कक्षा सातवीं तक पहुँचने के बाद भी क्यों नहीं पढ़ पा रहे थे।

> जब सीएलडीई को विभिन्न जनजातीय जिलों के 18 स्कूलों में पायलट किया जा रहा था तो उसका प्रभाव दिख रहा था। जब इन स्कूलों में कोई मिलने वाला आता तो वह आत्मविश्वासी और जिज्ञासु बच्चों से घिर जाता। बच्चे उससे बातचीत करने के लिए काफ़ी इच्छुक रहते थे, जबकि अन्य स्कूलों के बच्चे अक्सर आगन्तुकों से दूर भागते या चुप-चुप रहते। नियमित स्कूली शिक्षा के पूरक के रूप में जहाँ कहीं भी सीएलडीई पद्धति का उपयोग किया गया, वहाँ पठन-स्तर में काफ़ी सुधार हुआ। यह सुधार बड़े बच्चों के मामले में सबसे ज़्यादा प्रभावशाली था जो तब तक सरल शब्दों को पढ़ने में भी असमर्थ थे। सीएलडीई प्रोजेक्ट के शिक्षकों में से एक, ईश्वर सौंटा ने उन परिवर्तनों के बारे में बात की जो उन्होंने दो बच्चों में देखे थे। यह बच्चे एक आवासीय विद्यालय में पढ़ते थे लेकिन फ़िर उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। जब वे ईश्वर के स्कूल में शामिल हुए तो वे दोनों बिल्कुल भी नहीं पढ़ पाते थे। ईश्वर कहते हैं, " मेरी कक्षा में एक साल पढ़ने के बाद अब वे धाराप्रवाह पढ़ने वाले पाठक और उत्सुक शिक्षार्थी बन गए हैं।" 18 स्कूलों में सीएलडीई पायलट प्रोजेक्ट अब समाप्त हो गया है और केवल यह आशा की जा सकती है कि पढ़ने में हुए लाभ और स्कूली शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बच्चों के साथ बने रहेंगे।

इस बीच एमजीके में रखी गई साक्षरता और अधिगम की मज़बूत नींव के कई अप्रत्याशित परिणाम सामने आए हैं। यह एक निम्न-प्राथमिक विद्यालय है और लड़कियों को प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी करने के लिए सरकारी स्कूल में जाना पड़ता है। कुछ ही लड़कियाँ उससे आगे की पढ़ाई जारी रख पाती हैं। लेकिन एमजीके में निर्मित, मज़बूत शैक्षिक आधार

अन्य तरीक़ों से उनकी मदद करता है। उदाहरण के लिए एक लड़की अपने नियोक्ता से उस समय सवाल कर सकी जब उसे मिलने वाली मज़दूरी उतनी नहीं थी जितनी के लिए वह हस्ताक्षर कर रही थी। "ओह, क्या तुम स्कूल गई हो – कौन से स्कूल?" उन्होंने पूछा था।

चूँकि एमजीके मुख्य रूप से आदिवासी लड़कियों के लिए खोला गया था, इसलिए कुम्हारों वाले पड़ोसी गाँव ने शुरू में अपनी लड़कियों को उस स्कूल में नहीं भेजा। लेकिन यह सुनकर कि एमजीके की आदिवासी लड़कियाँ स्कूल में अच्छी तरह से सीख रही हैं और उनमें से कुछ ने तो नवोदय स्कूल में दाख़िला लेने में भी कामयाबी हासिल की है, कुम्हारों के गाँव ने भी अपनी लड़कियों को एमजीके में भेजने का फैसला किया। शायद अच्छी स्कूली शिक्षा, सदियों पुरानी मानसिकता को बदलने का काम कर सकती है!

इस लेख को समाप्त करते हुए मेरा मन काशीपुर की शान्त पहाड़ियों की ओर चला जा रहा है। हर रोज़ जब सूरज वहाँ की धरती को गर्म करता है और मवेशी चरने के लिए निकलते हैं तो हवा अचानक बच्चों की हँसी से भर जाती है। क्योंकि छोटी लड़कियाँ हँसती हुई आती हैं और उनकी चटर-पटर से वहाँ का इलाका और जंगल चहक उठता है। वे स्कूल में ख़ुश होती हैं, कहानियाँ पढ़कर ख़ुश होती हैं, कहानियाँ लिखकर और उन्हें चित्रित करके ख़ुश होती हैं। जिस तरह हवा में उनकी आवाज़ भरी होती है, उसी तरह उनके स्कूल की दीवारें भी उनकी कला और लेखन से भरपूर रोशन होती हैं। एमजीके में होना और बच्चों को खिलते हुए देखना वास्तव में एक अनूठा अनुभव है।

You may like to read more about the teacher training part of CLDE at
http://ncert.nic.in/publication/journals/pdf_files/vtte_aug_2018.pdf (pg47 - 58)

A link to an article about MGK is here:
https://thewire.in/education/in-odhisa-a-school-quietly-empowers-tribal-girls-with-its-empathetic-vision



इन्दिरा विजयसिम्हा मानव कल्याण और इसे बढ़ावा देने या नुक़सान पहुँचाने में शिक्षा की भूमिका के बारे में गहन सरोकार रखती हैं। उनके अनुसार मानव कल्याण पारिस्थितिकी तन्त्र में सभी प्रतिभागियों— यानी मानव, ग़ैर-मानव और सामग्री —के बीच पारस्परिक रूप से सम्बन्धों को पुष्ट रखने और उन्हें बनाए रखने का एक जाल है। एक शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में उन्होंने जो कार्य किया, उसने शिक्षा की प्रक्रियाओं के बारे में उनके मन में गहरे प्रश्न पैदा किए और उन्हें पूर्णा लर्निंग सेंटर – एक 'वैकल्पिक' स्कूल शुरू करने के लिए प्रेरित किया। इन्दिरा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से जनवरी 2020 में सेवानिवृत्त हुई हैं। वर्तमान में वे पूर्णा के साथ सक्रिय रूप से जुड़ी हुई हैं। शैक्षिक और लोकप्रिय पत्रिकाओं में उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे indira502@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

इसके अलावा हमें भारत की बहुभाषी यथार्थता के बारे में भी पता होना चाहिए और उसे स्वीकार करना चाहिए। हर भारतीय बहुभाषी होता है जिसमें विविध मौखिक अभिव्यक्तियाँ शामिल रहती हैं। अधिकांश बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं और साथ ही अपने आस-पास की दुनिया से अन्तःक्रिया करते हैं तो किसी-न-किसी तरह भाषा की अनूठी प्रवाहिता के सम्पर्क में आते हैं। साक्षरता के लिए एक ठोस आधार तैयार करने के लिए कक्षा में बच्चे की भाषा और मौखिकता के लिए स्थान बनाना बहुत ज़रूरी है।

-सक्तिब्रता सेन और निधि विनायक, व्यापक साक्षरता कार्यक्रम के आवश्यक स्तम्भ, पेज 59

टीएलएम | गणित सीखने-समझने के साथी

जनक राम और मुंशीलाल

"राजू जल्दी कर, रूपा गेंद फेंक रही है।" पायल ने ज़ोर-से राजू को आवाज़ दी और पिट्टूल से दूर भाग गई। राजू, पायल, रूपा और उनके कुछ दोस्त पिट्टूल का खेल खेल रहे हैं। वे पिट्टूल को जमा नहीं पा रहे हैं। रूपा बार-बार सलाह दे रही है कि भारी वाला पत्थर नीचे और उसके ऊपर हल्के पत्थर जमाने से पिट्टूल जल्दी तैयार हो जाएगा, पर राजू कर नहीं पाया और आउट हो गया। तभी पायल की माँ ने पायल को आवाज़ दी और कहा, "चलो, बहुत देर हो गई है। तुम लोग बहुत देर से खेल रहे हो, अब घर आओ और पढ़ाई करो।" "माँ आज तो संडे है, खेलने दो ना" पायल ने विनती के लहजे में कहा। पर माँ ने एक न सुनी और पायल के साथ बाक़ी सभी बच्चों को भी घर जाने के लिए कहा। पायल बेमन से घर चली गई।

राजू, पायल और रूपा कक्षा एक में पढ़ते हैं। उन्हें खेल खेलने में मज़ा आता है। मैं अपने घर की छत से यह देख रहा था। ऐसा मेरे कक्षा-कक्ष में भी होता है। जब हम बच्चों को उनके दैनिक जीवन के अनुभव को कक्षा में साझा करने के लिए कहते हैं या दी गई चीज़ों को छोटी-बड़ी, मोटी-पतली, हल्की-भारी, कम-ज़्यादा, सरकने-लुढ़कने वाली चीज़ों के रूप में छाँटने के लिए कहते हैं तो वे सहजता से इसे करते हैं। साथ ही दूर-पास, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर क्रम में जमाना, गिनना, मिलाना, कम करना आदि विभिन्न गतिविधियाँ शिक्षण सहायक सामग्री की मदद से करके देखने में उन्हें मज़ा आता है। जब वे परिवेश की गतिविधि को कक्षा-कक्ष से जुड़ा देखते हैं तो गणित सीखने-समझने में उनकी रुचि बढ़ती है। यहाँ तक कि इस तरह का ज्ञान संख्याओं की अवधारणा को समझने से पूर्व भी संख्या को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है - ठोस चीज़ों को गिनना, उन्हें क्रम से जमाना, रखना, मिलाना। हमारे बचपन के खेल के साथी जैसे कि कंकड़–पत्थर, लकड़ी, कंचे, गेंद आदि हमें गणित की कक्षा में साथी के रूप में मदद करते हैं।

विभिन्न शिक्षण सहायक सामग्री को हम प्राथमिक कक्षाओं में किसी भी नई अवधारणा से परिचित कराने के लिए उपयोग ज़रूर करते हैं। पाँचवीं कक्षा में आँकड़ों के निरूपण की अवधारणा से परिचय कराने के लिए हमने बच्चों के दैनिक जीवन की घटनाओं को शामिल किया। हमने समूह बनाए और पहली कक्षा से दसवीं तक की कक्षाओं में उस दिन कितने बच्चे उपस्थित हैं उसका सर्वे कर आँकड़े एकत्र कर प्राथमिक आँकड़ों (Primary Data) को समझा। फिर हमने उन्हें सारणी के रूप में प्रस्तुत किया, उसपर आधारित प्रश्न बनाए और समूह में हल करने को दिए। यह द्वितीयक आँकड़े (Secondary Data) थे।

कक्षा तीन में विभिन्न रंगों और आकृतियों (Shapes) की टाइल्स को लेकर मिलान चिन्ह (Tally Marks) और आलेख (Bar Graph Representation) को समझा। Eva sheet से बनी यह टाइल्स बोर्ड में पानी की मदद से चिपक जाती हैं। सभी समूहों को अलग-अलग संख्या में विभिन्न रंगीन आकृतियाँ देकर उन्हें बोर्ड में सारणी के रूप में प्रस्तुत करने को कहा। एक समूह को आलेख बनाने को दिया और एक समूह को प्रश्न बनाने को दिया। बच्चों को इसमें इतना मज़ा आ रहा था कि वे अगले कालखण्ड में भी इसी गतिविधि को करना चाहते थे। शिक्षण सहायक सामग्री रोचक होने के साथ-साथ सबकी पहुँच में भी होनी चाहिए, यह समझ भी बनी। हमारी कक्षा का प्रत्येक बच्चा इस गतिविधि को करना चाहता था और उन सबके लिए सामग्री थी तो कक्षा व्यवस्थित व विषय बच्चों के लिए रोचक था। बच्चों ने स्वयं कहा कि वे अपने घर के सामानों के लिए भी Tally Marks बना सकते हैं। एक बच्चे ने कहा कि मेरे घर में कितनी गाय, बकरी और मुर्गियाँ हैं। उसको हम Tally Marks के साथ सारणी के रूप में बना सकते हैं। अगली कक्षा में बच्चों ने कक्षा-कक्ष के सामानों जैसे— मेज़, कुर्सी, बोर्ड, पिनअप बोर्ड, अलमारी, अँग्रेज़ी की किताबें, हिन्दी की किताबें, डिक्शनरी, बल्ब, पंखे आदि सभी के लिए रुलिंग बोर्ड में सारणी बनाई और कक्षा में चर्चा की।

हमने गेंद, कंचे और विभिन्न रंगों की वस्तुओं का उपयोग कर उन बच्चों को पूरा अवसर देने का प्रयास किया जो धीरे-धीरे सीख रहे हैं। उनको सामग्री के साथ काम करने, छूने, उलटने-पलटने, रखने, अपनी बात कहने का पूरा अवसर दिया। जब हम उनके साथ काम कर रहे होते हैं तो शिक्षण सहायक सामग्री ही हमें पूरी कक्षा के साथ जोड़ने और प्रत्येक बच्चे तक पहुँचने में मदद करती है।

मेज़, बोर्ड, खेल का मैदान, कबड्डी का मैदान, कॉपी, पेंसिल आदि को बित्ते, क़दम, हाथ, रस्सी, पेंसिल, लकड़ी जैसी अमानक इकाइयों से मापते हुए हम मिलीमीटर, सेंटीमीटर, मीटर और किलोमीटर जैसी मानक इकाइयों तक इन्हीं शिक्षण सहायक सामग्री की मदद से पहुँचे। हमने रस्सी, तीलियाँ,

टाइल्स की मदद से विभिन्न आकृतियाँ बनाकर परिमाप और क्षेत्रफल को समझा। साथ ही बच्चों ने यह समझ भी बनाई कि इस गतिविधि के द्वारा हम केवल किसी बन्द आकृति का ही परिमाप और क्षेत्रफल ज्ञात कर सकते हैं। बच्चों ने मिलकर रस्सी की मदद से त्रिभुज, आयत, पंचभुज, षट्भुज, अष्टभुज बनाए। साथ ही बच्चों ने रस्सी की मदद से वृत्त बनाया और उसके विभिन्न भाग जैसे कि त्रिज्या, व्यास, परिधि, केन्द्र, जीवा आदि को समझा और वृत्तखण्ड, त्रिज्याखण्ड के बीच अन्तर को भी बताया। किसी वृत्त में कितनी त्रिज्याएँ खींची जा सकती हैं? यह पूछने पर बच्चे तपाक से बोले, "बहुत सारी, पूरा वृत्त भर जाएगा। हम गिन नहीं सकते इतनी सारी खींच सकते हैं।" हम मानते हैं कि जब बच्चे स्वयं कोई परिभाषा गढ़ते हैं तो वह समझ सदा के लिए उनके साथ रहती है।

2D व 3D आकृतियों के बीच अन्तर को समझने के लिए हमने बच्चों को 2D व 3D आकृतियाँ दीं। साथ में यह इज़ाज़त भी दी कि वे 3D आकृतियों को खोलकर उसके नेट (जाल) को देख सकते हैं कि वह कैसे बना है। बच्चों को इस गतिविधि में बहुत मज़ा आया। पहले तो वे बता नहीं पा रहे थे कि घन, घनाभ में कितने फ़लक है? लेकिन 3D आकृति को खोलने के बाद नेट को देखकर आसानी से बता पा रहे थे। हम हमेशा से मानते हैं कि प्रत्येक बच्चा सीख सकता है बशर्ते उसे अवसर मिले। हाँ कुछ बच्चों की सीखने की गति बहुत धीमी हो सकती है, पर वह भी सीखते हैं अपनी समझ के अनुसार। जब प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे ठोस चीज़ों (मूर्त)



से शुरुआत करते हैं तो उन्हें समझने में सहजता होती है और वे उसे अपने दैनिक जीवन से जोड़ पाते हैं। फिर धीरे-धीरे वे शिक्षण सहायक सामग्री के बिना अमूर्त में सोचना, कार्य करना शुरू करते हैं और उन्हें इसमें मज़ा भी आता है।

बाल शोध मेला में हमने चौथी कक्षा के छह साथी (बच्चों को हम अपना साथी मानते हैं) और छठवीं कक्षा के एक साथी, जो अपनी स्वेच्छा से हमसे जुड़ा, के साथ शिक्षण सहायक सामग्री पर शोध किया। इस शोध के ज़रिए हम यह समझना चाहते थे कि गणित से सम्बन्धित जितनी भी शिक्षण सहायक सामग्री है उनका उपयोग कक्षा या स्कूल में कैसे करते हैं, और उनकी मदद से सम्बन्धित गणितीय अवधारणा को कैसे समझाते हैं। इस शोध को करने के तीन मुख्य कारण थे :

फेलोशिप के दौरान जब हम सरकारी स्कूल में जाते थे तो वहाँ देखते थे कि कक्षा में सरकार या शिक्षा से सरोकार रखने वाली संस्थाओं ने बहुत-सी शिक्षण सहायक सामग्री स्कूल को उपलब्ध करवाई है। पर शिक्षक व बच्चों को उसका उपयोग करना नहीं आता और वे एक कोने में पड़ी धूल खा रही हैं।

चौथी कक्षा के जो साथी हमने चयनित किए थे उन सभी पर कक्षा में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी। हमने उन साथियों को अपने समूह में इसलिए रखा क्योंकि वे कक्षा में कुछ नहीं करना चाहते थे। हमने उन्हें शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करने और सम्बन्धित गणितीय अवधारणाओं को जानने-समझने का अवसर दिया। साथ ही हमने उन्हें बाल शोध मेला में आए दर्शकों के सामने अपनी बात रखने और उनके प्रश्नों के जवाब देने के लिए प्रेरित किया, जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़े और कक्षा में भागीदारी भी।

अधिकांश पालकों की शिकायत रहती है कि कक्षा में शिक्षक जो शिक्षण सहायक सामग्री उपयोग करते हैं, वह घर में तो होती नहीं हैं, तो हम अपने बच्चों की मदद कैसे करें? जबकि घर में ऐसी कई चीज़ें होती हैं जिन्हें शिक्षण सहायक सामग्री की तरह उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि बेलन, चौकी, रस्सी, दर्पण, कील, कंकड़-पत्थर, लकड़ी, चने-गेहूँ के दाने, पत्ते आदि। हमने उन्हें बताया कि कैसे वे इन चीज़ों का उपयोग करके बच्चों की मदद कर सकते हैं। बाल शोध मेला के बाद पालक फीडबैक दे गए कि उन्हें समझ आया कि वे घर पर



किस तरह से बच्चों की मदद कर सकते हैं। वे अपने बच्चों को जोड़-घटाना सिखा सकते हैं। साथ ही उनसे तुलना करने पर काम करवा सकते हैं और उनको अभ्यास भी करा सकते हैं जो गणितीय क्षमतावर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अब तक के अनुभव में हम यह समझे हैं कि शिक्षण सहायक सामग्री किसी भी अवधारणा को सीखने-समझने में अहम भूमिका निभाती है, जब वह बच्चों की पहुँच में हो और उसको उपयोग करना सहज हो। इन सबके बावजूद कक्षा में अभी भी कुछ बच्चों को सीखने-समझने में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उनमें से कुछ बच्चे अभ्यास नहीं कर रहे हैं और

कक्षा के स्तर पर नहीं हैं। फिर भी हम उनके साथ काम कर रहे हैं। हर सम्भव समझ विकसित करने के लिए बिना धैर्य खोए हम अपनी पूरी कोशिश कर रहे हैं। कई बार कुछ पालकों का व्यवहार सकारात्मक नहीं रहता, वे चाहते हैं कि बच्चे को रटा दिया जाए और उन्हें लगता है कि इतनी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं है। वे यह विचार भी रखते हैं कि काम नहीं करने पर बच्चों को पीटा जाए। लेकिन इस पर हम उनसे लगातार बात करते हैं और उन्हें बताते हैं कि जब हम बच्चों के साथ समझ पर काम करते हैं तो वह आसानी से चीज़ों को दैनिक जीवन के साथ जोड़कर देख पाएँगे और समझेंगे। एक स्कूल तभी बेहतरीन बन सकेगा जब शिक्षक-पालक और बच्चे मिलकर सीखने-समझने पर काम करेंगे।



जनक राम ने विज्ञान में स्नातक एवं शिक्षाशास्त्र तथा समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है। अज़ीम प्रेमजी संस्थान में दो वर्षीय फेलोशिप पूर्ण करने के बाद दिसम्बर, 2016 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी में गणित शिक्षक के रूप में सेवारत हैं। वे बतौर शिक्षक, बच्चों के साथ मित्रवत व्यवहार करने एवं मिल-जुलकर गणित की प्रक्रियाओं को सीखने-समझने में रुचि लेते हैं। उनसे janak.ram@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।



मुंशीलाल बारसे फरवरी 2012 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी में शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने कला वर्ग में स्नातक एवं हिन्दी तथा समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है। वे बतौर शिक्षक, बच्चों के साथ प्राथमिक कक्षाओं में भाषा एवं गणित की प्रक्रियाओं को सीखने-समझने में रुचि लेते हैं। उनसे munshi.barse@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

प्रत्येक बच्चा विशिष्ट है और वह अलग-अलग तरीक़ों से, अलग-अलग समय और विभिन्न स्थानों पर सीखता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को ऐसे अवसर दे जिससे वे अपने आसपास की चीजों का अनुभव कर सकें, प्रयोग और सवाल कर सकें ताकि उनके सोचने की क्षमता बढ़े और इस बात में उन्हें बच्चों का समर्थन करना चाहिए। फ़िर हर बच्चा सीख सकेगा।

-ईसीई टीम, बच्चे विविध तरीक़ों से सीखते हैं, पेज 30

भाषा-शिक्षण | सामग्री को सन्दर्भ से जोड़ना

कमला भण्डारी

आज के परिप्रेक्ष्य में यह बहुत आम बात हो गई है कि बच्चे भाषा पर अपनी समझ बनाने में कठिनाई का सामना कर रहे हैं और अधिकांश शिक्षक यह बात कहते हुए थकते नहीं हैं। भाषा सिखाने की प्रक्रिया में कई चरण हैं जिसकी समझ मुझे कक्षा में काम करने के बाद हुई। इन प्रक्रियाओं का प्रमाण कृष्ण कुमार की किताब बच्चे की भाषा और अध्यापक में मिलता है। एनसीएफ़ 2005 भी इस बात की वकालत करता है कि स्कूली ज्ञान को बच्चों के परिवेश से जोड़ा जाए। ऐसा करने से और सोचने व तर्क करने के पर्याप्त मौक़े देने से बच्चों के सीखने की शुरुआत हो जाती है।

आमतौर पर जब बच्चे पहली कक्षा में प्रवेश लेते हैं, तो वे अपनी समृद्ध मातृभाषा के साथ-साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों व वाक्यों को लेकर आते हैं। अपनी ज़रूरतों को अच्छी तरह समझ व बोल सकते हैं। घर पर अपने बड़ों से अपनी बात मनवाने के तौर-तरीक़ों से भी भली-भाँति परिचित होते हैं जबकि यह शब्दावली उन्हें कोई नहीं सिखाता है। बच्चे घर पर मिले माहौल, बातचीत एवं अवसर को देखकर यह सब स्वयं ही सीख जाते हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि किस समय और कैसे बड़ों से अपनी बात मनवानी है और वह भी केवल उनके चेहरे के हाव–भाव को देखकर। किसी समय विशेष पर बोलना है या नहीं और उनकी बात किस समय मानी जाएगी यह सब उनको मालूम होता है।

घर पर उन्हें बार–बार शब्दों व वाक्यों को बोलने व दोहराने के मौक़े मिलते हैं और इस माहौल में रहकर वे शब्दों का उपयोग करना, वाक्य बनाना और बोलना अपने आप सीख जाते हैं। भाषा नियमबद्ध होती है तथा इसके अपने तौर–तरीक़े होते हैं। बच्चे उनका प्रयोग बख़ूबी करते हैं। भाषा के नियमों का पालन भी करते हैं। घर पर समृद्ध परिवेश व वातावरण मिलने से वे घर की भाषा बोलने के साथ–साथ पढ़ना भी सीख जाते हैं। भाषा को सीखने का भरपूर परिवेश यदि विद्यालय में बनाया जाए और बच्चों को समृद्ध वातावरण दिया जाए तो उनमें पढ़ने–लिखने की क्षमता का विकास होता है।

एनसीएफ़ 2005 के आलोक में पहली से बारहवीं कक्षा तक की पाठ्यपुस्तकों को इस प्रकार विकसित किया गया है कि बच्चे रटने वाली प्रवृत्ति की अपेक्षा बोध के साथ अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर सकें। साथ ही, समाज में विभिन्न परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में पुस्तकीय ज्ञान का उपयोग करते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। एनसीएफ 2005 हमें यह सुझाता है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल केन्द्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक जाने में सक्षम बनाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति,1986 के बाद ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड आया जिसके तहत प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों के लिए शैक्षिक संसाधन उपलब्ध कराना व शिक्षक की तैयारी करवाना आदि मुद्दों पर ध्यान दिया गया। इसमें ब्लैकबोर्ड के रूप में कक्षा–कक्ष में दीवार पर एक तीन फीट लम्बी काली पट्टी बनाई गई थी जिसमें बच्चे अपना काम करते थे व चित्र बना सकते थे।

भाषा सिखाने के लिए मैं पहली कक्षा से ही यह तरीक़ा अपनाती हूँ। मैं स्थानीय शब्दों और बच्चों के घर, परिवेश व सन्दर्भ से जुड़े फलों, पेड़–पौधों, सब्ज़ियों के नामों का उपयोग करती हूँ। बच्चे इनसे परिचित होते हैं। फिर मैं श्यामपट्ट पर इनके चित्र बना देती हूँ। बच्चे चित्र देखते हैं, पहचानते हैं और उनके बारे में एक–दो वाक्य बोलते हैं। वे अपनी कॉपी में चित्र बनाते हैं और नाम लिखने की कोशिश करते हैं। जब यह शब्द बार–बार दोहराए जाते हैं तो वह लिखना सीख जाते हैं। मैं इस प्रक्रिया को जारी रखती हूँ और बच्चे पढ़ने व चित्र बनाने में सहज महसूस करना शुरू कर देते हैं।

यह कारवाँ चलता रहता है; कभी-कभी मैं नामों से शुरुआत करती हूँ, तो कभी छोटी–छोटी कविताओं से। छोटी व सरल शब्दों वाली कविता बच्चे जल्दी सीख जाते हैं जैसे कि चार लाइन की यह कविता :

मज़ा आ गया खेल में,
भालू भागा रेल में,
हँसकर बोला अच्छा टाटा,
मैं कर आऊँ सैर-सपाटा।

बच्चे इस कविता के माध्यम से तुकान्त शब्द बोलते हैं और इसे आसानी से याद कर लेते हैं। इस प्रकार छोटी–छोटी कविताओं से सुनने, बोलने व गतिविधि करने की क्षमता का विकास हो सकता है। जब मैंने जानवरों के नाम पूछे तो बच्चों ने घरेलू व जंगली जानवरों के बहुत-से नाम बताए। जब मैंने उनके बारे में बातचीत की और उनसे जुड़े प्रश्न पूछे तो एक–दो

बच्चे नहीं बता पाए, बाक़ी सब बच्चे कुछ न कुछ बता रहे थे। जैसे कि बाघ जंगल में रहता है, गाय घर पर रहती है। जब मैंने एक जानवर का नाम लिखकर उसके बारे में लिखने को कहा तो बच्चों ने छोटे–छोटे वाक्य बना दिए। थोड़ी बहुत मात्राओं की ग़लती हो जाती है पर मैं टोकती नहीं हूँ। फिर भी बच्चे जल्दबाज़ी में ग़लती कर ही देते हैं।

अन्य गतिविधियाँ

बच्चे जिज्ञासु होते हैं। उन्हें इस उम्र में सीखने की बहुत ललक रहती है। वे कॉपी से इतर कहीं और लिखना चाहते हैं। तो बच्चों के साथ मैंने निम्नलिखित कार्य किए :

सन्दर्भ से जोड़कर बातचीत

मेरा यह अनुभव तीसरी कक्षा में पढ़ रहे बच्चों का है। शुरुआत में मैंने उनसे उनके सन्दर्भों के आधार पर बातचीत की। कक्षा में मैंने सन्दर्भ से जुड़े कुछ चित्र भी बनाए। उन चित्रों पर बच्चों से चर्चा की गई और बच्चों ने अपनी बात को खुलकर साझा किया। बातचीत के दौरान यह देखा गया कि जब उनके परिचित सन्दर्भों से या उनकी आसपास की घटना से जुड़ी हुई चीज़ों पर बातचीत करो तो वह अपनी बात खुलकर करते हैं।

कविताएँ व कहानियाँ

बच्चों को पहली व दूसरी कक्षा में छोटी–छोटी कविताएँ याद करवाई गईं। कविताएँ बच्चों को पसन्द होती हैं और वे इन्हें बड़ी जल्दी याद कर लेते हैं। वे इन कविताओं को गुनगुनाते और दोहराते रहते हैं। मैंने कुछ कहानियों का चयन किया जिसमें पंचतंत्र लोककथाएँ, लालू और पीलू, गिजुभाई की कहानियाँ, कजरी गाय व बरखा सीरीज़ की कहानियाँ मुख्य रूप से हैं। मैंने देखा कि कहानी सुनने के बाद बच्चे उससे मिलती–जुलती अपनी कहानी भी सुनाने लगते हैं। लेकिन इस स्तर पर बच्चों को समझने के लिए अध्यापक को धैर्य रखना पड़ता है। कहानियों पर बातचीत के बाद बच्चों को चित्र बनाने या अपने अनुभव के आधार पर कुछ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रोत्साहन से बच्चे लिखने की अच्छी शुरुआत करते हैं।

चित्र

कक्षा–कक्ष में सुसज्जित माहौल बनाने के लिए मैं फल व सब्ज़ी के चित्र श्यामपट्ट पर बनाती हूँ और जब बच्चों से बनाने के लिए कहो तो वे अपनी पसन्द का चित्र सबसे पहले बनाते हैं। इस गतिविधि से बच्चों को शब्दों की पहचान होती है और वे उसके बारे में बोलने लगते हैं और अपने विचार प्रकट करते हैं। अपनी पसन्द व नापसन्द को बताते हैं। चित्र बनाने के अभ्यास से बच्चों की लिखावट व लिखने के कौशल में भी निखार आता है।

बाल साहित्य

चौथा चरण बाल साहित्य है जो पढ़ना–लिखना सीखने में विशेष महत्त्व रखता है। मैंने अपने शिक्षण के दौरान इसका बहुत इस्तेमाल किया है। मैंने बच्चों को पढ़ने के बहुत सारे अवसर दिए। बरखा सीरीज़ की किताबें बच्चों के स्तर के अनुसार हैं और सीखने में उनकी बहुत मदद करती हैं। इसका जीता जागता उदाहरण मेरे विद्यालय के तीसरी कक्षा के बच्चे हैं। वे छोटी कहानियों वाली बरखा सीरीज़ की किताबें अधिक पढ़ते हैं। इनमें नाम व शब्दों का बार–बार दोहराव है जिससे बच्चे जल्दी सीख जाते हैं।



कहानी निर्माण

कहानी निर्माण पर काम करते हुए मैंने यह देखा कि कक्षा में बाल साहित्य पढ़ने का असर बच्चों में पढ़ने की ललक के साथ लिखने में भी पड़ता है। बच्चे पढ़ी हुई कहानी और अपने अनुभवों के आधार पर नई कहानी गढ़ने की कोशिश करते हैं। वे दोनों को जोड़कर एक कहानी का निर्माण करते हैं।



Date
Page

-: बुढ़िया और बिल्ली :-

- कहानी -

एक दिन बिल्ली जंगल में फल लेने गई।

थी। बिल्ली को प्यास लग गई थी। जंगल में एक नदी थी। बिल्ली वहाँ जाकर पानी पीने लगी। वह पानी पीके खुश होगा ई। वहाँ बहुत रात होगयी थी। लेकिन उसी जंगल में एक बुढ़िया आई थी। वे दोनों जाकर सोगए थे। सुबह दोनों जग गये। बुढ़िया बिल्ली को अपनी दोस्त बना ली थी। बुढ़िया बिल्ली को अपने झोंपड़ी में लेकर गई। वहाँ केक रखा हुआ था। बिल्ली खाने लगी तो दोनों एक दूसरे को केक लगाने लगी। वहाँ पर बिल्ली को खुशी मिली। बुढ़िया केक खाते ही बाद में बहुत तेज बारिश आने लगी। बिल्ली बारिश में भीग गई। बिल्ली वहाँ से भाग गई।

रा० प्रा० वि० सड़ासड़ीया नविन
खटीमा ऊधम सिंह नगर

नाम - खुशी

कक्षा - 3

आज मैं गर्व के साथ कह सकती हूँ कि पिछले दो सालों में मैंने बच्चों को सिखाने की जो कोशिश की है उसका परिणाम सार्थक रूप में आज मेरे सामने है। बच्चे वाक्य निर्माण करने तथा किसी विषय पर लिखने के अलावा एक छोटी स्वयं रचित कहानी का निर्माण भी कर सकते हैं। इसके अलावा पाठ्यपुस्तक के अभ्यास कार्य को भी बख़ूबी कर लेते हैं।

मैंने एक कहानी पर अपने विचार लिखने को कहा तो कई बच्चों ने बहुत ही सुन्दर कहानियाँ बनाईं। इसमें ख़ास बात यह थी कि बच्चे मूल्यांकन भी स्वयं कर रहे थे। एक-दूसरे की कहानी को सुनकर हँस रहे थे और अपना तर्क भी रख रहे थे। जब मैंने तीसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तक रिमझिम का पाठ 'कब आऊँ' पढ़ाया तो बच्चों ने बहुत प्रश्न पूछे और विचार विमर्श करने के बाद पाठ के लिए दूसरे शीर्षक बड़ी आसानी से बता दिए। सब बच्चों ने अपना अलग–अलग शीर्षक बताया। बच्चों की सोचने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है। एक बच्चे ने पाठ का नाम 'दुकानदार व सेठ' कहा, एक ने बताया 'मूर्ख सेठ', जबकि कई बच्चों को लगा कि 'जैसी करनी वैसी भरनी', 'जैसे को तैसा' भी हो सकता है। पाठ के उद्देश्य को बच्चों ने समझा हो या नहीं, पर वे पाठ के अभ्यास व गतिविधि अच्छी तरह से कर पा रहे थे और अपने अनुभव को जोड़कर आगे बढ़ने को तत्पर थे।

भाषा सिखाने के उद्देश्य

भाषा केवल सम्प्रेषण का ही माध्यम नहीं है बल्कि यह सोचने, समझने और अपनी बातों को व्यक्त करने में हमारी मदद करती है। मेरी समझ से भाषा सिखाने के कुछ बिन्दु निम्नवत हैं...

- अपने विचारों को साझा करना।
- स्कूल के वातावरण को सहज बनाना।
- अपनापन व लगन की भावना पैदा करना।
- मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा को जोड़कर ज्ञान का विस्तार करना।
- अपनी बात कहने के पूर्ण अवसर देना।
- बच्चों की बात सुनना।
- समझकर पढ़ने की आदत विकसित करना।
- परिवेश में उपलब्ध सन्दर्भों व चित्रों के आधार पर ज्ञान को बढ़ावा देना व अनुमान लगाना।
- स्कूली ज्ञान को बाहरी ज्ञान से जोड़कर सिखाना।
- कविता व कहानी से अपने अनुभव को जोड़ पाना।
- अपनी बात को बेझिझक कह सकना एवं सुनी कहानी को अपने परिवेश व अनुभव के साथ जोड़ना।
- सम्पूर्ण भाषाई कौशलों का विकास करना।
- स्वाध्याय एवं स्वलेखन के प्रति जागृत करना।
- आत्मविश्वास को बढ़ावा देना।
- विषयवस्तु एवं लेखन को भली भाँति समझना।
- भाषा के ज़रिए सौन्दर्य, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता की भावना को विकसित करना।

एक शिक्षिका होने के नाते यह मेरा फ़र्ज़ बनता है कि मैं बच्चों के पास पहले से मौजूद ज्ञान को आगे बढ़ाऊँ। भाषा को समृद्ध बनाने, तर्क करने, अभिव्यक्त करने, विश्लेषण करने, कल्पना करने की क्षमता आदि का विकास करने के लिए मुझे लगातार अपने व्यक्तित्व विकास एवं स्वयं विकास की ज़रूरत होगी। बच्चों के विकास में शिक्षक की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रहने के साथ–साथ अभिभावकों का भी सहयोग आवश्यक है।

References

Kumar Krishna, 'The Child's Language And The Teacher', National Book Trust, Delhi.

NCERT, Rimjhim, Class III.



कमला भण्डारी पिछले 26 सालों से अध्यापन के पेशे में हैं। उन्होंने लगभग ग्यारह साल तक निजी विद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव विद्यालय खटीमा में पढ़ाया। वर्तमान में वे राजकीय प्राथमिक विद्यालय सड़ासड़िया नवीन, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में सहायक अध्यापिका के पद पर कार्यरत हैं। उन्होंने बीएड व विशिष्ट बीटीसी किया है। वे राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर हैं। बाल साहित्य व सामान्य ज्ञान की पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखती हैं। उनसे bhandarikamla10@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

पढ़ने से जूझते बच्चे

कमलेश चन्द्र जोशी

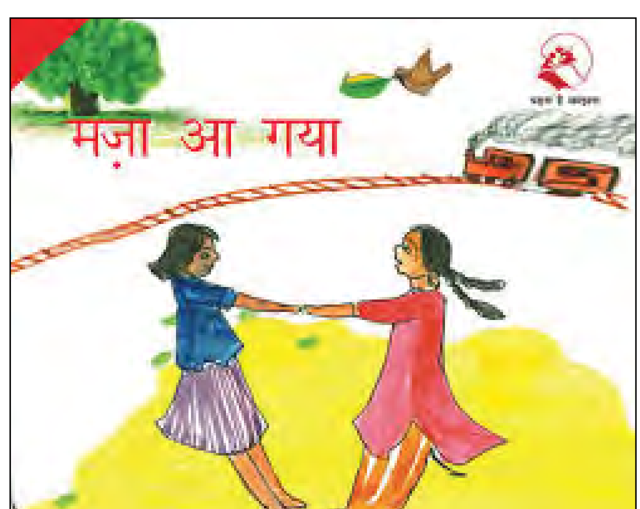
विद्यालय में 'पढ़ना-सीखना' हर विषय को सीखने की बुनियाद माना जाता है। अकसर यह देखा जाता है कि कुछ बच्चे उच्च प्राथमिक कक्षाओं में पहुँच जाते हैं पर पढ़ने का कौशल हासिल नहीं कर पाते और परिणामस्वरूप अपनी कक्षा में पिछड़ जाते हैं। विभिन्न विद्यालयों में भ्रमण के दौरान अकसर शिक्षकों की तरफ़ से यह बात उभरकर आती है कि इन बच्चों को पढ़ना नहीं आता, "बताइए, क्या करें?" शिक्षक साथियों के मन में यह रहता है कि कुछ ऐसी तरक़ीब हाथ लग जाए जिससे बच्चों को जल्दी से पढ़ना आ जाए। वास्तव में यह काम एक सुविचारित योजना, समय और निरन्तर प्रयासों की माँग करता है।

इसी सन्दर्भ में विगत वर्ष हमें एक उच्च प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने से जूझते बच्चों के एक समूह के साथ कार्य में शिक्षकों को सहयोग करने का अवसर मिला। इस समूह में कई ऐसे बच्चे थे जो छठवीं–सातवीं कक्षा में पहुँच गए थे, मगर पढ़ने के बुनियादी पहलुओं से ही जूझ रहे थे। उनमें से दो बच्चे काफ़ी पिछड़े हुए थे। उन्हें अक्षर और मात्राओं की ही पहचान नहीं थी। उनमें एक बच्ची थी जो कुछ बोलती ही नहीं थी, न ही नियमित रूप से विद्यालय आती थी। वह केवल पाठ्यपुस्तक से किसी पाठ को कॉपी करती थी और उसी को पढ़ना या स्कूल कार्य मानती थी। लेकिन वह किताब से शब्दों को नहीं पढ़ पाती थी और न ही उसे वर्ण और मात्राओं की अच्छे-से पहचान थी। दूसरा बच्चा केवल अपना और परिवार के सदस्यों का नाम पहचानता था, उसे भी वर्ण और मात्राओं की पहचान ही नहीं थी। इस बच्चे के साथ दिक़्क़त यह भी थी कि जो कुछ भी पढ़ाया-सिखाया जाता उसे वह अगले दिन भूल जाता था। इस प्रकार यह दोनों बच्चे पढ़ने से काफ़ी जूझ रहे थे। बाक़ी बच्चे कुछ अलग-अलग स्तरों पर थे।

हमने इन बच्चों के साथ काम करने के लिए एक समग्र योजना बनाई। यह तय किया गया कि बच्चे वर्ण और मात्रा सीखने के साथ-साथ बाल-साहित्य की कुछ छोटी पुस्तकों से भी रूबरू हों जो उन्हें पढ़कर सुनाई जाएँ और उनपर बातचीत भी हो। यह पुस्तकें शब्दों, वर्णों और मात्राओं की पहचान के अभ्यास के लिए भी उपयोग की जाएँगी। इसके लिए हमें एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित बरखा सीरीज़ की किताबें और इसी तरह का अन्य बाल-साहित्य उपयोगी लगा, क्योंकि यह बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभवों से जुड़ा हुआ था। यह किताबें बच्चों को पढ़कर सुनाई जातीं और इनपर बच्चों से बात भी होती जिसमें वे अपने अनुभव जोड़ते। कहानियों, कविताओं को ब्लैकबोर्ड पर लिखा जाता और बच्चों से पढ़वाया जाता। इसी से शब्द पहचान व मात्रा पहचान के अभ्यास भी किए गए। जिन शब्दों को वे पहचान सकते थे, उन्हें उनसे मिलते-जुलते ध्वन्यात्मक शब्द बनाने को कहा गया, जैसे कि 'रोटी' से 'चोटी' और 'मोटी'। इसके साथ ही उन्हें वाक्य बनाने, अपने अनुभव और सोचकर या जो वे लिखना चाहते हैं उसे लिखने के लिए भी कहा गया।

इस प्रक्रिया में बच्चों को शब्दों और मात्राओं को सीखने में थोड़ा समय तो लगा परन्तु अब उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया





है। अब वे अगले स्तर पर हैं। उम्मीद है कि वे कुछ समय बाद प्रवाह के साथ पढ़ना सीख जाएँगे। इसी तरह इस समूह के अन्य बच्चे भी जो अभी धीरे–धीरे व अटक–अटककर पढ़ते हैं, वे बाल-साहित्य की मदद से पढ़ना सीख जाएँगे और उनके पढ़ने की गति में भी सुधार होगा। इसके साथ वे लिखने के अभ्यास भी कर रहे हैं। अब लग रहा है कि यह सभी बच्चे कक्षा की मुख्यधारा में आ जाएँगे और अन्य विषय भी सीख पाएँगे।

पढ़ने से जूझते इन बच्चों के साथ काम करते हुए यह समझ में आया कि हमारी शैक्षिक व्यवस्था में बहुत-से इस तरह के बच्चे हैं जो पढ़ने–लिखने में पिछड़े हुए हैं और इस कारण शिक्षा की मुख्यधारा से बाहर हो जाते हैं। हालाँकि विभिन्न विद्यालयों में शिक्षक ऐसे बच्चों की पहचान करने में समर्थ हैं जो पढ़ने से जूझते हैं, पर वे उनके लिए सुव्यवस्थित हस्तक्षेप की योजना बनाने में असमर्थ हैं इस कारण समस्या वहीं रह जाती है। यह ज़रूरी है कि इस तरह के बच्चों के लिए एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर काम हो। इसके लिए प्रांसगिक स्रोत सामग्री की बहुत ज़रूरत पड़ती है जिसमें बच्चे अपने अनुभव जोड़ सकें। तब यह सामग्री शब्दों और वर्णों की पहचान करना सीखने के लिए भी उपयोग की जा सकती है। हस्तक्षेप की इस योजना में विद्यार्थियों को पढ़ना सीखने के सार्थक अनुभव देना ज़रूरी है। अगर इस तरह कार्य करेंगे तो हर बच्चा पढ़ना सीख पाएगा और ज्ञान की व्यापक दुनिया में शामिल हो पाएगा।



कमलेश चन्द्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। शिक्षा से जुड़े विभिन्न मुद्दों जैसे कि प्रारम्भिक साक्षरता, शिक्षक-शिक्षा व बाल-साहित्य में उनकी गहरी रुचि है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी ज़िला संस्थान, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड में कार्यरत हैं। उनसे kamlesh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

जब कोई बच्चा स्कूल की दहलीज़ पार करता है तो वह अपने साथ न केवल अपना बस्ता, स्लेट व चॉक, किताबें और नोटबुक लेकर आता है, बल्कि अपनी पूरी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी साथ लाता है : उसका भरा हुआ या ख़ाली पेट, उसकी जिज्ञासाएँ, उसके डर, संकोच, मातृभाषा और अन्य पहलू भी उसके साथ चले आते हैं। और अगर यह बच्चा एक ऐसे परिवार से आता है जिसका शिक्षा की संरचना के साथ पहले कोई सम्बन्ध नहीं रहा है तो स्कूल और शिक्षकों के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वे और भी अधिक लचीले बनें।

- अनन्त गंगोला, एक सम्भावित सुन्दर चित्र, पेज 3

विलोम शब्द सिखाना | कक्षा में मेरी रणनीति

पोम्पा घोषाल

मुझे याद है, जब मैं तीसरी कक्षा में थी तो हमारी शिक्षिका हमें विलोम शब्दों की एक सूची दे देती थीं, उनके अर्थ बताती थीं और फ़िर वे हमें सभी शब्द याद करने को कहती थीं। अगले दिन वे पूछतीं कि हमने वे शब्द याद कर लिए या नहीं। मुझे याद है कि किसी भी उदाहरण या चित्र के बिना उन शब्दों को सीखना कितना कठिन होता था। इसलिए मैं कक्षा में विलोम शब्द सिखाने के अपने एक अनुभव को साझा करना चाहूँगी। लेकिन उससे पहले मैं इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूँ कि बच्चे अपनी प्रथम भाषा या मातृभाषा के अलावा भी कोई अन्य भाषा सीख सकते हैं, भले ही उन्हें पहले उस भाषा को सीखने का अवसर न मिला हो। प्रत्येक बच्चे में सीखने की क्षमता होती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम शिक्षक नई अवधारणा सिखाने के लिए बच्चों के मौजूदा ज्ञान का उपयोग करें।

मैं एक उदाहरण देती हूँ। मैं दूसरी कक्षा में विलोम शब्दों के बारे में पढ़ा रही थी। मैंने कक्षा की शुरुआत में बच्चों से पूछा, "आपके अनुसार विलोम का क्या मतलब है?" बच्चों ने कहा कि उन्हें नहीं मालूम। मैंने हाथी और चूहे की तस्वीर दिखाकर बड़े और छोटे का उदाहरण दिया। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे एक ही आकार के दिखते हैं। बच्चों ने कहा, "नहीं, हाथी बड़ा है और चूहा छोटा।"

मैंने कहा, "हाँ, हाथी बड़ा है यानी बिग और चूहा छोटा या स्मॉल है। क्या आप मुझे कुछ अन्य बड़ी और छोटी चीज़ों के बारे में बता सकते हैं जिन्हें आप जानते हों?"

उन्होंने कहा गाय-कुत्ता, कुत्ता-बिल्ली, घोड़ा-कुत्ता आदि।

फिर मैंने नारियल के पेड़ और गुलाब की झाड़ी की एक तस्वीर दिखाकर लम्बा और नाटा समझाया और बच्चों को अपने अनुभव से कुछ और उदाहरण देने के लिए कहा। बच्चों ने अपने लम्बे और नाटे सहपाठियों और शिक्षकों की पहचान करके लम्बे और नाटे की अवधारणाओं को समझा।

जब मैं अगले दिन कक्षा में गई तो बच्चों ने बड़े-छोटे और लम्बे नाटे के कई उदाहरण दिए, जैसे लम्बे नाटे के लिए पिता और माता, शिक्षक और मैं; बड़े और छोटे के लिए कमरा और गुड़िया, स्कूल की इमारत और खिलौने आदि। मुझे एहसास हुआ कि मैंने कल उन्हें जो शब्द बताए थे, उनके कारण इन बच्चों ने ऐसे उदाहरण खोजने के बारे में सोचा। फिर हमने कठोर और कोमल (लकड़ी और कपास) शब्दों के साथ इस विषय को जारी रखा। बच्चे आए, कपास को छुआ और कहा, मुलायम का मतलब है कोमल। फिर बच्चे चॉक और डस्टर जैसे कई उदाहरण देने लगे। उन्होंने कहा, 'डस्टर कठोर है; चॉक कोमल है।'

हमने छोटे समूहों में इस गतिविधि को जारी रखा और मेरा अवलोकन यह था कि जो बच्चे आमतौर पर कक्षा में सक्रिय नहीं रहते थे, वे भी दिए गए काग़ज़ पर अपने शब्द लिखने के लिए उत्साहित दिख रहे थे और कक्षा में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए कठिन प्रयास कर रहे थे। उन्होंने भी बेहतरीन उदाहरण दिए। इसने बच्चों की अवधारणा की समझ को इतना मज़बूत बना दिया कि यह उनकी स्मृति में बना रहा।

वे बच्चे अब तीसरी कक्षा में हैं और उन्हें अभी भी विलोम शब्द इतनी अच्छी तरह से याद हैं कि जब भी मैं उनसे पूछती हूँ, वे बिना तुरन्त सही जवाब दे देते हैं।

इसलिए, मुझे लगता है कि जिस किसी भी विषय के बारे में हम पढ़ाते हैं, विशेष रूप से वे विषय जिनके लिए अवधारणात्मक समझ की आवश्यकता है, उसमें हमें विद्यार्थियों को शामिल करना चाहिए ताकि वे गहरी रुचि लें और 'रटना' बन्द हो जाए, लेकिन अवधारणाओं की समझ गहरी हो जाए।



पोम्पा घोषाल अप्रैल 2016 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी में अध्यापन कर रही हैं। उन्होंने रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर से गणित में स्नातक, अँग्रेज़ी साहित्य में एमए और बीएड की उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान से डीएलएड की पढ़ाई भी पूरी की है। उन्होंने अपने अध्यापन कार्य की शुरुआत 1997 में एक निजी स्कूल से की और गणित, विज्ञान और अँग्रेज़ी शिक्षक के रूप में कई स्कूलों में कार्य किया। वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रुचि रखती हैं। उनसे pompa.ghoshal@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल

कक्षा में मेरे प्रयोग

पूर्वा अग्रवाल

अक्सर ऐसा देखने में आता है कि स्कूलों में प्रक्रिया के बजाय परिणाम या उत्पाद को पुरस्कृत किया जाता है। आकलन का आखिरी पर्चा प्रगति का ब्यौरा होने की बजाय क्षमता का ब्यौरा बन जाता है। कभी-कभी जो ग़लत हो रहा है वह, जो हो सकता है, उसे प्रभावित कर देता है या उस पर हावी हो जाता है। यदि कोई बच्चा पढ़ नहीं रहा है तो हम कहते हैं कि बच्चा पढ़ नहीं सकता है। अधिकतर यह ग़लत निष्कर्ष, उस धारणा से उपजता है जो अभिभावक या शिक्षक 'क्षमता' के बारे में रखते हैं। हो सकता है कि कुछ लोगों की यह धारणा हो कि कुछ बच्चे सीख नहीं सकते हैं या वे किसी विषय-विशेष को नहीं सीख सकते हैं या किसी विशेष तरीक़े से नहीं सीख सकते या यह कि कुछ बच्चे बस सीखना ही नहीं चाहते।

मैंने ऐसा कोई विचार मन में नहीं रखा। कम से कम मुझे लगता है कि मैंने ऐसा नहीं किया। जब मैंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से शिक्षा में एमए किया तो बच्चों की सीखने की अक्षमता से जुड़ी जो भी धारणाएँ मुझमें थीं, उन पर लगातार प्रश्न चिह्न लगे। दो वर्षों के दौरान बाल विकास पर विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करते हुए मैंने जो जानकारी हासिल की, वह यह है कि शिक्षण को सीखने का मतलब इस बात की समझ विकसित करना है कि बच्चे क्यों नहीं सीखते या सीखने में असफल क्यों होते हैं। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जिससे मुझे विश्वास हो जाए कि बच्चे सीख नहीं सकते।

लेकिन अच्छा इरादा रखने वाले हितधारक, जो पुख़्ता तौर पर यह मानते हैं कि हर बच्चा सीख सकता है, उनके लिए भी इस विश्वास को व्यावहारिक रूप देना मुश्किल होता है। कभी-कभी हमारे पास नहीं हो सकता को हो सकता है में बदलने के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते। कभी-कभी हममें बच्चे के सन्दर्भ के बारे में पर्याप्त अन्तर्दृष्टि नहीं होती है और हम बच्चे के न सीख पाने के मूल कारण तक नहीं पहुँच पाते और ग़लती से यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि बच्चा सीख ही नहीं सकता।

मैं इस लेख में उन प्रयासों पर फिर से नज़र डालना चाहती हूँ जिनका प्रयोग मैंने अपनी कक्षा में किया। यह प्रयास मैंने स्कूल में और स्कूल के बाहर बच्चों के साथ कार्य करते हुए किए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि हर बच्चा सीखने की प्रक्रिया में इस तरह से शामिल हो कि वह सीख सके।

समूहीकरण और विभेदित अधिगम

एक ही शिक्षण शैली सभी बच्चों के लिए सही नहीं होती और ऐसा करने से कुछ बच्चों को काफ़ी नुक़सान होता है इसलिए अलग-अलग और रचनात्मक तरीक़े से बच्चों को समूहबद्ध करना उनके लिए लाभकारी होता है। समूह बनाते समय मैं प्रत्येक समूह के भीतर विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों के लिए विकल्प भी प्रदान करती थी।

इस तरह के एक प्रयास के दौरान तमिलनाडु के एक स्कूल में कक्षा पाँचवीं के बच्चों ने स्कूल कैंटीन में प्रदर्शित करने के लिए भोजन और पोषण पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने समूहों में काम किया और उस समूह के भीतर, एक सदस्य उस विचार के बारे में सोचता, दूसरा चित्र बनाता, तीसरा कविता बनाता और चौथा उसे लिख देता, प्रत्येक बच्चा इन कार्यों को बारी-बारी से करता जैसे प्रवेश-द्वार के लिए स्वागत सन्देश लिखना। इस प्रक्रिया के माध्यम से सत्र के अन्त तक सभी बच्चों ने स्कूल कैंटीन, बगीचे, प्रवेश-द्वार या कक्षा के लिए एक कविता तो लिख ही ली थी।

छठी कक्षा में हमने सौर प्रणाली के बारे में एक पुस्तक बनाई। प्रत्येक बच्चा अपनी पसन्द के विषय पर लिख सकता था। कुछ बच्चों ने एक तथ्यात्मक अंश लिखने की सोची, कुछ ने एक विवरण। कुछ ने एक काल्पनिक कहानी लिखी। एक बच्चे ने परिचय लिखा। कुछ बच्चे लिखना ही नहीं चाहते थे तो उन्होंने पुस्तक के लिए चित्र बनाए और उनको लेबल किया और उनमें से एक ने शीर्षक और सारांश लिखा। इस तरह प्रत्येक बच्चा सीखने की प्रक्रिया में शामिल हुआ और अपने स्तर के अनुसार लेखन कौशलों का प्रयोग किया। लेकिन अन्त में जो चीज़ बनकर तैयार हुई वह संयुक्त रूप से बनाई गई थी। इस प्रक्रिया में यह बात सुनिश्चित की गई थी कि प्रत्येक बच्चा सीखने की प्रक्रिया में भाग ले। इससे यह विश्वास भी दृढ़ हुआ कि हर बच्चा न केवल सीख सकता था बल्कि उसने सीखा भी और उसका यह सीखना साफ़ नज़र आता था।

बैठने की लचीली व्यवस्था

कभी-कभी कक्षा में सिर्फ़ बैठने की व्यवस्था बदल देने से ही सुगमकर्ता यह सुनिश्चित करने में सक्षम हो जाता है कि हर बच्चा सीख रहा है। मुझे विशेष रूप से बच्चों की गोलाकार

बैठक व्यवस्था का प्रयोग करना पसन्द है क्योंकि इससे सभी बच्चे न केवल सुगमकर्ता को देख पाते हैं बल्कि एक-दूसरे को भी आसानी से देख सकते हैं। एक-दूसरे को देखने की यह सरल-सी बात समावेशन और भागीदारी को सक्षम करने में बहुत कारगर होती है। कहानी सुनाते समय मैंने बच्चों को झुण्ड में बैठाने की भी कोशिश की है। इस व्यवस्था में बच्चों को लगता है कि वे किसी महत्त्वपूर्ण व गुप्त गतिविधि का हिस्सा हैं और जो बच्चे कक्षा में 'गड़बड़ी' करते हैं या जिन बच्चों का ध्यान भटक जाता है, उन्हें यह व्यवस्था आमतौर पर कक्षा में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करती है। मैंने यह भी देखा है कि यह व्यवस्था कक्षा के प्रति अपनत्व और टीम-भावना पैदा करती है, जिससे कम प्रेरित बच्चे भी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेने लगते हैं।

भागीदारी के अलावा मैंने यह भी पाया कि बैठने की व्यवस्था बदलने से मुझे ऐसे पैटर्न और लेबल से बचने में मदद मिली जो कक्षाओं के दौरान बन सकते हैं। बच्चों को उनके निर्धारित स्थानों और पैटर्न से अलग करने पर मुझे उन्हें पूरी तरह से एक नई रोशनी में देखने का अवसर मिला। मुझे ऐसा लगता है कि इसने निषेधकारी बन्धनों को तोड़ दिया। हैरानी की बात है कि इसने बच्चों के बीच की सीमाओं को भी तोड़ा, विशेष रूप से जेंडर और समूहों की सीमाओं को भी जैसे कि पीछे बैठने वाले बच्चे।

पाठ्यक्रम के साथ व्यक्तिगत जुड़ाव स्थापित करना

मैं वर्तमान में जिस स्कूल में काम करती हूँ, उसके संस्थापक ने याद दिलाया कि हर बच्चा एक सन्दर्भ है। वैसे तो मुझे लगता है कि यह बात पूरी तरह से सच है, लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा व्यवस्था प्रत्येक सन्दर्भ के लिए ज़िम्मेदार नहीं हो सकती। स्थानीय सन्दर्भ का ध्यान रखना भी पाठ्यक्रम और संसाधन निर्माण के लिए एक बड़ी एवं अनसुलझी चुनौती बन जाती है। ऐसे मामले में एक ऐसी व्यवस्था, जो हर बच्चे के लिए ज़िम्मेदार हो, शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ परी-कथा से कम नहीं होगी!

फिर भी, शिक्षण के दिन-प्रतिदिन के काम में यह इतना दुष्प्राप्य भी नहीं लगता है। हालाँकि यह अभी भी एक बड़ी चुनौती है, लेकिन अगर उन तरीक़ों के बारे में सोचा जाए जिनमें व्यक्तिगत कहानियों, इतिहास, बारीकियों, रुचियों और अन्य बातों को कक्षा में शामिल किया जा सके तो काफ़ी हद तक यह बात सुनिश्चित हो सकेगी कि हर बच्चा सीख पा रहा है। मेरे अनुभव के ऐसे ही कुछ क़िस्से अभी भी मेरे साथ हैं।

इनमें से एक क़िस्सा शिक्षा-नाटक की कक्षा से सम्बन्धित है। यह कक्षा स्कूल के बाहर आयोजित की गई थी। एक बच्चा 'क' हिस्सा लेने से साफ़ मना कर रहा था और दीवार के सहारे जा खड़ा हुआ।

हमने पूर्व-तैयारी का एक कार्यक्रम बनाया, जिसमें तय किया कि हर बच्चा दीवार के सहारे खड़े होने के साथ शुरुआत करेगा, दीवार से अपने दिन के बारे में बात करेगा और फिर हम कक्षा शुरू होने से पहले गोल घेरे में आ जाएँगे। तो इस प्रकार 'क' का व्यवहार (दीवार के सहारे खड़ा होना) सामान्य, स्वीकृत, साझा और मज़ेदार हो गया। यह पहला क़दम था। दूसरी बात जिसने इसे सफल बनाया वह यह थी कि मैंने उसे मजबूर नहीं किया और न ही उसकी हँसी उड़ाई लेकिन साथ ही उसे अनदेखा भी नहीं किया और न ही उसे छूट दी।

धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि वह भी यह कर सकता है और हम उस पर भरोसा कर रहे हैं। धीरे-धीरे वह भी मुख्य पाठ का हिस्सा बनने लगा। हमने भी अन्ततः दीवार पर कार्य शुरू करना बन्द कर दिया और उसके स्थान पर अन्य रणनीतियाँ/गतिविधियाँ शुरू कर दीं।

मेरा एक अन्य अनुभव छठी कक्षा के एक बच्चे के साथ था जिसने सामाजिक विज्ञान की कक्षा में भाग लेने से मना कर दिया था। मैंने कक्षा के बाद उससे उसकी रुचियों और उसके जीवन के बारे में बात करना शुरू किया। मुझे पता चला कि उसे पत्थर इकट्ठा करना पसन्द है। मैंने उससे पाषाण युग के बारे में बात करनी शुरू की। मैंने उससे यह कल्पना करने को कहा कि वह पाषाण युग का है। मैंने उसके पत्थर के संग्रह का उपयोग यह देखने के लिए किया कि उनकी सहायता से किस तरह के उपकरण बनाए जा सकते हैं। इससे उसे शुरुआती प्रेरणा मिली और उसे महसूस हुआ कि कक्षा के विषय को उसके व्यक्तिगत जीवन से कैसे जोड़ा जा सकता है।

पर इस तरह के दृष्टिकोण की अपनी समस्याएँ हैं। एक तो यह कि शिक्षक के पास आमतौर पर प्रत्येक बच्चे के साथ व्यक्तिगत रूप से जुड़ने का समय या स्थान नहीं होता और कई बार उसके पास ऐसे समावेशन के लिए अपेक्षित लचीलेपन और स्वायत्तता की कमी भी हो सकती है।

मैंने देखा है कि खेल के समय, बस में जाते समय, प्रतीक्षा करते समय बच्चों से बातें करना और जब भी अवसर मिले तब उनके जीवन और सन्दर्भ के बारे में जानने से शिक्षण-अभ्यास और बच्चों के साथ बातचीत में मदद मिल सकती है। हल्का-सा ही सही लेकिन, कक्षा में बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं का उल्लेख करने से, उन्हें शामिल करने में और उनके सन्दर्भ से जुड़ाव न रखने वाले पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने में मदद मिलती है। मैं कक्षा में उदाहरण देने के लिए बच्चों के जीवन के किस्सों और अनुभवों का उपयोग करती थी। जब मैं रीडिंग कॉम्प्रिहेंशन पैसेज तैयार करती या वर्कशीट और आकलन के प्रश्न बनाती तो मैं बच्चों के बारे में मिलने वाले हर विवरण का उपयोग करती।

मैंने जिन बातों पर यहाँ चिन्तन किया है वे केवल ऐसे कुछ अभ्यास हैं जिनका मैंने उपयोग किया और जो काफ़ी कारगर रहे हैं। उनमें चुनौतियाँ और व्यावहारिक समस्याएँ हैं। लेकिन मेरे लिए, यह सवाल कि क्या प्रत्येक बच्चा सीख सकता है या नहीं इसका जवाब अन्ततः इस बात पर टिका है कि क्या उसके जीवन से जुड़े वयस्क (माता-पिता, शिक्षक, स्कूल के प्रधानाध्यापक, पाठ्यपुस्तक लेखक या कोई अन्य हितधारक) यह मानते हैं कि बच्चा सीख सकता है। यहाँ मेरा अर्थ किसी व्यक्तिगत या भावुक विश्वास से नहीं है बल्कि, हर बच्चा सीख सकता है और हर बच्चा सब कुछ सीख सकता है, इस बात पर सुविज्ञ और परखे हुए विश्वास से है। जो चीज़ भिन्न हो सकती है और होती भी है, वह है सीखने की अवस्था, लेकिन सीखना हो सकता है।

जैसा कि मैंने उल्लेख किया है, कई मायनों में, शिक्षा व्यवस्था कुछ बच्चों को विफल करती है और वे नहीं सीख पाते हैं। सीखने की इस असफलता को बड़ी आसानी से सीखने की अक्षमता माना जा सकता है। और जब तक हम इस भ्रामक निष्कर्ष के प्रति सतर्क रहेंगे और इस बात पर वास्तव में विश्वास करेंगे कि यदि सही सन्दर्भ, स्थितियाँ और प्रक्रियाएँ हों तो हर बच्चा सीख सकता है तो निस्सन्देह हमें कक्षाओं को ऐसा बनाने के तरीक़े भी मिलेंगे जिनसे हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हर बच्चा सीख सके।



पूर्वा अग्रवाल अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की पूर्व छात्रा हैं। यहाँ से उन्होंने एमए, शिक्षा की उपाधि प्राप्त की है। उनकी राय है कि शिक्षा ने उन्हें एक शिक्षक के रूप में अपनी यात्रा शुरू करने के लिए जड़ें और पंख दिए। वे वर्तमान में बेंगलूरु के स्पार्कलिंग माइंड्ज़ ग्लोबल स्कूल में अध्यापन करती हैं। वहाँ वे अपने दो बच्चों के साथ रहती हैं। वह उस प्रक्रिया का सुगमीकरण करना पसन्द करती हैं जिससे उभरते हुए पाठक और लेखक स्वतंत्र रूप से कार्य करना सीखते हैं। वे बच्चों के लिए पुस्तकें लिखती हैं। उनकी पहली पुस्तक 'व्हाट् मेक्स मी, मी' हाल ही में तूलिका बुक्स द्वारा प्रकाशित हुई है। उनसे poorva.agarwal@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

बस ज़रा सिर पर हाथ रख देना...

प्रतिभा कटियार

उस रोज़ स्कूल से लौटते हुए मेरा मन इतना बेचैन था कि कुछ सूझ ही नहीं रहा था। बेचैनी इतनी ज़्यादा थी कि सोचा साथियों से साझा करूँगी तो शायद कुछ कम होगी लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ। कई महीने बीत चुके हैं, लेकिन अब तक वह बेचैनी जस की तस है। हाँ, इस बीच उस बेचैनी में कुछ नए आयाम ज़रूर जुड़े हैं। उस रोज़ जो हुआ उसमें कुछ भी अनोखा नहीं था, रोज़ जैसा ही था फिर भी इस बेचैनी क्यों हुई इस कदर।

उस रोज़ मैं एक ऐसे स्कूल से लौट रही थी जहाँ मैं पहले भी चार-पाँच बार जा चुकी थी। उस स्कूल के लगभग सभी बाइस बच्चे मुझे और मैं उन्हें नाम से जानने लगे थे। हममें दोस्ती हो चुकी थी। पक्की वाली दोस्ती। मैं उन्हें कहानियाँ सुनाती, बदले में वह भी मुझे कहानियाँ सुनाते। बातें करते। उस रोज़ मैंने पाँचवीं कक्षा में कुछ समय बिताया। पाँचवीं कक्षा में नौ बच्चे हैं। सभी बच्चे 'पोटली' की किताबें पढ़ते हैं, 'पोटली' लाइब्रेरी का रजिस्टर बच्चे ही सम्भालते हैं। वह कहानियों को सिर्फ़ पढ़ते ही नहीं, समझकर पढ़ते हैं और उसपर बातचीत भी करते हैं।

उस रोज़ हमने लिखने वाला खेल खेला। मैंने उन्हें कहा कि उन पढ़ी हुई कहानियों में उन्हें क्या अच्छा लगा इस बारे में लिखें। मेरा अनुभव यह है कि इस तरह अपनी मर्ज़ी से लिखने को कहने पर बच्चों को अच्छा लगता है, ख़ासकर तब जबकि उन्हें पता हो कि उनके लिखे को लेखन त्रुटियों के लिए जाँचा नहीं जाएगा। सभी बच्चों ने लिखना शुरू किया। फिर एक-एक कर बच्चों ने अपना लिखा हुआ पढ़ना शुरू किया। लेकिन तीन बच्चे भुवन, सोमाली और रुद्र* कॉपी से सिर नहीं उठा रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वह बहुत गम्भीर होकर कुछ लिख रहे हैं। जब सारे बच्चों ने अपना लिखा पढ़कर सुना दिया तब भी यह तीन बच्चे कॉपी में ही सिर घुसाए बैठे थे। मैंने प्यार से पूछा, "जितना लिखा है उतना ही दिखा दो..." तो उनके पास बैठे एक बच्चे ने कहा, "इनको लिखना नहीं आता, मैडम।" ऐसा कहने वाले बच्चे के चेहरे पर उपहास का हल्का-सा भाव था, जबकि उन तीनों बच्चों ने अपने सिर कॉपी में और छुपा लिए थे। मैंने मैडम की ओर देखा। मैडम ने बहुत सहजता के साथ कहा, "हाँ, इनको नहीं आता।" ऐसी सहजता और उपहास का वह भाव कुल मिलाकर मुझे बेचैन करने के लिए काफ़ी थे। लेकिन इससे ज़्यादा फ़िक्र मुझे इस बात की थी कि उन बच्चों को कैसा महसूस हो रहा होगा। उन्हें सहज करने के इरादे से मैंने कहा, "कोई बात नहीं, नहीं आता लिखना तो तुम मौखिक रूप से बताओ कि तुमने जो कहानी पढ़ी वह तुम्हें कैसी लगी।" बच्चे खड़े तो हो गए लेकिन बोले कुछ नहीं। उन सभी के हाथ में किताब थी लेकिन वह चुप थे। थोड़ी देर बाद भुवन ने कहा, "मैडम, हमें पढ़ना भी नहीं आता।"

मेरे लिए यह समझना मुश्किल था कि इन बच्चों को अपना नाम तक लिखना नहीं आता था और न ही वे किताब का शीर्षक पढ़ पा रहे थे। जबकि अपनी पिछली पाँच स्कूल विज़िट के दौरान मैंने इन बच्चों को काफ़ी सक्रिय और सीखने को उत्सुक पाया था। वह हर गतिविधि में बराबर शरीक होते थे, ख़ासकर भुवन। वह तो क्लास का मॉनिटर भी है। मैंने उसे किताबें पढ़ते हुए भी देखा है और एक बार तो उसने किताब को पलटते हुए पूरी कहानी भी सुनाई थी। मैंने जब पूछा, "तुम तो उस दिन कहानी सुना रहे थे ना किताब से", तो भुवन ने इत्मिनान से कहा, "वह तो मैं साथ वाले बच्चों को पढ़ते हुए सुनता हूँ तो समझ जाता हूँ कि किस पेज पर किस जगह क्या लिखा है... इसलिए।" अब भुवन मुस्करा रहा था। ऐसा लग रहा था कि उसने, बाक़ी दोनों बच्चों ने, कक्षा के बाक़ी बच्चों ने और शिक्षकों ने यह मान लिया था कि यह तीनों पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते। मैडम का कहना था कि "कुछ बच्चे नहीं ही सीख सकते और यह वही बच्चे हैं। सारे बच्चे सीख जाएँ ज़रूरी तो नहीं है न?" ऐसा मैडम मुझसे कह रही थीं या ख़ुद से पता नहीं, लेकिन मैं परेशान थी यह सोचकर कि जो बच्चा दोस्त को पढ़ते देखकर यह समझ जाता है कि किस पेज पर क्या लिखा है वह ख़ुद क्यों पढ़ना-लिखना सीख नहीं पा रहा है। यह बच्चे अकसर स्कूल से अनुपस्थित रहने वाले बच्चे भी नहीं हैं। भुवन की बड़ी-बड़ी आँखें, उसकी मुस्कराहट और आत्मविश्वास के साथ यह कहना, "मैडम हमको पढ़ना भी नहीं आता, लिखना भी नहीं आता" जैसे मेरी आत्मा को घायल कर रहा था। उसे स्कूल की व्यवस्था ने यह अच्छे से समझा दिया था कि कुछ बच्चे नहीं ही सीख पाते हैं और वह उन बच्चों में से है।

सच कह रही हूँ महीनों बाद भी यह सब लिखते हुए भुवन की आँखें मेरे सामने हैं। यह हर उस बच्चे की आँखें हैं जो पढ़ना-लिखना सीख पाने से दूर हैं, जो शिक्षा की रेल में एक अलग डिब्बे में सफ़र कर रहे हैं और कहीं भी कभी भी उतर जाएँगे। कोई कक्षा तीन के बाद स्कूल छोड़ सकता है, कोई चार के बाद तो कोई पाँच के बाद। व्यवस्था भी इनके यूँ स्कूल छोड़ जाने से बेचैन नहीं है क्योंकि यह बच्चे आँकड़े बिगाड़ते हैं। इस स्कूल में भुवन ने कक्षा एक में दाख़िला लिया था। आज वह उसी स्कूल से कक्षा पाँच पास करके जाने वाला है बिना लिखना-पढ़ना सीखे। हालाँकि लिखने-पढ़ने से इतर भुवन हिसाब का पक्का है, हर काम ठीक से करता है, नाटक, कविता, कहानी सबमें शामिल होता है।

अजीब मन है मेरा जो हमेशा ही (तथाकथित) हार गए, पिछड़ गए, हाशिये पर छूट गए लोगों के क़रीब जाकर बैठ जाता है। मैंने क्या किया, कितना कर पाई और आज भुवन अपना और दोस्तों का नाम लिखने लगा है— इस यात्रा पर बात करना बेमानी है क्योंकि सवाल तो इससे काफ़ी बड़ा है। ठीक इसी वक़्त, मुझे राजस्थान के एक साथी द्वारा सुनाया गया ऐसा ही अनुभव याद आता है। बच्चे का नाम दिलख़ुश था। वह ख़ूब शैतान था, इतना कि कक्षा में किसी को पढ़ने-लिखने नहीं देता, सब सामान बिखेर देता, सबसे झगड़ा करता और पढ़ता-लिखता बिल्कुल नहीं। यदि शिक्षक उसके अभिभावकों को बुलाकर कुछ कहते तो अभिभावक भी यह कहते हुए उसे पीटना शुरू कर देंगे कि घर पर भी यही करता है वह। फिर कुछ महीनों तक जब अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की एक साथी ने उसके साथ काम किया तो पाया कि बच्चे का दिमाग़ बहुत तेज़ है और गणित में तो वह बेमिसाल है। फिर अल्मोड़ा की वह बच्ची याद आ गई जो नीरू मैडम का पल्ला पकड़े-पकड़े घूमती थी और किसी से बात नहीं करती थी। उसे भी पढ़ने-लिखने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। फिर एक और बच्चा दिनेशपुर का याद आया जिसका स्कूल में आना व्यवस्था को ख़राब करने जैसा होता था। सिर्फ़ झगड़ा और गाली-गलौज करना ही उसका काम था। वह पढ़ता भी नहीं था और पढ़ना चाहता भी नहीं था। इसलिए बाक़ी बच्चों की कॉपी फाड़ता था या उनकी पेंसिल छुपा देता था। बाद में उस बच्चे के शिक्षक ने पाया कि उस बच्चे को भूख भर ख़ुराक ही नहीं मिल रही है, न घर पर न स्कूल में। उसकी भूख अन्य बच्चों से ज़्यादा थी और खाना उसे सबके बराबर मिलता था। फिर एक-एक कर न जाने कितने उदाहरण मेरी आँखों के सामने तैरने लगे। एक बच्ची जिसे दिखता कम था, एक जिसकी माँ की मृत्यु हो गई थी, एक बच्चा जिसके पिता शराब पीकर रोज़ माँ को पीटते थे या एक जिसका भाई उसकी किताबें फाड़ देता था।

यह सब बच्चे स्कूल जाकर भी सीख नहीं पा रहे थे। दिक़्क़त यह थी कि व्यवस्था के तहत यह मान लिया गया था कि कुछ बच्चे होते ही ऐसे हैं जो सीख नहीं पाते। या स्कूलों में इतना कम शिक्षक स्टाफ़ है और ऐसे हालात हैं कि अलग से इन बच्चों पर काम करने के बारे में सोचना भी मुश्किल है। यह तर्क सही हो सकते हैं, शायद होंगे भी, आँकड़ों में दर्ज सत्तर या अस्सी प्रतिशत बच्चों के सीख जाने से हम सन्तुष्ट भी हो लेंगे लेकिन उन बच्चों की आँखें पीछा करती रहेंगी जो सीखने की इच्छा से स्कूल में दाख़िल हुए थे।

सरकारी स्कूलों में जो बच्चे आते हैं व्यवस्था को उनके और उनके परिवेश के प्रति संवेदनशील होना कितना ज़रूरी है यह बात समझ में आती है। किसी भी तरह के सीखने की शुरुआत उसी संवेदना के बिन्दु से होती है जहाँ सीखने की इच्छा और सिखाने में स्नेह का मिलन होता है। अपने ही एक साथी की कही यह बात मुझे किसी भी तरह के सीखने-सिखाने को लेकर बताया गया मंत्र लगता है—पहले बच्चों के सिर पर हाथ रखो प्यार से, उनकी आँखों में देखो तो सही कितने सपने हैं वहाँ, उनसे दोस्ती तो करो फिर लिखना-पढ़ना अपने आप आ जाएगा। सोचती हूँ कि शिक्षा का इतना बड़ा तंत्र ऐसी भावुक बातों से तो नहीं चलने वाला, लेकिन फिर यह भी पाती हूँ कि हमारे शिक्षा के दस्तावेज़ों में भी इस संवेदना के लिए पूरी स्पेस है। यूँ ही नहीं सभी के लिए न्यायोचित शिक्षा, बच्चे पर केन्द्रित उसकी ज़रूरत पर आधारित शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया में हर बच्चे की प्रतिभागिता की बात कही गई होगी। चाहे नेशनल एजुकेशन पॉलिसी हो या एनसीएफ 2005 या नेशनल करिकुलम फॉर एलीमेंटरी एंड सैकेंडरी एजुकेशन, सभी इन बातों की अनुशंसा करते हैं। अभी हाल ही में, 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) ने एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया है, जिसमें सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण समावेशी शिक्षा प्रदान करने के तरीक़े शामिल किए गए हैं। वह शिक्षकों द्वारा निम्नलिखित कामों को करने की ज़रूरत को स्पष्ट करती है :

- हर बच्चे की अनोखी ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील होना
- बच्चे पर केन्द्रित, सामाजिक रूप से प्रासंगिक और न्यायोचित पढ़ाने/सीखने की प्रक्रिया प्रदान करना
- उनके सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों में विविधता को समझना।

यानी मामला सिर्फ़ भावुक होने का नहीं है उस मर्म को समझने का है जहाँ यह बातें सिर्फ़ दस्तावेज़ों में दर्ज होकर न रह जाएँ, बल्कि कक्षा में हर बच्चे के जीवन से संवेदना के धरातल पर

जुड़ सकें। बच्चों को, उनकी ज़रूरतों को उनके परिवेश को समझे बिना और उनके प्रति सम्मान का भाव लाए बिना इसे अमल में लाना मुश्किल है।

इसलिए जब कोई शिक्षक यह कहते हैं कि इन बच्चों के अभिभावक इनपर ध्यान नहीं देते, तो मुझे 'इन बच्चों' से और प्यार हो जाता है। और मैं शिक्षक साथियों से कहती हूँ कि सबका सीखना ज़रूरी है क्योंकि सीखना हक़ है सबका। ठीक उसी तरह जैसे जीवन पर हक़ है सबका। इस प्रक्रिया की शुरुआत की पहली पैडागौजी है कक्षा में आए हर बच्चे से मन का रिश्ता बना पाना, उनका सम्मान करना और अपनी प्रक्रियाओं में थोड़ा अतिरिक्त चौकन्नापन शामिल करना कि कहीं कोई छूट तो नहीं रहा।

**बच्चों की पहचान की रक्षा हेतु नाम बदल दिए गए हैं।*



प्रतिभा कटियार अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, देहरादून में हिन्दी भाषा और प्रकाशन के स्रोत व्यक्ति के तौर पर कार्यरत हैं। उन्होंने राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर, एलएलबी और पत्रकारिता एवं जनसंचार में डिप्लोमा किया है। पूर्व में उन्होंने हिन्दुस्तान, पायोनियर, जनसत्ता, स्वतन्त्र भारत और दैनिक जागरण में बतौर पत्रकार कार्य किया है। लेखन के प्रति प्रतिभा का बेहद झुकाव है। वे कविताएँ कहानियाँ एवं यात्रा वृत्तान्त लिखती हैं। उन्हें 2010 में 'संगम हाउस' की फेलोशिप प्राप्त हुई। उन्होंने रूसी कवि 'मारीना त्स्वेतायेवा' की जीवनी लिखी है। वे न्यायसंगतता, समानता और मानवता में यक़ीन रखती हैं जो उनकी लेखनी और उनके कार्यों में प्रतिबिम्बित होता है। उनसे pratibhakatiyar@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

समावेशी कक्षाओं के लिए शिक्षकों को तैयार करना

राजश्री श्रीनिवासन

यद्यपि हमारे देश का क़ानून समान गुणवत्ता वाली शिक्षा तक सभी की पहुँच की बात करता है, लेकिन वास्तविकता, असमान पहुँच और निराशाजनक शैक्षिक परिणामों के उदाहरणों से भरी पड़ी है। यहाँ पर बड़ी संख्या में ऐसे बच्चे हैं जो विकलांगता, ग़रीबी और सामाजिक बहिष्कार के शिकार हैं। स्कूली शिक्षा व्यवस्था में, शैक्षिक उपलब्धि दुष्प्राप्य ही रही है, विशेष रूप से पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए। इन स्कूलों में शिक्षकों का काम सबसे कठिन है। उन्हें यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि सारा शैक्षिक अधिगम स्कूल में ही हो, क्योंकि इन बच्चों को घर पर कोई शैक्षिक सहायता नहीं मिलती है। यह बच्चे ऐसी परिस्थितियों में रहते हैं कि शिक्षकों को पक्के तौर पर यह मालूम नहीं होता कि पारिवारिक या सांस्कृतिक या सामाजिक-आर्थिक कारणों के चलते बच्चे अगले दिन स्कूल आएँगे भी या नहीं। क्योंकि इन बच्चों का जीवन सतत अनिश्चितता और अस्पष्टता की स्थिति में रहता है। उन्हें ऐसे शिक्षकों और एक ऐसी सहयोगी शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता है जो लगातार यह माने कि सभी बच्चे अधिगम और उपलब्धि के लिए सक्षम हैं। स्कूली शिक्षा के दर्शन और अभ्यास के केन्द्र में यह विश्वास होना चाहिए कि ग़रीबी, जाति, धर्म और अन्य सामाजिक अन्तरों का बुद्धिमत्ता और खोज आधारित सीखने से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पिछले दशक में स्कूली शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यचर्या के विमर्शों में शिक्षार्थियों के बीच विविधता के मुद्दों और सभी बच्चों के अधिगम के लिए शिक्षकों को तैयार करने की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 के प्रारूप के छठे अध्याय (समतामूलक और समावेशी शिक्षा) के उद्देश्य में समतामूलक और समावेशी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करने की बात कही गई है ताकि सभी बच्चों को सीखने और सफल होने के समान अवसर मिलें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इसमें समावेशी शिक्षा को सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा और सेवाकालीन पेशेवर विकास का अभिन्न अंग बनाना प्रस्तावित है। इसमें कहा गया है कि:

'... यह कार्यक्रम सुनिश्चित करेंगे कि सभी शिक्षकों को विभिन्न शिक्षार्थियों के प्रति निरन्तर संवेदनशील बनाया जाए जिससे वे विभिन्न शिक्षार्थियों, विशेष रूप से कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के सभी शिक्षार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हों।' (पृ.197, प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019)

ग़रीब बच्चों को शिक्षित करने के बारे में शिक्षकों की धारणाओं पर किए गए शोध-अध्ययन बताते हैं कि शिक्षकों को लगता है कि इन बच्चों का संज्ञानात्मक स्तर कम होता है और उनके अध्ययन की आदतें भी अच्छी नहीं होतीं (बत्रा, 2015)। सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में कार्यरत शिक्षकों के बारे में फ़ील्ड से मिलने वाले अन्य विवरण भी हैं (अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, 2019; गिरिधर; 2019), यह ऐसे शिक्षकों के जीवन को दर्शाते हैं जो जाति, धर्म, वर्ग और अन्य संस्थागत और नौकरशाही संरचनाओं की सीमाओं के पार जाते हैं, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि बच्चे सीखें और अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करें।

तो दोनों प्रकार के विवरण मौजूद हैं। महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि हम, सभी बच्चों के अधिगम और विकास को बेहतर बनाने के उद्देश्य से समावेशी शिक्षा हेतु शिक्षक तैयारी का कार्यक्रम कैसे विकसित करते हैं? शिक्षणशास्त्र के वे कौन-से तरीक़े हैं जो विद्यार्थियों को अपनी मान्यताओं और धारणाओं को जागरूकता के धरातल पर लाने में मदद करेंगे?

शिक्षण करना सीखना : शिक्षक-शिक्षा का शिक्षणशास्त्र

शिक्षण करना सीखना एक जटिल कार्य है। यह छात्र-शिक्षक और उसके भावी पेशे के बीच सम्पर्क का पहला चरण है। सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों में इन बातों को शामिल किया गया है : अपने चुने हुए स्कूली विषय से सम्बन्धित सामग्री और शिक्षणशास्त्रीय ज्ञान को विकसित करना, शिक्षार्थियों की पृष्ठभूमि और अधिगम की प्रक्रिया को समझना, स्कूल के सन्दर्भों में बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने के लिए सामाजिक और नैतिक प्रवृत्तियों को विकसित करना और नियोजन, शिक्षाशास्त्र और आकलन के बारे में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों की जानकारी प्राप्त करना। शिक्षक-शिक्षा का शिक्षाशास्त्र इस आधार पर टिका हुआ है कि सिद्धान्त, अभ्यास और जाँच-पड़ताल करना एक-दूसरे के भीतर अन्तर्निहित है और सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान का विकास, शैक्षिक अभ्यास की एक समृद्ध परिकल्पना के केन्द्र में होता है।

छात्र-शिक्षक अपने शिक्षार्थी जीवन की पृष्ठभूमि, अपने बचपन के अनुभवों और सीखने के बारे में तमाम मान्यताओं और धारणाओं के साथ कार्यक्रम में प्रवेश करते हैं। उन्हें अपनी मान्यताओं को व्यक्त करने और उस पर चिन्तन करने का अवसर मिलना चाहिए। मान्यताएँ हमारे अभ्यास को आकार देती हैं। नए ज्ञान

का निर्माण, पूर्व-धारणाओं की जाँच-पड़ताल से शुरू होता है। फीमैन-नेम्सर एवं बुकमैन (1986) यह मानते हैं कि : “शिक्षण करना सीखने के लिए न तो केवल प्रत्यक्ष अनुभव काफ़ी है और न ही विश्वविद्यालय की शिक्षा। यदि वर्तमान मान्यताओं और धारणाओं की जाँच में शिक्षक बनने के इच्छुक विद्यार्थियों की मदद न की जाए तो इस बात की सम्भावना है कि वे पारम्परिक मान्यताओं को बनाए रखेंगे और नई जानकारी व पेचीदा अनुभवों को पुराने ढाँचे में शामिल करेंगे।”(पृ. 225)

मैं बाल विकास और अधिगम का पाठ्यक्रम पढ़ाती हूँ और यहाँ उल्लिखित शिक्षणशास्त्रीय दृष्टिकोण मेरे उन्हीं अनुभवों से उपजा है। इस पाठ्यक्रम में बचपन, बच्चों, अधिगम और शिक्षण के बारे में पूर्व धारणाओं को चुनौती देने का हर सम्भव प्रयास किया जाता है।

पठन और चर्चाओं के माध्यम से मान्यताओं को चुनौती देना

पाठ्यक्रमों के लिए लेखों का चयन करना विद्यार्थियों को उनकी पूर्व मान्यताओं की जाँच करने के लिए चुनौती देने का एक अच्छा स्रोत है। लेख पढ़ने के दौरान इस बात के अवसर दिए जाने चाहिए जिसमें बचपन, जाति, लिंग,विकलांगता, ग़रीबी से सम्बन्धित वैकल्पिक दृष्टिकोण पर चिन्तन, चर्चा और विचार किया जा सके। शुरुआती कुछ कक्षाएँ इन मुद्दों पर केन्द्रित होती हैं- बच्चा कौन है? बचपन का अर्थ क्या है? क्या यह एकात्मक अवधारणा है? क्या सभी बच्चे समान रूप से बचपन का अनुभव करते हैं? मैं ग़रीबी, बचपन और अधिगम के इर्द-गिर्द एक विशिष्ट चर्चा भी करती हूँ। ग़रीबी पर चर्चा के माध्यम से सड़कों पर, संस्थागत घरों में, युद्ध क्षेत्रों में, पहाड़ी क्षेत्रों आदि विभिन्न परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दे उभर कर आते हैं। हमारे विद्यार्थी समय-रेखा से सम्बन्धित एक गतिविधि करते हैं जो उन्हें अपने बचपन के दिनों में वापस जाने और उन कारकों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती है जिन्होंने उनके अधिगम को आकार दिया।

विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए पूर्ण लेख या सम्पादित अंश दिए जाते हैं, जैसे सुखदेव थोराट का पैसेज टु एडल्टहुड : परसेप्शन फ्रॉम बिलो, बाल श्रम पर शारदा बालगोपालन का रिमेंबरिंग चाइल्डहुड, नोशन्स ऑफ सेल्फ : लिव्ड रिएलिटीस ऑफ चिल्ड्रन विद डिसएबिलिटीस पर सिंह और घई का लेख। संघर्ष-क्षेत्रों में बच्चे, पोषण सम्बन्धी समस्याओं वाले बच्चे, सड़कों पर रहने वाले बच्चे आदि विषयों पर लिखे गए वृतान्त भी साझा किए जाते हैं।

केवल लिखित सामग्री ही नहीं बल्कि विद्यार्थी विभिन्न सन्दर्भों वाले बच्चों पर बनाए गए वीडियो भी देखते हैं। जिन विद्यार्थियों ने एक जैसे लेख पढ़े हैं, वे एक समूह बनाते हैं और उन्हें चर्चा के लिए कुछ प्रश्न दिए जाते हैं जो सार्थक बातचीत के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। लेकिन यह प्रश्न बातचीत को केवल एक सीमा तक ही दिशा देते हैं और मुक्त-चर्चा के लिए काफ़ी अवसर रहता है। ऐसे प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

हमारे समाज ने कामकाजी बच्चों/विकलांग बच्चों की छवि का निर्माण/ निरूपण कैसे किया है? इस निर्मिति का क्या प्रभाव है? इन बच्चों के जीवन में शिक्षा का क्या स्थान है? क्या उनके बचपन की निर्मिति के वैकल्पिक तरीक़े हैं?

सहयोगात्मक चर्चा के बाद सामूहिक प्रक्रिया होती है, जिसमें पूरी कक्षा एक साथ होती है और उनसे उस लेख या पर्चे को संक्षेप में बताने और अपने समूह में हुई चर्चाओं को साझा करने के लिए कहा जाता है। कभी-कभी उनसे अपने विचार अलग से लिखकर देने के लिए भी कहा जाता है। विद्यार्थियों के बीच आत्म-जागरूकता पैदा करने और उन्हें हाशियाकृत तबक़े के बच्चों की पृष्ठभूमि को समझने में मदद करने के लिए रीडिंग्स/लेखों के साथ-साथ कक्षा में चर्चा करना एक बहुत ही सशक्त माध्यम हो सकता है।

छात्र-शिक्षकों को समाज में लिंग, जाति, वर्ग, भाषाई भिन्नता, विकलांगता व समता और न्याय के बरक्स अपनी स्वयं की स्थितियों पर चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस तरह की सामूहिक चर्चाओं के दौरान यह अपरिहार्य है कि बड़ी सामाजिक प्रक्रिया, बाज़ार की परिघटना, राजनीति, मानवाधिकार उल्लंघनों एवं विभिन्न नैतिक पक्षों/स्थितियों के बारे में प्रश्न उभरें। विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं और उनके वैकल्पिक विचारों से शिक्षक-प्रशिक्षक के अनुभव को मज़बूत करने और उनके शिक्षण को प्रामाणिक बनाने में भी मदद मिलती है। विद्यार्थियों को एहसास होता है कि कुछ प्रश्न ऐसे भी होते हैं जिनके सीधे उत्तर नहीं होते। उसके लिए उन्हें कठिन परिश्रम करना होगा और बचपन से सम्बन्धित विचारों को गहराई से समझना होगा।

फ़ील्ड के अनुभवों के माध्यम से मान्यताओं को चुनौती देना

हमारे मास्टर ऑफ़ एजुकेशन कार्यक्रम में बाल विकास और अधिगम की शिक्षा दी जाती है। इसमें एक व्यावहारिक घटक है, जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी अनाथालय, विकलांगता केन्द्र, किशोर गृह, शहरी झुग्गियों और ऐसे ही अन्य संस्थानों का दौरा करते हैं। इन संस्थानों में बड़ी संख्या में बच्चे हाशियाकृत तबक़े से होते हैं और जो पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले हो सकते हैं। हमारे विद्यार्थी इन बच्चों के साथ खेलते हैं और उनसे बातें करते हैं। इससे वे उनके रोज़मर्रा के जीवन, दिनचर्या, भोजन की आदतों, खेल और स्कूली शिक्षा में उनकी रुचि के बारे में समझ पाते हैं। विद्यार्थी इन अवलोकनों के विश्लेषण में, बाल-विकास और अधिगम के सिद्धान्तों की अपनी समझ का उपयोग करते हैं।

इन विद्यार्थियों के मन में लम्बे समय से बच्चों और बचपन के बारे में जो मान्यताएँ होती हैं उन्हें तब चुनौती मिलती है जब वे कमज़ोर सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों से आने वाले बच्चों की 'आवाज़ों' को सुनते हैं। वे आत्म-निरीक्षण और तर्क करने लगते हैं। संज्ञानात्मक और भावनात्मक बेचैनी उन्हें सहमति, असहमति और तनाव की ओर ले जाती है। विद्यार्थियों को एहसास होता है कि उन्हें अपनी मान्यताओं और रूढ़िबद्ध धारणाओं को छोड़कर दूसरों के दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिए। यह चर्चाएँ उनके अनुभवों के प्रकाश में मौजूदा धारणाओं पर पुनर्विचार/प्रश्न करने के अवसर प्रदान करती हैं और अनुभवों को परिष्कृत करने, योग्य ठहराने या समीक्षा करने और पुनर्निर्माण करने की प्रक्रिया के माध्यम से वे नए ज्ञान और विविध अवधारणाएँ निर्मित करते हैं। अक्सर वे रिफ्लेक्टिव जर्नल में भी लिखते हैं। एक विद्यार्थी का कहना था, "मैंने सोचा था कि अनाथालय में रहने वाले बच्चे दुखी होंगे। लेकिन ऐसा नहीं है। वे काफ़ी मज़े में हैं और उन्होंने मुझसे कई ऐसे सवाल किए जिनका मेरे पास कोई जवाब नहीं था।"

इस प्रकार, विद्यार्थी यह समझ पाते हैं कि ग़रीबों की परिस्थितियाँ उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं या माता-पिता की शालीनता या अज्ञानता से परिभाषित नहीं होतीं। दूसरे शब्दों में, विद्यार्थी हाशियाकृत तबक़े के बच्चों के बारे में समाज में व्यापक रूप से प्रचलित 'अपूर्णता/कमी' के दृष्टिकोण पर सवाल खड़े करते हैं। वे यह भी समझ पाते हैं कि बचपन न केवल एक जैविक रचना है, बल्कि एक सामाजिक रचना भी है।

पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले कई बच्चे, जिनका जीवन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं/रिवाज़ों और वित्तीय बाधाओं से अवरोधित होता है, उन्हें स्कूल में एक ऐसे वयस्क की आवश्यकता होती है जो उनकी देखभाल और सहायता करे और जो इस बात में दृढ़ विश्वास रखता हो कि सभी बच्चे सीखने में सक्षम होते हैं। स्कूलों, पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र और आकलन को व्यवस्थित करने वाले केन्द्रीय सिद्धान्तों में से एक प्रमुख सिद्धान्त है- समावेशन और इसे शिक्षक तैयारी के कार्यक्रमों में प्रमुखता दी जानी चाहिए। उनके पाठ्यक्रम में पढ़ने, कक्षा की चर्चाओं और फ़ील्ड के अनुभवों के लिए अधिक अवसर दिए जाने चाहिए।

जो शैक्षणिक अभ्यास विद्यार्थियों को फ़ील्ड, पाठ्य और स्वयं के बीच सम्बन्ध बनाने का मार्गदर्शन करते हैं, वे न केवल, बचपन, शिक्षण और अधिगम के बारे में विद्यार्थियों की मान्यताओं और पूर्व धारणाओं को जागरूकता के स्तर तक लाने में मदद कर सकते हैं, बल्कि स्कूल के वातावरण और कक्षा अभ्यासों को समावेशी बनाने की कल्पना करने में भी उनकी सहायता करेंगे।

एक सदी से भी काफ़ी पहले जॉन ड्युई ने 'द रिलेशन ऑफ थ्योरी टु प्रैक्टिस इन एजुकेशन' शीर्षक का निबन्ध लिखा, जिसमें उन्होंने शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों और उनकी सोच के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाने पर विस्तारपूर्वक बात की। उन्होंने इसे 'अन्तर्मन में झाँकना' के रूप में वर्णित किया, यानि शिक्षक की अपने विद्यार्थियों की सोच और अनुक्रियाओं से ख़ुद को जोड़ने की क्षमता और उन 'प्रवृत्तियों व आदतों को पहचानना जो उनके अपने होने, कहने और करने के तरीक़ों के कारण विद्यार्थियों में पोषित हो रही हैं या उन्हें निरुत्साहित' कर रही हैं।

यहाँ यह प्रश्न पूछना उचित हो सकता है कि : क्या छात्र-शिक्षक अपने विद्यार्थियों के साथ उन तरीक़ों से जुड़ने का प्रयास कर सकते हैं जो ड्युई के बच्चों को जानने के बारे में विचारों के साथ मेल खाते हों? एक समावेशी समाज हेतु, सक्षम और ध्यान रखने वाले शिक्षकों को विकसित करने के लिए हमें ड्युई के प्रस्ताव पर विचार करना होगा और अपने शैक्षणिक अभ्यासों के माध्यम से 'बच्चों के अन्तर्मन' की समझ तक पहुँचना होगा।

References

Azim Premji University (2019).

https://practiceconnect.azimpremjiuniversity.edu.in/category/practice-insights/teachers-for-inclusive-society/

Batra (2015) Quality of Education and the Poor: Constraints on Learning. TRG Poverty and Education. Working paper series. (p1-14) Max Weber Stiffing

Feiman-Nemser, S., & Buchmann, M. (1986). The first year of teacher preparation: Transition to pedagogical thinking? Journal of Curriculum Studies, 18(3), 239-256.

Giridhar, S (2020). Ordinary People, Extraordinary teachers: The heroes of real India. Westland Publications Private Company: Chennai



राजश्री श्रीनिवासन अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं। वे शिक्षक-शिक्षा और बाल-विकास में रुचि रखती हैं। उनसे rajashree@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

व्यापक साक्षरता कार्यक्रम के आवश्यक स्तम्भ

सक्तिब्रता सेन और निधि विनायक

साक्षरता के तीन स्तम्भ

मौखिकता, वर्ण विन्यास पद्धति में दक्षता[i] (orthographic expertise) और विभिन्न प्रकार के पाठ्यों से सम्पर्क- यह सब मिलकर बच्चों के लिए एक व्यापक साक्षरता अनुभव का निर्माण करते हैं। इन तीनों स्तम्भों की प्रकृति न तो वृद्धिशील है और न ही कारणात्मक। वे वास्तव में आपस में गुँथे हुए हैं। और यदि शुरुआती पाठक उनका अनुभव एक साथ करें तो इससे उन्हें प्रेरित एवं स्वतंत्र पाठक बनने में मदद मिलती है।

बच्चा, पढ़ना सीखने के लिए जो प्रयास करता है, उसमें भाषा का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। भाषा ही अर्थ निर्माण के लिए, दुनिया के बारे में जानने के और जीवन के अनुभवों को समझने के लिए बच्चे का आधार है। चूँकि भाषा बच्चे के लिए सोच-विचार की वस्तु बन जाती है, इसलिए मौखिकता, साक्षरता सीखने की पहली आवश्यकता है।

इसके अलावा हमें भारत की बहुभाषी यथार्थता के बारे में भी पता होना चाहिए और उसे स्वीकार करना चाहिए। हर भारतीय बहुभाषी होता है जिसमें विविध मौखिक अभिव्यक्तियाँ शामिल रहती हैं। अधिकांश बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं और साथ ही अपने आस-पास की दुनिया से अन्तःक्रिया करते हैं तो किसी-न-किसी तरह भाषा की अनूठी प्रवाहिता के सम्पर्क में आते हैं। साक्षरता के लिए एक ठोस आधार तैयार करने के लिए कक्षा में बच्चे की भाषा और मौखिकता के लिए स्थान बनाना बहुत ज़रूरी है।

बच्चों को मौखिक भाषा के विकास और लिखने की विशेषज्ञता के प्रति जागरूकता के अवसर देने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के सार्थक पाठ्यों से रू-ब-रू करवाना भी महत्त्वपूर्ण है। अफ़सोस की बात यह है कि बच्चों को साक्षरता का सार्थक अनुभव देने के लिए अकसर किताबों को केवल सोने पर सुहागे के रूप में देखा जाता है यानी ‘किताबों का होना अच्छा है’ न कि यह कि ‘किताबें अपरिहार्य’ हैं। गहन एवं विस्तारित समझ बनाने और प्रवाह के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यों से रू-ब-रू होना बेहद ज़रूरी है।

कक्षागत प्रक्रियाओं में साक्षरता के तीन स्तम्भ

साक्षरता के इन तीन स्तम्भों के बारे में अच्छी तरह से समझने और कक्षा में उनका प्रयोग करने की ज़रूरत है। ऐसा करने के कुछ तरीक़े यहाँ दिए गए हैं :

प्रभावी मौखिक भाषा अभ्यास

यह बच्चों को गम्भीर रूप से सोचने और जिन मौखिक संसाधनों को बच्चे कक्षा में साथ ले कर आते हैं, उन्हें आधार बना कर नवीन अधिगम के लिए प्रोत्साहित करते हैं; और साथ ही स्थानीय भाषा और स्कूल की भाषा के बीच की दीवार को गिराने में उनकी मदद भी करते हैं।

- कहानी पर चर्चा : बच्चों को कहानी पढ़ने से पहले, पढ़ने के दौरान और पढ़ने के बाद, इन तीनों चरणों में कहानी के साथ जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- किसी कहानी को पढ़ने से पहले बच्चों को यह बताने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है कि उसमें दिए गए चित्र संकेत, कहानी के शीर्षक आदि के आधार पर वे अनुमान लगाएँ कि कहानी क्या हो सकती है।
- जबकि कहानी पढ़े जाने के दौरान, कुछ दिलचस्प बिन्दुओं पर रुककर उनसे पूछा जा सकता है कि अब आगे क्या होगा। इससे भी काफ़ी मदद मिलती है।
- कहानी पढ़ने के बाद बच्चों से कहानी को अपने शब्दों में सुनाने के लिए कहा जा सकता है। यह सोचने के लिए कहा जा सकता है कि पात्रों को कैसा महसूस हुआ होगा। उनसे कहानी का विस्तार करने, कहानी की किसी घटना को बदलकर उसे फिर से लिखने आदि के लिए कहा जा सकता है। पढ़ने के बाद की जाने वाली इन गतिविधियों को लेखन-कार्य के माध्यम से भी मज़बूत किया जा सकता है।
- चित्रों पर चर्चा : बच्चों को रचनात्मक रूप से सोचने, कहानी रचने, शब्द-भण्डार बढ़ाने और सक्रियता से चर्चाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पाठ्यपुस्तकों आदि से चित्र लिए जा सकते हैं। इन चित्रों पर चर्चा के दौरान इस तरह के प्रश्न पूछे जा सकते हैं— आपको क्या लगता है कि यहाँ क्या हो रहा है? यह चरित्र इस गतिविधि को क्यों कर रहा है? आपको क्या लगता है कि वे इसके बाद कहाँ जाएँगे? आपके विचार में यह दोनों किरदार किस बारे में बात कर रहे हैं?

---

[i]*अर्थात शब्दों के रूप में विशिष्ट अक्षरों के पैटर्न की पहचान करने की क्षमता जो अन्ततः शब्द-पहचान की ओर ले जाती है। जब बच्चे लिखने की विशेषज्ञता हासिल करते हैं तब पढ़ना एक स्वचालित प्रक्रिया बन जाती है।*

- मुक्त चर्चा : बच्चों को अपने दैनिक जीवन के अनुभवों, अपने भविष्य, अपने विचारों आदि के बारे में बात करना बहुत अच्छा लगता है। इसलिए शिक्षक के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि वे बच्चों के साथ चर्चा के अवसरों का उपयोग करें, जिनमें से कुछ चर्चाएँ थीम पर आधारित और कुछ सहज हो सकती हैं। जैसे अपने आस-पास नज़र आने वाले स्थानीय पौधों, पशुओं या उपकरणों पर चर्चा करना या शाम को वे क्या खेलना पसन्द करते हैं और कुछ विशिष्ट व्यंजनों को कैसे तैयार किया जाता है आदि के बारे में बातचीत की जा सकती है।
- चर्चा के दौरान बच्चों को अपनी मातृभाषा में ख़ुद को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। क्योंकि यह बात महत्त्वपूर्ण है कि वे गम्भीर रूप से सोचना सीखें और अपने विचारों को तार्किक रूप से व्यक्त करें। और यदि अपनी मातृभाषा में बोलने की स्वतंत्रता हो तो उन्हें ख़ुद को व्यक्त करना कहीं अधिक आसान लगता है।

बहुभाषी भारत में साक्षरता : *रूम टू रीड* के अनुभव

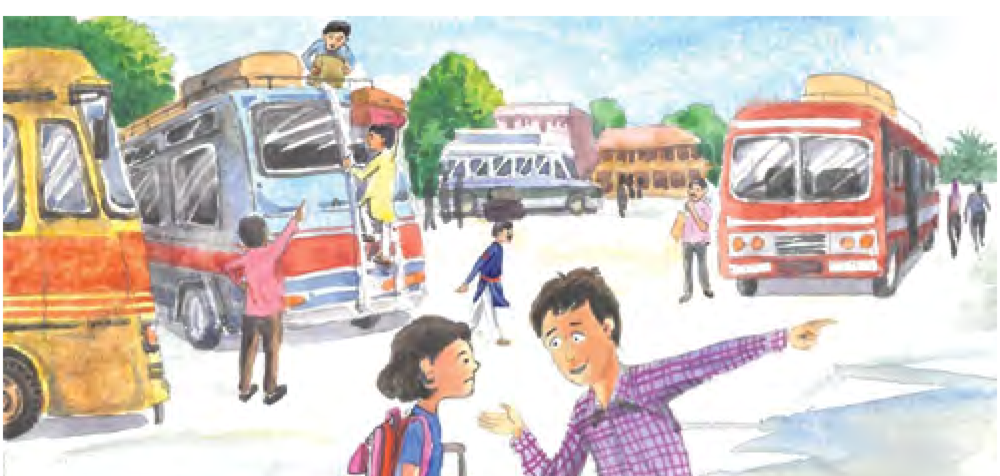
रूम टू रीड (RtR) ने राजस्थान के सिरोही और मध्य प्रदेश के बड़वानी ज़िलों में एक भली-भाँति रचित बहुभाषी कार्यक्रम लागू किया है। यह प्रक्रिया दोनों स्थानों के विस्तृत सामाजिक-भाषाई सर्वेक्षण के साथ शुरू हुई, जिसके बाद निष्कर्षों का विश्लेषण किया गया ताकि उसकी रोशनी में फ़ील्ड के कार्य किए जा सकें।

वैसे तो साक्षरता के तीन व्यापक स्तम्भ कार्यक्रम की आधारशिला थे, लेकिन बहुभाषी सामग्री के निर्माण और संसाधन के रूप में बच्चे की भाषा के उपयोग पर अतिरिक्त ध्यान दिया गया था। इस बात के लिए सावधानीपूर्वक और सचेत क़दम उठाए गए कि किसी एक प्रकार की भाषा को दबाया न जाए, हालाँकि स्कूली व्यवस्था एक प्रमुख भाषा को स्थान देती थी। स्थानीय भाषा में कहानियाँ लिखी गईं; शब्द-सूची और शब्द चित्र-कार्ड बनाए गए, ध्वनि सम्बन्धी जागरूकता की गतिविधियों के लिए स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया और शिक्षक व विद्यार्थी दोनों को मौखिक या पाठ-आधारित गतिविधियों से सम्बन्धित चर्चाओं में अधिकाधिक भागीदारी के लिए स्थानीय भाषा का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। बच्चों के विविध भाषाई अनुभवों का उपयोग साक्षरता कक्षा के एक आवश्यक घटक के रूप में किया गया था।

अल्फा सिलेबरीज़ (alfa syllabaries) या आबूगीदा में ध्वनि-प्रतीक इकाइयों का सम्बन्ध कमोबेश सुसंगत है। उदाहरण के लिए, देवनागरी लिपि में सभी शब्दों में 'क' अक्षर की ध्वनि हमेशा /क/ होगी, जैसे कमल, चकमा, महक आदि। लेकिन अँग्रेज़ी में ऐसा नहीं है, इसमें 't' अक्षर की ध्वनि एक ही शब्द में भी अलग हो सकती है, जैसे 'station' आदि।

किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि अक्षरों को सिखाना आसान है। हालाँकि अक्षरों का भाषाओं में एक पैटर्न है लेकिन उसमें 400 से अधिक संयोजन हैं और बच्चों को इन्हें लगभग तुरन्त ही डीकोड (decode) करना पड़ता है, साथ ही, विभिन्न सन्दर्भों में दृश्य-प्रतीक बदलता है। उदाहरण के लिए 'ई' को ईख में एक अक्षर की तरह और 'की' में स्वर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है; अक्षर 'त' बदलकर 'त्य' या 'स्त्री' के रूप में भी लिखा जाता है। इससे हमारे कक्षा-अभ्यास के लिए भी यह समझ बनती है :

- केवल पूरी इकाइयों को पढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं होता। अक्षरों के शिक्षण को इस तरह से डिज़ाइन करना चाहिए कि बच्चे को विभिन्न प्रकार के समृद्ध पाठ्यों के विभिन्न शब्दों में अक्षरों के कई संयोजन देखने को मिलें। इसलिए विविध प्रकार का अच्छा साहित्य सभी प्राथमिक कक्षाओं के लिए ज़रूरी है।



- अक्षरों का शिक्षण जल्दबाज़ी में नहीं करना चाहिए, शुरुआती कुछ महीनों में पूरे अनुक्रम को पढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और बाद में शब्दों और वाक्यों को पढ़ना सिखाना चाहिए। स्कूली शिक्षा के शुरुआती वर्षों में लिपि को योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीक़े से पढ़ाना चाहिए।
- अक्षरों को पारम्परिक वर्णमाला क्रम में ही पढ़ाया जाना ज़रूरी नहीं है। उन्हें समूहों में विभाजित किया जा सकता है और फिर डीकोडेबल्स (decodables) या सिखाए गए अक्षरों का उपयोग करके सरल पाठ्य बनाए जा सकते हैं ताकि बच्चे उन शब्दों/वाक्यों को पहचानने, मिलाने और पढ़ने में सक्षम हो सकें भले ही वे सभी अक्षर उन्हें न पढ़ाए गए हों।

पायल की बुआ मायापुर में रहती हैं। एक दिन पायल उनके पास मायापुर गई। पायल बस से उतरी तो बुआ नहीं थी। पायल को लगा वे गुम हो गई हैं और वह रोने लगी। ऐसे में पायल को युगल मिल गया। युगल ने उससे कहा, रोओ मत, नीलम बुआ पास ही रहती हैं। अहा! युगल बुआ को जानता है, पायल हैरान रह गई।

पढ़ने के पाँच प्रमुख घटक

डीकोडेबल्स बच्चे को सार्थक सन्दर्भ और पढ़ने के अभ्यास के अवसर देते हैं, जिससे समझ के साथ प्रवाह को विकसित करने में मदद मिलती है। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय शोध से पता चलता है कि पाँच प्रमुख घटकों पर ध्यान केन्द्रित करने से बच्चों के पढ़ने में सुधार होता है। इसलिए पढ़ने की क्षमताओं को प्रभावी बनाने के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि कक्षा-शिक्षण को इस प्रकार से डिज़ाइन किया जाए कि रोज़मर्रा के शिक्षण में, निम्नलिखित तत्वों पर ध्यान दिया जा सके।

1. *स्वर-विज्ञान सम्बन्धी जागरूकता (Phonological awareness)*

   स्वर-विज्ञान में किसी भी बोले गए शब्द की ध्वनि-संरचना के बारे में बताया जाता है, अर्थात यह समझना कि किताब शब्द में तीन ध्वनियाँ हैं /कि/ /ता/ और /ब/; महक की पहली ध्वनि /म/ है आदि।

2. *ध्वनि-विज्ञान (Phonics)*

   शब्दों को डीकोड करने के लिए ध्वनि-प्रतीक सम्बन्धों का उपयोग, अर्थात, यह समझना कि ध्वनि /क/ को 'क' के रूप में लिखा जाता है; जब हम /नी/ /ला/ ध्वनियों को जोड़ते हैं तो हमें एक शब्द मिलता है जिसे 'नीला' के रूप में लिखा जा सकता है।

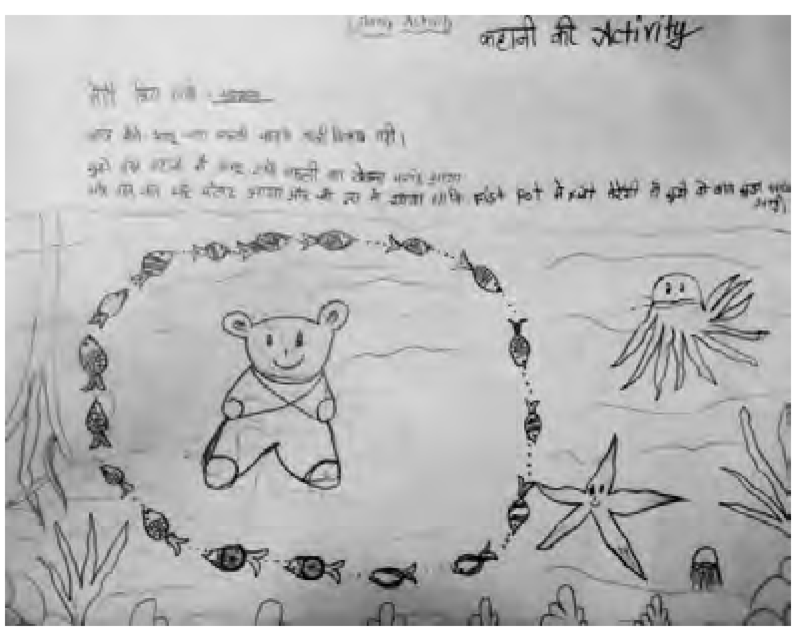
3. *शब्द-भण्डार*

   शब्द का उसके अर्थ के साथ ज्ञान। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों में लाल शब्द के अलग-अलग अर्थ हैं :

   यह कपड़ा लाल है।
   उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया।
   माँ ने कहा "यह तो मेरा लाल है!"
   कोई शब्द सही मायने में किसी बच्चे के शब्द-भण्डार का हिस्सा तब बनता है जब वह कई सन्दर्भों में, स्वतंत्र रूप से उसका उपयोग कर सके।

4. *प्रवाह*

   अर्थात हाव-भाव के साथ जल्दी और सही तरीक़े से पढ़ने की क्षमता। उदाहरण के लिए 'कमला बाज़ार गई' है — इस वाक्य को एक बार में पढ़ना न कि इसे क, म, ला = कमला बा, ज़ा, र = बाज़ार – इस तरह से उसकी घटक ध्वनियों में तोड़कर या हिज्जे करके पढ़ना।



5. *बोध*

दिए गए पाठ्य के अर्थ के निर्माण के लिए उसे समझना; अर्थात, शब्दों के भीतर छिपी हुई बारीक़ियों, सम्भावित अलग-अलग अर्थों को समझना और पाठ से परे जाने में सक्षम होना।

इस बात को मानना होगा कि पढ़ना और लिखना एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। पढ़ने से लेखन में सुधार होता है जबकि लेखन करने से, जो पढ़ा गया है वह मज़बूत होता है। स्वतंत्र पाठक बनने के लिए बच्चों को स्वतंत्र लेखक भी बनना चाहिए। इसलिए कक्षा की गतिविधियों को इस तरह से डिज़ाइन किया जाना चाहिए कि बच्चों को पाठ्य पढ़ने और उसपर मौखिक एवं लिखित दोनों ही तरीक़ों से अपने विचार व्यक्त करने के अवसर मिलें, ताकि उनकी समझ को और मज़बूत किया जा सके और गहन बोध विकसित हो सके।

पढ़ने की गतिविधियाँ

पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में बच्चों को सार्थकता और आनन्द देने के लिए यह ज़रूरी है कि उन्हें उपयुक्त बाल-साहित्य के सम्पर्क में लाया जाए और स्कूल, घर और समुदाय में पढ़ने की संस्कृति का विकास किया जाए। इसे सुनिश्चित करने के लिए स्कूल/कक्षा-पुस्तकालयों की स्थापना करनी चाहिए और पढ़ने से सम्बन्धित प्रभावी गतिविधियाँ करवाई जानी चाहिए। निम्नलिखित पठन-गतिविधियों को पुस्तकालयों/कक्षाओं में करवाया जा सकता है :

- ज़ोर से पढ़ना जिसमें शिक्षक कहानी पढ़ते हैं और कहानी को पढ़ने से पहले, कहानी पढ़ने के दौरान और कहानी पढ़ने के बाद की चर्चाओं में भाग लेने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करते हैं।
- साझा पठन जिसमें शिक्षक और बच्चे एक साथ बैठते हैं और एक पाठ्य पढ़ते हैं। इससे बच्चों को यह समझने में मदद मिलती है कि कुछ शब्द कैसे पढ़े जाते हैं और उन्हें अपेक्षित अभ्यास मिलता है।
- जोड़े में पठन जिसमें दो बच्चे जोड़े बनाकर पठन-अभ्यास में एक-दूसरे की मदद करते हैं।
- स्वतंत्र पठन जिसमें बच्चों को उनके पढ़ने के स्तर के अनुसार स्वतंत्र रूप से पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

'पढ़े भारत, बढ़े भारत' पर केन्द्र सरकार के हाल ही में दिए गए मार्गदर्शन में इस बात की सिफ़ारिश की गई है कि भाषा-शिक्षण के लिए प्रतिदिन 150 मिनट का समय दिया जाए। इसमें प्रथम एवं द्वितीय भाषा का शिक्षण तथा कम से कम 30 मिनट का स्वतंत्र पठन शामिल हो। स्वतंत्र पठन को केवल समय बिताने के शग़ल के रूप में नहीं लेना चाहिए, बल्कि इसे तो प्राथमिक कक्षाओं में एक अनिवार्य गतिविधि के रूप में देखना चाहिए।

रूम टू रीड का दीर्घकालिक विज़न यह है कि एक स्वतंत्र पाठक बनने में बच्चों की मदद की जाए और इस प्रकार उन्हें आजीवन सीखने के लिए सशक्त बनाया जाए, जो 2030 तक सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सतत विकास लक्ष्य (sustainable development goal) के अनुरूप है। अब समय आ गया है कि इसे प्राप्त करने के लिए हम प्रारम्भिक कक्षाओं के हस्तक्षेप के ऐसे प्रयासों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें जो सुविज्ञ हों, भली-भाँति डिज़ाइन किए गए हों और विस्तारणीय होने के साथ-साथ टिकाऊ भी हों। इस बात के मद्देनज़र कि पढ़ना, अकादमिक शिक्षा की नींव है और पढ़ने के स्तर का कमज़ोर होना (low learning level), अधिगम के लिए अहितकर है, सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के सामने इस बात को सुनिश्चित करने की चुनौती है कि बच्चे धाराप्रवाह रूप से और समझ के साथ पढ़ें।



सक्तिब्रता सेन रूम टू रीड इण्डिया के कार्यक्रम निदेशक हैं। वे इस संगठन में साक्षरता एवं बालिका शिक्षा कार्यक्रम तथा RM&E विभाग का नेतृत्व करते हैं। साक्षरता कार्यक्रम बच्चों में साक्षरता कौशल और पढ़ने की आदतें विकसित करता है। बालिका शिक्षा कार्यक्रम लड़कियों को माध्यमिक स्कूल की शिक्षा पूरी करने में मदद करता है और उनकी शिक्षा की वकालत के लिए सरकारी हितधारकों के साथ मिल कर काम करता है। सक्तिब्रता, बड़े पैमाने पर गुणवत्ता सुनिश्चित करने वाले कार्यक्रमों को डिज़ाइन करने में विशेषज्ञता रखते हैं। उन्हें भारतीय लिपियों और भाषाओं पर किए गए काम के लिए जाना जाता है। बच्चों के साहित्य को कक्षा में लाने में उनकी गहरी रुचि है। वे युवाओं के साथ और उनके हित के लिए काम करना पसन्द करते हैं। उनसे saktibrata.sen@roomtoread.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।



निधि विनायक रूम टू रीड इण्डिया के इंस्ट्रक्शन डिज़ाइन एण्ड टीचर सपोर्ट (IDTS) में सीनियर मैनेजर हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है और पिछले 15 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं। उन्होंने प्रारम्भिक कक्षाओं में साक्षरता, शिक्षक-समर्थन प्रणाली और शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों की गुणवत्ता में बदलाव आदि विषयों पर सरकारी एजेंसियों और विभिन्न संगठनों के साथ परामर्शदाता के रूप में कार्य किया है। उन्होंने शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी अनेक कोर्स बनाए हैं और वे कक्षाओं में शोध-आधारित गुणवत्तापूर्ण हस्तक्षेप में रुचि रखती हैं। उनसे nidhi.vinayak@roomtoread.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

आदिवासी बच्चों के लिए बहुभाषी शिक्षा | वसन्तशाला से प्राप्त सबक

संध्या गज्जर और सोनल बक्षी

भाषा अनुसन्धान और प्रकाशन केन्द्र, वडोदरा की स्थापना 1996 में पद्मश्री डॉ. गणेश देवी द्वारा की गई थी। उन्होंने एमएस यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा में अँग्रेज़ी साहित्य के प्रोफ़ेसर पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली क्योंकि वे लुप्तप्राय या मृतप्राय भाषाओं को लेकर चिन्तित थे और तत्सम्बन्धी शोध को आगे बढ़ाना चाहते थे। अपने शोध के क्रम में उन्होंने पाया कि जिन भाषाओं के लुप्त होने की सम्भावना सबसे अधिक थी उनमें से अधिकांश आदिवासी और खानाबदोश समुदायों की थीं। कई महत्त्वपूर्ण कारणों में से एक कारण यह था कि इन भाषाओं की लिपि नहीं थी और वे ज़्यादातर केवल मौखिक रूप में ही मौजूद थीं।

यह सर्वविदित है कि आदिवासी सन्दर्भों में सामाजिक संकेतक एक निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि शिक्षा, आदिवासी समूहों के सन्दर्भ और सामाजिक वास्तविकता का हिस्सा कभी नहीं रही और इस कारण यह उनके लिए अवास्तविक और अप्रासंगिक हो गई। जैसा कि बताया जाता है, अन्य सुविधावंचित वातावरण में शिक्षकों का बच्चों के साथ उतना जुड़ाव नहीं होता है और आदिवासी वातावरण में तो यह दूरी और भी बढ़ जाती है। यह सर्वविदित है कि इन खाइयों को पाटने के लिए शिक्षक-समुदाय के गहन जुड़ाव और मातृभाषा व प्रथम भाषा पर आधारित शिक्षा पर अधिक ज़ोर देने की आवश्यकता है।

चुनौतियाँ

चूँकि भारतीय राज्यों को भाषाई आधार पर विभाजित किया गया है और गाँव के सरकारी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम राज्य भाषा होती है, इसलिए यही नियम आदिवासी गाँवों के स्कूलों पर भी लागू होता है। इन स्कूलों में शिक्षकों की नियुक्ति एक केन्द्रीकृत प्रक्रिया है और इसके परिणामस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों से बहुत दूर के ज़िलों के ग़ैर-आदिवासी शिक्षकों को, आदिवासी स्कूलों में तैनात किया जा सकता है। इसलिए काग़ज़ों में यह मामला भले ही सरल और स्पष्ट लगता हो, लेकिन कक्षा में यह अत्यधिक जटिल हो जाता है।

1. आमतौर पर ग्रामीण बच्चे लगभग 6 साल की उम्र में सीधे पहली कक्षा में जाते हैं। उन्हें शहरी स्कूलों के नर्सरी-जूनियर-सीनियर किंडरगार्टन वर्षों की अर्ध-औपचारिक सुरक्षात्मक/तैयारी का कोई अनुभव नहीं मिल पाता। कई ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्व-प्राथमिक स्कूल के रूप में आँगनवाड़ियाँ/बालवाड़ियाँ हैं और पूर्व-प्राथमिक स्कूल शिक्षा में कई शिक्षक और समूह कार्यरत हैं जो शिक्षणशास्त्र और प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ईसीई) में इन्हें सशक्त बनाने की कोशिश कर रहे हैं, फिर भी पहली कक्षा के पाठ्यक्रम के लिए बच्चे को तैयार करने में भारतीय गाँवों के सैकड़ों आँगनवाड़ियों/बालवाड़ियों का योगदान और प्रभाविता स्थापित नहीं हो पाई है।
2. प्रत्येक राज्य के बोर्ड के पाठ्यक्रम के अनुसार, कक्षा 1 में बच्चे से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्ण वाक्य पढ़ने और लिखने में सक्षम हो और एक अंकीय जोड़/घटाव कर सके। यदि कक्षा के अधिकांश बच्चों ने कभी ऐसा न किया हो या वे ऐसा न कर सकते हों तो शिक्षक के लिए यह बात एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आती है।
3. यह स्थिति तब और भी कठिन हो जाती है जब शिक्षक की भाषा (शिक्षण का माध्यम) और बच्चे की भाषा समान न हो। दोनों एक-दूसरे को समझ ही नहीं पाते।
4. कक्षा में जो कुछ हो रहा है, उसे न समझ पाने के कारण अधिकांश बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं और फ़िर उन्हें शायद ही कभी स्कूल में वापस लौटने का अवसर मिलता हो।

इस समस्या के समाधान के लिए तैयार किए गए साधनों में से एक यह था कि प्रत्येक आदिवासी भाषा के लिए सचित्र शब्दकोष डिज़ाइन किए जाएँ, जो 1200-1500 शब्दों का एक सरल-सा सचित्र अंकन है जिसे 6 वर्ष की आयु वाला (कक्षा 1 में प्रवेश की आयु) एक औसत बच्चा समझ लेता है। इसमें आदिवासी भाषा के प्रत्येक शब्द को एक चित्र के माध्यम से दिखाया जाता है और फिर उसका अनुवाद करके गुजराती/अँग्रेज़ी/हिन्दी भाषा में वह शब्द तथा उसका अर्थ भी प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षक, (ग़ैर-आदिवासी या वह व्यक्ति जो उस क्षेत्र की भाषा से अपरिचित है, जहाँ वह तैनात है) स्कूली क्षेत्र में प्रमुखता से बोली जाने वाली भाषा के सचित्र शब्दकोष का उपयोग कर सकता है और कक्षा में बच्चों के साथ संवाद करने के लिए उस भाषा का उपयोग कर सकता है। शब्दावली का प्रभावशाली तरीक़े से उपयोग करने में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए सरल एक दिवसीय कार्यशालाओं को डिज़ाइन किया गया है ताकि वे प्रचलित भाषा में, आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले शब्दों और वाक्यांशों को सीख सकें। गुजरात में हमारे कुछ शब्दकोषों का उपयोग सर्वशिक्षा

अभियान द्वारा किया जाता है; इन्हें उन क्षेत्रों के विद्यालयों के शिक्षकों को दिया जाता है जहाँ मुख्यतः आदिवासी भाषा बोली जाती है। अब तक हमने सोलह सचित्र शब्दकोष बनाए हैं- आदिवासी भाषाओं के लिए बारह और खानाबदोश भाषाओं के लिए पाँच।

वसन्तशाला मॉडल

भाषा[i] ने 2005 में आवासीय स्कूल कार्यक्रम, वसन्तशाला शुरू किया। इससे पहले हमने वडोदरा में बड़े निर्माण स्थलों पर भवन का निर्माण करने वाले मज़दूरों के बच्चों (ज़्यादातर छोटा उदयपुर क्षेत्र के आदिवासी परिवारों) के लिए ग़ैर-औपचारिक स्कूली शिक्षा का संचालन किया था। उसके बाद पंचमहल और छोटा उदयपुर तालुका / ज़िलों के गाँवों में स्कूल जाने वाले बच्चों के साथ कई वर्षों तक काम किया था। इस प्रकार हमें कई वर्षों का अनुभव भी हो चुका था। यह सीमित वर्ष की परियोजनाएँ थीं और जब वे समाप्त हो गईं तो विद्यार्थियों को फ़िर से उनके ही साधनों पर छोड़ दिया गया। हमने महसूस किया कि काम का यह तरीक़ा बच्चों के लिए बहुत अनुचित था और इसलिए हमने ख़ुद एक स्कूली शिक्षा-कार्यक्रम चलाने का फ़ैसला किया।

इस प्रकार वसन्तशाला की संकल्पना की गई। हम बहुत ग़रीब और प्रवासी परिवारों से 6 से 12 वर्ष के ऐसे साठ लड़कों और लड़कियों को भर्ती करते हैं जो स्कूल नहीं जाते या जिन्हें स्कूल जाने का कोई मौका नहीं मिलता। पहले दो वर्षों में हमने देखा कि यह बच्चे आमतौर पर राठवा, डूंगरा भीली, तड़वी और भीली आदिवासी समुदायों के थे। प्रत्येक समुदाय की अपनी भाषा है जिसे यह बच्चे बोलते थे। उन्हें राज्य की भाषा गुजराती भी ज़्यादा नहीं आती थी। वे सिवाय अपनी भाषा के अन्य तीन आदिवासी भाषाओं में से शायद ही किसी भाषा को समझ पाते थे। इसलिए हमारे पास भले ही सिर्फ़ साठ बच्चे थे लेकिन भाषाओं का एक जटिल मिश्रण था। जिन आदिवासी शिक्षकों के साथ हमने काम किया, वे कुछ शिक्षित तो थे, लेकिन उनकी मुख्य योग्यता थी विद्यार्थियों द्वारा बोली जाने वाली सभी भाषाओं को सीखने की उनकी इच्छा और क्षमता। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण था उनका शिक्षण के प्रति लगाव, कक्षा में सफलता के साथ अपना कार्य कर पाने की उनकी क्षमता और बच्चों के लिए उनका प्रेम।

वसन्तशाला का शिक्षणशास्त्र

शैक्षिक वर्ष की शुरुआत में (अब नए सरकारी नियमों के अनुसार, वर्ष 2020 से अप्रैल में) सभी नव-प्रवेशित बच्चों का उनके अधिगम के स्तर, सिखाई हुई बातों को समझने की क्षमता, अभिक्षमता, सामाजीकरण के पैटर्न और किसी विशेष प्रतिभा के आधार पर आकलन किया जाता है क्योंकि हो सकता है कि उनमें से कुछ पहले भी स्कूल गए हों। उनके अधिगम के स्तर और क्षमताओं के आकलन के विश्लेषण के आधार पर शिक्षक प्रत्येक बच्चे के आयु-उपयुक्त शिक्षण स्तर का निर्धारण करते हैं और उन्हें सीखने के पाँच समूहों में विभाजित करते हैं :

क) जागृति : ग्रेड 1 और 2

ख) प्रकृति : ग्रेड 3 और 4

ग) संस्कृति : ग्रेड 5

घ) स्वकृति : ग्रेड 6

ङ) प्रगति : ग्रेड 7

लेकिन बच्चा किसी विषय-विशेष में अपनी क्षमता के अनुसार एक या एक से अधिक समूहों में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र होता है। आकलन एक सतत प्रक्रिया है। वैसे औपचारिक जाँच-परीक्षाएँ हर तीन महीने में आयोजित की जाती हैं और शिक्षक अवलोकन, कक्षा-कार्य एवं भागीदारी आदि के माध्यम से बच्चों की प्रगति पर नज़र रखते हैं। हमने पाया है कि अधिकांश आदिवासी बच्चे अकादमिक बातें बहुत जल्दी सीख जाते हैं और साथ ही उनमें व्यावहारिक समझदारी भी काफ़ी होती है जो लोगों के साथ सामान्य अन्तःक्रिया करने में उनकी मदद करती है।

वसन्तशाला में शैक्षिक विषय और विषयवस्तु गुजरात बोर्ड के पाठ्यक्रम के समान ही हैं। यहाँ पर एक प्रशिक्षु इस बात से बहुत प्रभावित था कि जिस कक्षा का वह अवलोकन कर रहा था उसमें शिक्षक ने ऐसे विद्यार्थियों को नगरपालिका के विचार को बहुत अच्छी तरह से समझाया जिन्हें लोक-प्रशासन में सरपंच से ऊपर के पदों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। क्या बच्चे समझ गए? हाँ, अवश्य, उनमें से बहुत से बच्चों ने सवाल पूछे और उनके सवालों के जवाब देने से शिक्षक को अवधारणा को और भी स्पष्ट रूप से समझाने में मदद मिली।

हालाँकि कक्षाएँ तुरन्त शुरू हो जाती हैं लेकिन बच्चों को शुरुआती हफ़्तों में इस बात के लिए समय दिया जाता है कि वे नए परिवेश के साथ तालमेल बिठाएँ, दोस्त बनाएँ, कक्षा में पढ़ाई के लिए वापस आएँ, अपने शिक्षकों को बेहतर तरीक़े से जानें और अकादमी में दूसरों के साथ परिचित हों। आमतौर पर अगस्त-सितम्बर तक एक नया बैच स्कूल के वातावरण से परिचित हो जाता है और तब शिक्षक और बच्चे अपना ध्यान पूरी तरह से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में लगाते हैं। इसलिए इन छह महीनों के दौरान अधिक गहन कक्षा कार्य होता है। अधिगम प्रक्रिया के पूरक के रूप में पाठ्येतर गतिविधियों को भी डिज़ाइन किया गया है।

[i]भाषा रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन सेंटर की स्थापना 1996 में भारत में आदिवासी समुदायों को 'आवाज़' देने के उद्देश्य से की गई थी। भाषा के द्वारा आदिवासी अकादमी की स्थापना गुजरात के छोटा उदयपुर जिले के तेजगढ़ में की गई है।

चूँकि बच्चे तीन या चार भाषा समुदायों (राठवी, भीली, चौधरी,तड़वी) के हैं, इसलिए शुरुआती महीनों में बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है। वसन्तशाला की यह प्रथा है कि कक्षा में और उसके बाहर भी शिक्षकों और अन्य बच्चों के साथ बातचीत करते समय, खेलते समय और अन्य पाठ्येतर गतिविधियों के दौरान उन्हें अपनी मातृभाषा में बोलने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया जाता है। जब अन्य बच्चे और शिक्षक इन भाषाओं को सुनते हैं तो धीरे-धीरे अन्य लोग भी उनका उपयोग करना शुरू कर देते हैं। शिक्षक उनका उपयोग भाषा सहित अन्य सभी विषयों के लिए करते हैं। यह प्रक्रिया बच्चे को अपनी भाषा पर गर्व महसूस करने में मदद करती है और वे आत्मविश्वास के साथ उसका उपयोग करते हैं। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस विधि के कारण जैसे-जैसे बच्चे की समझ बढ़ती है, वैसे-वैसे उसे अपने अध्ययन - पढ़ाई-लिखाई में रुचि बढ़ाने में भी मदद मिलती है।

एक बार जब कोई बच्चा अपनी मातृभाषा में बुनियादी साक्षरता हासिल करना शुरू कर देता है तो उसे गुजराती और धीरे-धीरे हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेज़ी भाषा के सम्पर्क में लाया जाता है और हाँ, कक्षा द्वारा बोली जाने वाली आदिवासी भाषाओं का प्रयोग तो निश्चित रूप से होता ही है। यह बात वसन्तशाला को वास्तव में बहुभाषी बनाती है। पिछले दो वर्षों से जर्मनी के, गैप-इयर के दो विद्यार्थी, प्रशिक्षु के रूप में वसन्तशाला में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और बच्चों ने उन्हें गुजराती सिखाते समय कुछ जर्मन वाक्यांशों और गीतों को सीख लिया है।

अधिगम की खाई को पाटना

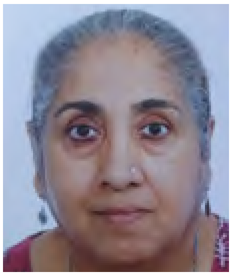
सितम्बर और मार्च के बीच, शिक्षक उन बच्चों के अधिगम की खाई को पाटने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जिन्हें नियमित स्कूलों की मुख्यधारा में लाना हो क्योंकि तब तक उनकी उम्र मुख्यधारा के स्कूल के उपयुक्त हो गई होती है। सरकारी आवासीय विद्यालयों में उनकी क्षमताओं के अनुसार उन्हें कक्षा 5 या 6 में दाख़िला लेने के लिए तैयार किया जाता है ताकि वे अपनी स्कूली शिक्षा सफलतापूर्वक पूरी कर सकें। इन स्कूलों का चयन बच्चे की योग्यता और स्कूल की बच्चे के परिवार के गाँव से निकटता के आधार पर किया जाता है। हर साल औसतन 30 बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करवाया जाता है और अधिकांश बच्चे दसवीं कक्षा की परीक्षाओं में सफल होते हैं।

वार्षिक-योजना का एक नमूना

वसन्तशाला कार्यक्रम वर्ष में लगभग 300 दिनों तक विद्यार्थियों के साथ कार्य करता है। यहाँ वार्षिक-योजना (जून 2016 से अप्रैल 2017) का एक नमूना प्रस्तुत है :

माह	गतिविधियाँ
जून	वसन्तशाला के मौजूदा विद्यार्थियों का आगमन। यह सुनिश्चित करना कि पिछले शैक्षिक वर्ष में मुख्यधारा में लाए गए विद्यार्थी अपने नए स्कूलों में अच्छी तरह से समायोजित हो गए हैं। नए विद्यार्थियों की पहचान और भर्ती। शिक्षण और सभी पाठ्येतर गतिविधियाँ शुरू करना। पुस्तकों और स्टेशनरी को व्यवस्थित करना। एक जोड़ी नए कपड़े और सैंडल के लिए बच्चों का नाप लेना। पहला सत्र मुख्यतः कक्षा-शिक्षण पर केन्द्रित होता है क्योंकि बारिश के कारण बाहरी गतिविधियाँ नहीं करवाई जा सकतीं।
जुलाई	शिक्षण और गतिविधियाँ जारी रहती हैं। नए बच्चों की समायोजन में मदद की जाती है।
अगस्त - सितम्बर	शिक्षण और गतिविधियाँ जारी रहती हैं। त्यौहार मनाए जाते हैं। नवरात्रि / दशहरे की छुट्टियाँ का अवकाश।
अक्टूबर	अनौपचारिक मध्यावधि परीक्षा का आयोजन।
अक्टूबर-नवम्बर	27 अक्टूबर से 9 नवम्बर तक दीवाली का अवकाश।
नवम्बर	दूसरे सत्र में अनेक बाहरी गतिविधियाँ करवाई जाती हैं। परिसर में अधिक आगन्तुक दिखाई देते हैं और बहुत सारी अकादमिक गतिविधियाँ करवाई जाती हैं जिनमें से कुछ में बच्चे भाग लेते हैं। 19 से 25 नवम्बर के मध्य 'वृक्षारोपण सप्ताह' मनाया गया, उस दौरान बच्चों को कृषि और बागवानी से परिचित करवाया गया। बच्चों ने बगीचे के लिए अपनी ख़ुद की ज़मीन को चुना और मेथी, धनिया, पालक, चना और बैंगन जैसी मौसमी सब्ज़ियाँ बोईं।

माह	गतिविधियाँ
	वसन्तशाला में अपने प्रवास के दौरान बच्चे ही बगीचे की देखरेख करते हैं। बच्चों के पिछले बैच ने वर्मीकम्पोस्ट भी तैयार किया था। बागवानी बच्चों को प्रकृति, भूमि और कृषि के सम्पर्क में रखती है और उन्हें इससे सीख लेते हुए केन्द्र में अपना योगदान करने का अवसर प्रदान करती है। अकादमी की अपनी कैंटीन है जहाँ हम अपनी उगाई हुई चीज़ों का उपयोग करते हैं। बच्चों को खाना पकाने से सम्बन्धित सरल कार्यों को सीखने के लिए कुछ समय कैंटीन में बिताने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। इससे टीम में कार्य करने और जीवन-कौशल को विकसित करने में मदद मिलती है। वसंतशाला के शिक्षक हर सोमवार को आयोजित होने वाले हाट बाज़ार का दौरा करवाने के लिए 28 नवम्बर को बच्चों को तेजगढ़ ले गए। यह एक साप्ताहिक बाज़ार है। यहाँ समुदाय के लोग घर-गृहस्थी, कृषि, पशुपालन आदि से सम्बन्धित दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को खरीदने और बेचने के लिए आते हैं। हाट एक सामाजिक स्थान भी है, जहाँ आसपास के गाँवों के लोग मिलते हैं, शादी-ब्याह के लिए रिश्तों के सुझाव आदि पर चर्चा करते हैं, विशेष अवसरों के लिए निमन्त्रण देते हैं, मवेशियों को बेचते हैं आदि। बच्चों को हाट में इसलिए ले जाया गया ताकि वे गाँव की अर्थव्यवस्था और सामाजिक रिश्तों को निभाने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझ सकें।
दिसम्बर-जनवरी	वसन्तशाला के शिक्षक सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम को पारम्परिक गीतों, कहानियों, नृत्य, संगीत और समुदायों की कला के साथ जोड़ते हैं। चूँकि कई शोधकर्ता, विद्वान और विद्यार्थी आदिवासी अकादमी में पूरे वर्ष भर आते-जाते रहते हैं, इसलिए बच्चों को उनसे बातचीत करने के अवसर मिलते हैं। इससे वे विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के सम्पर्क में आते हैं और व्यापक दुनिया के साथ घुलने-मिलने से उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। आदिवासी अकादमी समय-समय पर संगीत और कला कार्यशालाओं का आयोजन करती है। बच्चों को इसमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस वर्ष बच्चों ने आदिवासी अकादमी में भाषा केन्द्र द्वारा आयोजित एवं तेल और प्राकृतिक गैस निगम द्वारा समर्थित एक सप्ताह (10 से 17 दिसंबर 2016) की कला कार्यशाला में भाग लिया। भाषा केन्द्र ने तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान के आदिवासी कलाकारों को आमन्त्रित किया था। बच्चों ने चित्रकला, टेराकोटा कुम्हारी कला और मनके के आभूषण बनाना सीखने के लिए अपनी कक्षा के बाद कलाकारों के साथ समय बिताया। अपनी कला सिखाने के लिए कलाकारों ने अपने काम के बाद बच्चों के लिए विशेष सत्र आयोजित किए। इस कार्यशाला ने भारत के अन्य क्षेत्रों में प्रचलित आदिवासी कलाओं से बच्चों को परिचित कराया। इस तरह के आयोजनों से भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के प्रति जागरूकता और सम्मान भी बढ़ता है। कार्यशाला के दौरान कलाकारों ने विशेष रचनात्मकता वाले चार बच्चों को पहचाना जिनकी प्रतिभा का पोषण किया जाना चाहिए।
फरवरी	वन-भोजन अर्थात पास के स्थान पर एक दिन की पिकनिक का आयोजन किया जाता है। कुछ बड़े बच्चे अपने शिक्षकों और अकादमी के अन्य लोगों के साथ वडोदरा मैराथन की 5 किलोमीटर की दौड़ में भाग लेने के लिए वडोदरा जाते हैं। वे अपने साथ शिक्षा के महत्त्व, भाषाई विविधता और आदिवासी अधिकारों से सम्बन्धित पोस्टर ले जाते हैं।
मार्च-अप्रैल	आदिवासी समुदायों के लिए होली एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण त्योहार है। वसन्तशाला में बच्चों को घर जाकर अपने परिवारों के साथ होली मनाने के लिए छुट्टी दी जाती है। फिर गर्मियों की शुरुआत होती है और सारा ध्यान पढ़ाई और उन बच्चों की तैयारी पर दिया जाता है जिन्हें परीक्षा के लिए नियमित स्कूलों में मुख्यधारा में लाया जाना है।



संध्या गज्जर ने एमएस यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा में अँग्रेज़ी साहित्य, भाषा विज्ञान और कला इतिहास का अध्ययन किया। कई वर्षों से वे विकास, लोकप्रिय विज्ञान और संस्कृति से सम्बन्धित मुद्दों पर समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन कर रही हैं। वे भाषा अनुसन्धान और प्रकाशन केन्द्र के संस्थापक ट्रस्टियों में से एक हैं और 2015 से इसकी प्रभारी प्रबन्ध न्यासी हैं। वे नवरचना एजुकेशन सोसाइटी (1965 में स्थापित) में एक ट्रस्टी और कार्यकारी समिति की सक्रिय सदस्य भी हैं, जो वडोदरा में चार स्कूलों और एक विश्वविद्यालय का प्रबन्धन करती हैं। उनसे sandhyagajjar@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।



सोनल बक्षी सामाजिक विज्ञान में डॉक्टरेट हैं। उन्होंने आदिवासी, विमुक्त और घुमन्तू समुदायों के साथ काम किया है। वे साहित्यिक पृष्ठभूमि रखती हैं। उनके अनुभवों में शामिल हैं शिक्षा, कला व संस्कृति, मानव अधिकार और विकास जैसे विविध क्षेत्रों में अनुसन्धान और ज़मीनी स्तर के हस्तक्षेप। वे अनुदान संचयन, परियोजना प्रबन्धन और प्रकाशन जैसे क्षेत्रों में भी विशेषज्ञता रखती हैं। उनसे sonal.bhasha@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

शैक्षिक नीतियाँ और अभ्यास | एक महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य

डॉ. सास्वती पाइक

यह सच है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं। सीखना किसी भी स्थान पर और किसी भी समय हो सकता है। कई कारणों से बच्चों के सीखने के अवसर भिन्न होते हैं। ऐसे कई स्थान हैं जहाँ बच्चों को अधिगम के लिए सभी आधुनिक साधन उपलब्ध होते हैं और वे ऐसे स्कूलों में जा सकते हैं जो दिलचस्प तरीक़े से सिखाते हैं। लेकिन ऐसे स्थान भी हैं जहाँ बच्चों को परिस्थितियों की वजह से इस तरह की सुविधा नहीं मिल पाती है, ऐसे कई बच्चे पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले बच्चे हैं। उनके लिए स्कूल, कई मायनों में, सीखने में वाकई एक बड़ी भूमिका निभाता है। ऐसा ही एक क्षेत्र है राजस्थान के बाड़मेर ज़िले का शिव ब्लॉक, जहाँ तीन वर्षों तक एक शोध अध्ययन किया गया है। यह लेख मुख्य रूप से उस शोध पर आधारित है और निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालता है :

- परिस्थिति से जुड़े वे मुद्दे जो उस स्थान में बच्चों के अधिगम में अवरोध पैदा करते हैं, जहाँ निरक्षरता और सामाजिक विकास के मापदण्डों की स्थिति चिन्ताजनक है।
- वे प्रणालीगत मुद्दे जो उन बच्चों के लिए एक बड़ी बाधा हैं जो सीखने के लिए उत्सुक हैं, लेकिन उन्हें पर्याप्त अवसर नहीं मिलता और परिणामस्वरूप वे आने वाले कई दशकों तक पिछड़े ही रह जाते हैं।
- ऐसे बच्चों की शिक्षा में सुधार के लिए सरकार और/या अन्य एजेंसियों द्वारा प्राथमिकता दिए जाने वाले क्षेत्र।

वे परिस्थितियाँ जो बच्चों के सीखने में अवरोध पैदा करती हैं

यदि आप किसी स्कूल का दौरा करते हैं तो प्राथमिक कक्षाओं (कक्षा एक से आठवीं) में पढ़ने वाले बच्चे आपको कक्षा में 'कुछ' पढ़ाने के लिए कह सकते हैं, बावजूद इसके कि वे आपको नहीं जानते। इस बात का अनुभव मैंने राजस्थान के थार रेगिस्तान के किनारे स्थित शिव ब्लॉक के स्कूलों में बार-बार किया। यह स्कूल दूरदराज़ के गाँवों की बस्तियों (स्थानीय रूप से यह ढाणी के नाम से जानी जाती हैं) में हैं, जहाँ परिवहन और संचार की व्यवस्था ख़राब है, बिजली अक्सर कट जाती है या है ही नहीं, इंटरनेट अभी भी एक सपना है। इसके अलावा कई बच्चों के माता-पिता अनपढ़ हैं या बहुत कम पढ़े-लिखे हैं, कन्या भ्रूण हत्या और बाल विवाह आम बातें हैं, आँगनवाड़ियाँ शायद ही कार्य करती हैं और कोई पुस्तकालय नहीं है।

ऐसे में यह बच्चे किसी अजनबी से 'कुछ' पढ़ाने का अनुरोध क्यों करते हैं? इसका एक कारण यह है कि ऐसे कई स्कूलों की कक्षाओं में कोई शिक्षक नहीं होता। कभी-कभी तो पूरे दिन कक्षा में कोई शिक्षक नहीं होता है। यदि शिक्षक हों भी तो ज़रूरी नहीं कि स्कूल के घण्टों के दौरान वे केवल पढ़ाते ही हों। वे किसी अन्य कार्य में भी 'व्यस्त' हो सकते हैं। पूरे साल में जब लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रहती है तो बच्चों को स्कूल में सीखने का मौक़ा नहीं मिलता है। यदि कोई यह तर्क दे कि सीखना तो कहीं भी हो सकता है तो मैं निश्चित रूप से इससे सहमत हूँ, लेकिन औपचारिक शिक्षा स्थानों में प्रदर्शन (exposure) के माध्यम से सीखना इस स्थान की सन्दर्भ-विशिष्ट सीमाओं के कारण सन्दिग्ध बना हुआ है। घर पर औपचारिक शिक्षा के लिए माता-पिता का समर्थन लगभग शून्य होता है। अक्सर जो कुछ वे सीखते हैं, वह उनके समाज की पितृसत्तात्मक परम्पराओं तथा विश्वास प्रणालियों पर आधारित होता है। यह परम्पराएँ और विश्वास प्रणालियाँ लिंग भेदभाव, बाल विवाह जैसी प्रथाओं को विकसित करती हैं। इस ब्लॉक के अधिकांश गाँवों के लिए निकटतम सरकारी डिग्री कॉलेज पचास किलोमीटर से अधिक दूरी पर है, इसलिए बारहवीं कक्षा से आगे की शिक्षा अक्सर एक सपना बनकर रह जाती है।

राजस्थान में ज़िलों के मानव विकास सूचकांक (ह्युमन डेवलेपमेंट इंडेक्स – एचडीआई) के अनुसार, बाड़मेर में एचडीआई का मान सबसे कम यानी 0.4035 है जबकि जयपुर के एचडीआई का मान राज्य में सबसे ज़्यादा यानी 0.7308 है (सिंह और केशरी, 2016)। 2011 में बाड़मेर ज़िले में साक्षरता दर 56.5 प्रतिशत थी जबकि राज्य का औसत 66.1 प्रतिशत था। बाड़मेर में साक्षरता दर में लिंग अन्तर 30.3 प्रतिशत था। जैसा कि आप नीचे दी गई तालिका में देख सकते हैं, 2011 की जनगणना में बाड़मेर में वयस्क निरक्षरों के उच्च प्रतिशत का संकेत दिया गया, जो कि उनके परिवारों में बच्चों के सीखने के लिहाज़ से काफ़ी गम्भीर बात है।

नीतियों में देखे गए व्यवस्थागत मुद्दे

शैक्षिक शासन के तीन मुख्य स्तम्भ हैं : प्रावधान, विनियमन और निधीयन (फंडिंग)। भारत में शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है और इसलिए केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों को चाहिए कि ऐसे स्तम्भों को बनाए रखें। आइए, हम कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मापदण्डों पर ध्यान दें, जो कि बाड़मेर की तरह ही अन्य दूरस्थ

तालिका 1 : 2011 की जनगणना के अनुसार वयस्क निरक्षरता

क्षेत्र	आयु समूह	कुल	पुरुष	महिला
सभी क्षेत्र	15-34	35.89	18.93	55.83
	35+	70.99	53.91	88.67
ग्रामीण	15-34	37.68	19.88	58.69
	35+	74.23	57.34	91.63
शहरी	15-34	15.27	7.71	23.73
	35+	34.24	15.98	54.10

स्थानों में बच्चों और उनके अधिगम की भारी आवश्यकता को इंगित करते हैं। बाड़मेर का मामला कोई अलग मामला नहीं है। ऐसे स्थान कई राज्यों में हैं जहाँ बच्चे शासन की लापरवाही के शिकार हैं।

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 में विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात को 1:30 निर्धारित किया है, जो एक गणितीय गणना है। राजस्थान सहित कई राज्यों के शिक्षा विभागों ने सरकारी स्कूलों से सहायक कर्मचारियों को हटा दिया है। इस तरह के फ़ैसलों के बड़े निहितार्थ हैं। यदि एक स्कूल में 30 विद्यार्थी हैं तो स्कूल को केवल एक शिक्षक मिलता है, हालाँकि नामांकन में वृद्धि के साथ, उच्च अधिकारियों के अनुमोदन के अनुसार शिक्षकों की संख्या बढ़ सकती है। शिव के कई प्राथमिक स्कूलों में एक या ज़्यादा से ज़्यादा दो शिक्षक हैं। पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में अक्सर विषय-विशिष्ट शिक्षक नहीं होते हैं। ऐसे स्कूलों के बच्चे सीखने के लिए उत्सुक हैं, इसलिए वे हर उस अजनबी से पढ़ाने के लिए कहते हैं जो शिक्षित लगता है।

आइए, हम सरकार की दो धारणाओं को देखें :

एक तो यह कि शिक्षक तीस विद्यार्थियों, उनकी स्कूल सम्बन्धी गतिविधियों और विकास का ध्यान रख सकता है। और दूसरा यह कि चूँकि प्राथमिक विद्यालयों में कोई सहायक कर्मचारी नहीं है इसलिए शायद व्यवस्था यह चाहती है कि शिक्षक और विद्यार्थी रखरखाव की पूरी प्रक्रिया की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लें।

यदि हम इन धारणाओं का विश्लेषण करें तो यह अनुचित लगती हैं। कल्पना कीजिए कि आप एक प्राथमिक स्कूल में शिक्षक हैं और आपको तीस-चालीस बच्चों को पढ़ाना है जो विभिन्न कक्षाओं में हैं और हर बच्चे पर अलग तरह से ध्यान देने की ज़रूरत है। यदि शिक्षक उनके सीखने को सुगम बनाएँ तो वे सीख सकते हैं। ऐसी हालत में एक एकल शिक्षक के रूप में आप क्या करेंगे? आपको स्कूल के सभी रिकॉर्डों को बनाए रखना होगा, मिड डे मील का ध्यान रखना होगा और इसके लिए रसोइए के साथ समन्वय करना होगा और इन सबके साथ आपको एक बहुस्तरीय कक्षा को पढ़ाना भी होगा। इन सभी ज़िम्मेदारियों के चलते आप पूरे शैक्षिक वर्ष में क्या कुछ कर पाएँगे?

- यदि हम यह मानते हैं कि यह शिक्षक बहुस्तरीय कक्षा को पढ़ाने के योग्य हैं तो हमें उनकी शैक्षिक योग्यता और कार्य सम्बन्धी अनुभव को समझना होगा। सरकार की अपेक्षाओं के अनुसार, प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक (कक्षा चौथी तक पढ़ाने वाले) या तो स्नातक होते हैं (हालाँकि यह ज़रूरी नहीं कि उन्हें स्कूल के किसी विषय में विशेषज्ञता भी हासिल हो) या उन्होंने बारहवीं कक्षा के बाद शिक्षण में डिप्लोमा किया होता है। तो क्या वे अन्य प्रशासनिक ज़िम्मेदारियों का ख़याल रखते हुए बहुस्तरीय कक्षाओं को पढ़ाने के लिए पर्याप्त रूप से तैयार होते हैं?
- जब कोई सहायक स्टाफ़ न हो तो स्कूल परिसर का रखरखाव कौन करेगा? बेशक, शिक्षक और विद्यार्थी। इसका अर्थ है शौचालय, मिड डे मील की जगह, कक्षाओं, खेल के मैदान, शिक्षक के कमरे (यदि हों तो) इन सबका रखरखाव। ऐसी जगह पर अक्सर निचली जाति के बच्चों को सफ़ाई का काम सँभालना पड़ता है। क्या ऐसी अपेक्षाएँ वैध हैं?

माध्यमिक विद्यालयों के लिए विषय-विशिष्ट शिक्षकों की कमी के अलावा यह सभी मुद्दे भी प्रबल होते हैं।

पता नहीं क्यों इससे यह महसूस होता है कि यह सभी धारणाएँ सरकारी स्कूलों के बारे में विशिष्ट मानसिकता और समझ पर आधारित हैं। इससे कई लोगों को लगता है कि इन स्कूलों में केवल सुविधा वंचित बच्चे ही जाते हैं और इन्हें बेहतर बनाने का कोई भी प्रयास अनावश्यक है। कुछ दिन पहले ऐसे ही एक स्कूल में (जहाँ असाधारण रूप से चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों से आने वाले बच्चे पढ़ते थे) काम करने वाले एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, "मैडम, इन बच्चों को स्कूल जाने और खाना खाने का अवसर मिलता है, तो क्या इतना उनके लिए काफ़ी नहीं है? बदले में वे परिसर और शौचालयों की सफ़ाई क्यों नहीं कर सकते?" मुझसे यह तर्क हज़म नहीं हुआ। क्या शिक्षा के अधिकार के नाम पर बच्चों के साथ इस तरह से व्यवहार करने के लिए यह एक वैध कारण है? क्या नीति-निर्माता और उसे लागू करने वाले अपने बच्चों को बिना पर्याप्त शिक्षक और बिना किसी सहायक स्टाफ़ वाले किसी ऐसे स्कूल में भेजेंगे जहाँ उनके बच्चों को

अपना शौचालय, शिक्षकों का शौचालय, कक्षा, स्कूल परिसर और यहाँ तक कि मिड डे मील के बर्तन भी नियमित रूप से साफ़ करने पड़ें?

कार्यप्रणालियों में देखे गए व्यवस्थागत मुद्दे

हाल ही में (2019-20) समग्र शिक्षा की केन्द्र प्रायोजित योजना के तहत एक एकीकृत शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत हुई है, जिसे 'निष्ठा' (Integrated Teacher Training Programme called, NISHTHA) कहा जाता है। यह एक राष्ट्रीय मिशन है जिसे स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग द्वारा प्राथमिक स्तर पर अधिगम के परिणामों को बेहतर बनाने के लिए शुरू किया गया है। सरकारी पोर्टल बताता है कि यह 'एकीकृत शिक्षक-प्रशिक्षण के माध्यम से स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार' के लिए एक क्षमता-निर्माण कार्यक्रम है। 'निष्ठा' दुनिया में अपनी तरह का सबसे बड़ा शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य प्रारम्भिक स्तर पर सभी शिक्षकों और स्कूल के प्रधानाचार्यों में दक्षता का निर्माण करना है। इस विशाल प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहन व बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों को प्रेरित और तैयार करना है। यह अपने आप में इस तरह की प्रथम पहल है जिसमें सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मानकीकृत प्रशिक्षण मॉड्यूल विकसित किए गए हैं (www.india.gov.in)।

यह कार्यक्रम निश्चित रूप से शिक्षकों को एक-दूसरे के साथ मिलने-जुलने के लिए एक अच्छा मंच प्रदान कर सकता है। इसके मॉड्यूल अच्छी तरह से डिज़ाइन किए गए हैं और किए गए प्रयास साफ़ दिखाई दे रहे हैं। इस कार्यक्रम को 'अनुकूलित सोपान विधि' से संचालित करने का इरादा है, जिसमें राष्ट्रीय स्रोत समूह के विशेषज्ञ मुख्य स्रोत व्यक्ति (की-रिसोर्स पर्सन्स - केआरपी) को (राज्य/ केन्द्र शासित प्रदेश द्वारा आगे के शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए पहचाने गए) और राज्य स्रोत व्यक्ति (स्टेट रिसोर्स पर्सन्स – एसआरपी) को (स्कूल के प्रधानाचार्यों और अन्य अधिकारियों के आगे के प्रशिक्षण के लिए राज्य/ केन्द्र शासित प्रदेश द्वारा पहचाने गए) प्रशिक्षित करेंगे। यह केआरपी और एसआरपी प्रत्यक्ष रूप से शिक्षकों और स्कूल के प्रधानाचार्यों को प्रशिक्षित करेंगे' (itpd.ncert.gov.in)। यह कहा गया है कि इससे प्रक्रिया संचार में होने वाली हानि की मात्रा (जो पहले कई परतें होने के कारण अधिक मात्रा में होती थी) को कम करने में मदद मिलेगी। इन सभी वादों के बावजूद, कुछ मुद्दों को पहचानकर उनको उचित रूप से सम्बोधित करना आवश्यक है। इनपर नीचे चर्चा की गई है।

बड़ी संख्या दर्शाता हुआ बड़े पैमाने का लक्ष्य

सरकारी वेबसाइट का दावा है, 'प्राथमिक स्तर पर काम कर रहे सभी शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, ब्लॉक संसाधन समन्वयकों, संकुल संसाधन समन्वयकों को प्रशिक्षण में समाविष्ट किया जाएगा। यह प्रशिक्षण शिक्षार्थी केन्द्रित शिक्षण, अधिगम के परिणामों, बच्चों के सामाजिक और व्यक्तिगत गुणों में सुधार, स्कूल आधारित आकलन, नई पहलों, स्कूल सुरक्षा और विभिन्न विषयों के शिक्षण आदि से सम्बन्धित होगा।

अब तक किए गए वादे के अनुसार 42 लाख शिक्षकों की क्षमता निर्माण के लिए इतने सारे क्षेत्रों को कवर करना वास्तव में एक कठिन काम है। जब लक्ष्य बड़ा हो तो जवाबदेही के ढाँचे में भारी जटिलताओं के कारण उपलब्धि सन्दिग्ध बनी रहती है, कई हितधारकों की भागीदारी के कारण ऐसा और भी अधिक होता है। इसके अलावा, 'सबके लिए एक ही तरीक़ा सही है' वाला दृष्टिकोण समस्यात्मक है। बड़ी संख्या को लक्षित करने की बजाय चरण-दर-चरण जाना बेहतर हो सकता है। इसकी सफलता के लिए सावधानीपूर्वक प्राथमिकता तय करनी होगी। दूरदराज़ की जगहों पर स्थित स्कूलों, जिन्हें शायद ही कभी निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate social responsibility - CSR) या ग़ैर-सरकारी संगठनों का समर्थन मिल पाता हो, को इसके लिए प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसे स्कूल के शिक्षकों के लिए योजना को अलग तरह से बनाना चाहिए।

इसमें 'आस-पास की परिस्थितियों' की अवधारणा अनुपस्थित है

इस तरह के प्रशिक्षण अक्सर ग़ैर-सरकारी संगठनों के कर्मचारियों और शैक्षिक अधिकारियों की सुविधा के अनुसार किसी एक ख़ास स्थान पर आयोजित किए जाते हैं। हो सकता है कि कुछ शिक्षक स्कूली जीवन की रोज़मर्रा की कठिनाइयों से मिलने वाले इस आराम और राहत का स्वागत करें लेकिन कई, विशेषकर आत्मप्रेरित और वास्तव में प्रतिबद्ध शिक्षक इसे असुविधाजनक पाते हैं। इस तरह के प्रशिक्षणों के कारण शिक्षकगण एक वर्ष में कई हफ़्तों तक अपनी कक्षाओं में जाकर शिक्षण नहीं कर पाते। साथ ही सीखने के लिए उत्सुक बच्चे भी परेशान हो जाते हैं। प्रशिक्षण के आयोजकों को इस मुद्दे को समझना चाहिए।

'निष्ठा' प्रशिक्षण का एक मॉड्यूल महात्मा गांधी के भाषण को उद्धृत करता है, 'सच्ची शिक्षा आस-पास की परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए...।' इस विचार का अनुसरण करते हुए ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों को स्कूलों में ही आयोजित किया जाना चाहिए, जहाँ प्रशिक्षण कार्यक्रम के विशेषज्ञ कक्षाओं में विद्यार्थियों के साथ प्रदर्शन (डेमो) कक्षाएँ ले सकते हैं। साजो-सामान की बेहतर व्यवस्था के लिए चार या पाँच स्कूलों की पहचान की जा सकती है, और शिक्षक संकुल स्तर के किसी भी एक स्कूल में एक हफ़्ते के लिए एकत्र हो सकते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण का स्थान बारी-बारी से बदला जाएगा और प्रत्येक शिक्षक प्रत्येक चरण में अपने स्वयं के स्कूल में ही उचित डेमो कक्षाओं के साथ कम से कम एक दिन का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेगा। लेकिन ऐसा करने से पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए

कि एकल शिक्षक वाले स्कूलों को एक से अधिक शिक्षक प्रदान किए जाएँ ताकि उस शिक्षक के एक हफ़्ते के लिए प्रशिक्षण में जाने पर भी स्कूल सामान्य रूप से चलता रहे।

यह सुनिश्चित करना कि प्रशिक्षण का लाभ कक्षाओं तक पहुँचे

'निष्ठा' प्रशिक्षण का लक्ष्य शिक्षकों को चिन्तनशील बनाना है। इसलिए प्रशिक्षकों को मॉड्यूल के हस्तान्तरण के लिए भली प्रकार से लैस करना आवश्यक है। जिन शिक्षकों को कोई शिक्षण अनुभव नहीं है, या बहुत कम अनुभव है उनके लिए यह मॉड्यूल बहुत आसान नहीं हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण विज्ञान के मॉड्यूल से चिन्तन के लिए एक प्रश्न यहाँ प्रस्तुत है :

'एनसीईआरटी की पर्यावरण अध्ययन पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ऐसे कुछ अभ्यासों की पहचान करें जिनमें शिक्षकों को बच्चों के साथ कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों के बारे में जागरूकता विकसित करने और मुद्दों के प्रति उन्हें संवेदनशील बनाने के लिए चर्चा करने के लिए कहा गया है।'

अपेक्षा के अनुसार कक्षा में इसके हस्तान्तरण के लिए शिक्षक को भरपूर तैयारी करनी होगी। यहाँ शिक्षक का करिश्मा बहुत मुख्य भूमिका निभाता है। मॉड्यूल का उपयोग करने के लिए शिक्षकों को स्वत: सीखने का एक नियमित अभ्यास करना चाहिए। तभी इसका लाभ कक्षाओं तक पहुँच सकता है। क्या इसे शिव ब्लॉक जैसे दूरदराज़ के क्षेत्रों वाले स्कूलों में करना सम्भव है जहाँ शिक्षक नियमित रूप से पढ़ाने के अलावा और भी कई चीज़ों के साथ जूझते और उन्हें सँभालते हैं?

प्राथमिकता के लिए सुझाव

अगर देश के विकास के लिए मानव विकास के मापदण्डों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है तो बाड़मेर और वहाँ के शिव जैसे ब्लॉक, जो वाकई पिछड़े हुए हैं, पर सन्दर्भ विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार विकास परिदृश्य में सुधार के लिए विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए था। दुर्भाग्य से कई दशकों से इन जगहों पर उस तरह का ध्यान दिया ही नहीं गया है। ऐसे सन्दर्भ में, सीखने की आवश्यकता और इच्छा दोनों होने के बावजूद, बच्चे उससे वंचित हैं क्योंकि उनकी शिक्षा के लिए अवसर और स्थान उपलब्ध ही नहीं कराए गए हैं। इस क्षेत्र, जहाँ बच्चों को दैनिक जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, के विद्यार्थियों में भारी सम्भावनाएँ हैं। कुछ स्कूलों में बेहद प्रतिबद्ध शिक्षक भी हैं जो सभी बाधाओं के बावजूद अपने सीमित संसाधनों के साथ ही विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करने के लिए तैयार हैं। शिक्षकों के बीच में से ऐसे 'उत्साही' शिक्षकों को पहचानना और उन्हें विभिन्न तरीक़ों से उचित सम्मान देते हुए क्रियाशील मार्गदर्शक के रूप में उनके गुणवत्तापूर्ण नेतृत्व का उपयोग करना महत्त्वपूर्ण है। इससे निश्चित रूप से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ेगी और इन स्कूलों में कुछ बेहतरीन खेल हस्तियों, इंजीनियरों, सामाजिक वैज्ञानिकों, गीतकारों, डॉक्टरों और ऐसे कई अन्य पेशेवरों का निर्माण किया जा सकता है जिनसे हमारा देश गौरवान्वित हो। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार इन प्रावधानों पर विचार कर सकती है :

- इन स्कूलों के लिए सहायक स्टाफ़।
- विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात के अनुसार नहीं, बल्कि कक्षा की आवश्यकता के अनुसार हर स्कूल में शिक्षक।
- दूरदराज़ के क्षेत्रों में स्कूलों तक आने-जाने के लिए शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए परिवहन की सुविधाएँ।
- असम्बद्ध क्षेत्रों में स्थान और भोजन पर अनावश्यक रूप से ख़र्च करने और नियमित कक्षाओं के स्कूली बच्चों को शिक्षण से वंचित करने की बजाय, अच्छे शिक्षक मार्गदर्शकों को प्रोत्साहित करने के लिए और सम्बन्धित स्कूलों में डेमो कक्षाएँ लेने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों के नियमित दौरे।

दूरदराज़ के स्कूलों में होनहार शिक्षकों और विद्यार्थियों की यह चिंगारी बाड़मेर में शिव और ऐसी कई अन्य जगहों पर आशा की मशाल जलाती है।

References

Singh, Padam and Satyendra Keshari (2016). Development of Human Development Index at District Level for EAG States. *Statistics and Applications*, Volume 14, Nos. 1 & 2, 2016 (New Series) pp. 43-61.

www.censusindia.gov.in/2011census/C-series/C08.html

www.india.gov.in

udise.in



डॉ. सास्वती पाइक अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में प्राध्यापक हैं। अपने शैक्षिक प्रशिक्षण के अनुसार सास्वती एक भूगोलवेत्ता हैं। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल और पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है। वे शोध के दो क्षेत्रों में रुचि रखती हैं : (i) वयस्क शिक्षा और उसकी प्रासंगिकता (ii) चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों, विशेषकर उन क्षेत्रों में जो प्राकृतिक आपदा प्रवण हों, में स्कूलों की वास्तविकताओं की खोज और वर्तमान शैक्षिक नीतियों और अभ्यासों की प्रासंगिकता। अपने शोध के आधार पर उन्होंने कई प्रकाशन और प्रस्तुतियाँ दी हैं। उनसे saswati@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए अवसर

शोभा एल. कवूरी और शुभा एच. के.

परिचय

यदि शिक्षा का व्यापक और दार्शनिक अर्थ लिया जाए तो निस्सन्देह इसका वृहत उद्देश्य हर बच्चे को उसकी पूरी क्षमता प्राप्त करने में सक्षम बनाना है। यह विश्वास कि 'हर बच्चा सीख सकता है' में इस उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास का भाव निहित है, इस बात को ध्यान में रखते हुए भी कि सीखने की प्रक्रियाएँ अलग-अलग बच्चों के विकास स्तर, सीखने की गति व प्रेरणा के साथ भिन्न हो सकती हैं। यहाँ पर एक और आयाम को भी शामिल करना होगा, वह है बाहरी परिवेश। वह परिवेश जिसमें सीखने का अनुभव व आदान-प्रदान किया जाता है, अर्थात बच्चे की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि जो अकसर हावी हो जाती है और इस तरह सीखने के विकास को गम्भीर रूप से प्रभावित करती है।

बच्चों की सीखने की क्षमताओं पर परिस्थितियाँ किस तरह की मजबूरियाँ थोप देती हैं इसका एक उदाहरण बड़े मेट्रो शहरों में रहने वाले प्रवासी श्रमिकों के बच्चों में अनुभवों में मिल सकता है। यह संस्थागत प्रक्रियाओं को एक साथ लाने में आने वाली चुनौतियों का भी प्रबल उदाहरण है। मुख्यत: यह श्रमिक ग्रामीण परिवारों से होते हैं और विभिन्न राज्यों से काम करने के लिए निर्माण स्थलों पर आते हैं। निर्माण स्थल पर जहाँ जीवन निर्वाह और भौतिक अस्तित्व ही अनिश्चित होता है, वहाँ शिक्षा में निवेश को कम ही प्राथमिकता मिलती है। इसके अलावा माता-पिता के रोज़गार की अस्थायी प्रकृति बच्चों को बहुत कम स्थिरता (संरचनात्मक रूप से और साथ ही समय की दृष्टि से भी) प्रदान करती है। इससे एक व्यवस्थित शैक्षिक प्रक्रिया विकसित करने में कई बाधाएँ आती हैं।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने 2007 में, बेंगलूरु में निर्माण श्रमिकों के बच्चों के लिए 'एजुकेशन फॉर चिल्ड्रन ऑफ़ माइग्रेंट लेबर' (ईसीएमएल) कार्यक्रम शुरू किया। इसके लिए दो निर्माण स्थलों पर केन्द्रों की स्थापना की गई, जिसे स्वयं बिल्डरों ने समर्थन दिया और भागीदारी की। इस कार्यक्रम का उद्देश्य एक वर्ष के भीतर इस समूह के प्राथमिक स्कूली बच्चों को मुख्यधारा में लाना है, जो सरकार के मानदण्डों के अनुसार अनिवार्य है। यह कार्य उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यचर्या के कार्यान्वयन के माध्यम से किया जाता है। केन्द्रों में आने वाले अधिकांश बच्चे अपने पिछले सरकारी रिकॉर्ड में ड्रॉपआउट के रूप में सूचीबद्ध होते हैं।

इन बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा एक सुखद अनुभव नहीं रहा है। स्कूल न आने, पढ़ न पाने या गृहकार्य पूरा न करने पर उन्हें दोषी ठहराया जाता था; स्कूल न जाने के कारण उन्हें अवधारणाओं को समझने में बेहद मुश्किल होती और सीखने में दिक़्क़त होती। ऐसे में अगर बच्चों को स्कूल जाने और सीखने में रुचि न हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिए उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को सम्बोधित करते समय इस बाधापूर्ण सन्दर्भ और अनिश्चितता को ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है।

इन केन्द्रों में आने वाले बच्चों के उदाहरणों से (बॉक्स देखें) यह संकेत मिलता है कि कुछ बच्चों को ईसीएमएल पहल ने निस्सन्देह रूप से ऐसे अवसर प्रदान किए हैं जिससे उनके अधिगम में सुधार हुआ है और उन्हें अपनी क्षमता का बोध हुआ है। इस दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए आँकड़े हैं कि व्यापक स्तर पर भी, सकारात्मक शैक्षिक परिणामों के माध्यम से कार्यक्रम का बच्चों के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। रिकॉर्ड के अनुसार, पिछले 12 वर्षों में लगभग 1700 बच्चों ने ब्रिज प्रोग्राम में भाग लिया और उनमें से 745 बच्चे सफलतापूर्वक मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा में शामिल हो गए। इसके अलावा, चूँकि इन बच्चों के परिवार आजीविका के लिए लगातार अलग-अलग स्थानों पर जाते रहते हैं, इसलिए उनकी प्रगति के बारे में पता लगाने की अपनी व्यावहारिक सीमाएँ हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ऐसे बच्चे भी हो सकते हैं जिन्होंने शिक्षा कहीं और जारी रखी हो, लेकिन केन्द्रों में उनके रिकॉर्ड नहीं हैं।

'मैं सीखना चाहती हूँ, और मुझे पता है कि मैं सीख सकती हूँ'

*केन्द्र में आने वाले बच्चों के जीवन से लिए गए कुछ उदाहरण **

सुमति अपने माता-पिता के साथ रायचूर से आई थी। बेंगलूरु में उससे यह अपेक्षा की गई कि वह अपने भतीजे की देखभाल करे। जब भतीजे को केन्द्र में नामांकित किया गया तो सुमति के माता-पिता को इस बात के लिए राज़ी किया गया कि सुमति का नामांकन भी सरकारी स्कूल में करा दिया जाए। इसके बाद वह एक साल के लिए केन्द्र में आई ताकि वह मुख्यधारा की नियमित

स्कूली शिक्षा में जा सके। संकोची और शर्मीले स्वभाव की सुमति, जिस पर पहले ड्रॉपआउट का लेबल लगा दिया गया था, आज पीयू (+2 के समकक्ष) की छात्रा है। उसे मंच पर आना बहुत अच्छा लगता है। वह अकसर अपने स्कूल में और केन्द्र में वार्षिक समारोह के दौरान कार्यक्रमों में उद्घोषिका का कार्य करती है।

सात साल का भीम आन्ध्र प्रदेश से आया था और पहले ही स्कूल छोड़ चुका था। निर्माण स्थल पर आने के बाद उसके माता-पिता भीम और उसके दो भाइयों को केन्द्र में लेकर आए। भीम और उसके एक साल छोटे भाई का नामांकन स्थानीय सरकारी स्कूल में करवाया गया। सबसे छोटे भाई को प्लेग्रुप में रखा गया। यह सभी कुछ वर्षों तक केन्द्र में आए और फिर नियमित स्कूल चले गए**। आज यह तीनों अँग्रेज़ी माध्यम में स्नातक कोर्स की पढ़ाई कर रहे हैं। भीम एक उभरता नृत्य-निर्देशक (कोरियोग्राफर) है। उसका एक भाई जो कलाकार भी है, कम्प्यूटर साइंस में डिग्री कर रहा है और तीसरा कॉमर्स की पढ़ाई कर रहा है।

विष्णु जब केन्द्र में आया तो सात साल का था और एक साल से भी अधिक समय से स्कूल नहीं गया था। उसे सरकारी स्कूल में चौथी कक्षा में नामांकित किया गया। उसने कुछ समय केन्द्र में बिताया। विष्णु ने पीयू तक की पढ़ाई की। हालाँकि उसने कॉलेज की डिग्री पूरी नहीं की, लेकिन उसने घर के रखरखाव के लिए ठेकेदार के रूप में ख़ुद का व्यवसाय शुरू किया है।

* बच्चों के नाम बदल दिए गए हैं।

** उस समय सरकारी नियमों में ब्रिज कोर्स के लिए एक वर्ष की अनिवार्यता नहीं थी।

कार्यक्रम के महत्त्वपूर्ण पहलू

यह लेख ईसीएमएल कार्यक्रम के तीन अलग-अलग किन्तु फिर भी आपस में जुड़े हुए पहलुओं पर नज़र डालता है। पहला, केन्द्रों में रोज़मर्रा के कार्यकलापों की संस्कृति और दिनचर्या, दूसरा पाठ्यचर्या तथा तीसरा बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में सभी हितधारकों की भागीदारी। यह अन्तिम पहलू इसलिए महत्त्वपूर्ण है ताकि इस बात पर चिन्तन किया जा सके कि वह कौन-सी बात थी जिसकी वजह से शायद इनमें से कई बच्चे सीख सके, विकास कर सके और स्कूली शिक्षा जारी रख सके।

एक ऐसी संस्कृति जो विश्वास और आत्मविश्वास का निर्माण करती है

ईसीएमएल पहल की जड़ें इस विश्वास में निहित हैं कि हर बच्चा सीख सकता है और अपने अधिगम और विकास में सफलता का अनुभव कर सकता है, बशर्ते उसे अपनी गति से सीखने का अवसर मिले और ऐसा करने के लिए पर्याप्त समर्थन मिले। इस कार्यक्रम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें बच्चों को ऐसे वातावरण में सीखने का आनन्द लेने का अवसर मिलता है जहाँ वे सुरक्षित महसूस करते हैं। साथ ही उन्हें यह एहसास होता है कि उनका ध्यान रखा जा रहा है क्योंकि उनकी अधिकांश स्कूली शिक्षा अनियमित रही है और इसलिए यह उनके लिए एक ख़राब अनुभव रहा है।

निम्नलिखित विवरण में बताया गया है कि सचेत प्रयास और समय के साथ इस प्रकार की संस्कृति कैसे विकसित हुई।

- शिक्षकों का पूरा ध्यान विश्वास का निर्माण करने पर रहता है, इसलिए बच्चों को प्रेरित करने या अनुशासित करने के लिए भय या धमकी (यहाँ तक कि अप्रत्यक्ष रूप से भी) का उपयोग कभी नहीं किया जाता है। नए शिक्षक यह देखकर सीखते हैं कि अन्य लोग परिस्थितियों को कैसे सँभालते हैं। बच्चे अपने शिक्षकों पर भरोसा करते हैं और उनके साथ अपने विचार और समस्याएँ साझा करते हैं।
- कक्षा की शिक्षण पद्धति एक साथ सीखने पर ज़ोर देती है, जिससे बच्चों को खोज करने, स्वतंत्र और खुले विचार-विमर्श करने और संवाद करने का अवसर मिलता है। उदाहरण के लिए, अगर बच्चे घर की समस्याओं के कारण परेशान हैं तो प्रार्थना सभा के समय सप्ताह में दो बार होने वाली साझा बैठकों के दौरान वे अपनी भावनाओं के बारे में बात करते हैं। वे माता-पिता के बीच झगड़े, पिता की शराब पीने की आदत, माँ को पीटने या पड़ोसियों के बीच झगड़े के बारे में बात करते हैं। इन बैठकों के दौरान शान्त, फ़िक्रमन्द और देखभालपूर्ण माहौल होता है। शिक्षक बच्चों की बात बिना किसी टीका-टिप्पणी के सुनते हैं। कुछ समय बाद शिक्षक घर जाकर माता-पिता से चर्चा कर सकते हैं कि उनके व्यवहार का उनके बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
- जब बच्चे केन्द्र में आते हैं तो उनके सीखने के स्तर भिन्न होते हैं। वे अलग-अलग आयु वर्गों से भी होते हैं। बच्चे स्तर आधारित समूहों में एक साथ काम करते हैं चाहे उनकी उम्र कितनी भी हो। एक साथ काम करने के बारे में बड़े और छोटे बच्चों की मिली-जुली भावनाओं से निपटने के लिए शिक्षक कई रणनीतियों का उपयोग करते हैं। वे एक समूह के भीतर हर बच्चे को विशिष्ट जिम्मेदारियाँ सौंपते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रत्येक बच्चे को हर क़दम पर सकारात्मक मज़बूती प्रदान की जाए। जैसे-जैसे उनके सीखने में बढ़त होती है, वैसे-वैसे बच्चों के समूह बदल दिए जाते हैं। अन्ततः बच्चों के लिए यह बात बहुत कम मायने रखती है कि वे मिश्रित आयु समूह में बैठे हैं।

- वैसे तो केन्द्र में तीन आयु समूह हैं और प्रत्येक की अपनी विशिष्ट पाठ्यचर्या है लेकिन छोटे बच्चों को बड़े भाई-बहनों के साथ बैठने से नहीं रोका जाता। यह तब तक जारी रह सकता है जब तक कि छोटा बच्चा अपने समूह के साथ घुल-मिल न जाए। इससे बच्चों में एक-दूसरे का ध्यान रखने और संवेदनशीलता की भावना का निर्माण करने में भी मदद मिली है।
- बच्चों को सुबह दूध, दोपहर का भोजन और शाम को घर लौटने से पहले नाश्ता मिलता है। शिक्षक बच्चों के साथ भोजन करते हैं जिससे उनके बीच एक मज़बूत बन्धन विकसित होता है।
- शुरुआत में कुछ बच्चों का व्यवहार सामान्य नहीं होता— जैसे वे अन्य बच्चों की पिटाई करते हैं, इधर-उधर भागते हैं, चीज़ें फेंकते हैं और खिलौने तथा अन्य सामग्रियों को वापस अपनी जगह पर नहीं रखते हैं। तर्क के ज़रिए शिक्षक इन आदतों को बदलने का प्रयास करते हैं और धीरे-धीरे समझाते हैं कि उनसे क्या और क्यों अपेक्षित है। कभी-कभी बड़े बच्चे भी उनसे बात करके मदद करते हैं।
- जो बच्चे मुख्यधारा में आ जाते हैं, उनमें अपनेपन की प्रबल भावना होती है और वे केन्द्र को अपने दूसरे घर के रूप में देखते हैं। उनमें से अधिकांश स्कूल जाने से पहले केन्द्र पर आते हैं और घर लौटते हुए बाक़ी बच्चों के साथ शाम का नाश्ता करते हैं और अपना गृहकार्य पूरा करते हैं। स्कूल की छुट्टियों के दौरान वे छोटे बच्चों की देखभाल की ज़िम्मेदारी भी लेते हैं, जैसे भोजन परोसना, सफ़ाई करना और कक्षा में अध्यापकों की मदद करना।

पाठ्यचर्या : एक मॉड्यूलर दृष्टिकोण

इस कार्यक्रम में एक विकासात्मक पाठ्यचर्या का दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसमें बच्चों की क्षमता पर ध्यान दिए बिना सभी को शामिल किया जाता है। बच्चों को उनके उपयुक्त आयु वर्ग में रखा जाता है— शिशुओं और बच्चों का समूह (6 महीने से 3 वर्ष तक), प्री-स्कूल (3 से 6 वर्ष तक) और प्राथमिक स्कूल समूह (6 वर्ष और उससे ऊपर)। छोटे बच्चों के समूहों के लिए मुख्य रूप से स्वास्थ्य और पोषण पर ध्यान दिया जाता है। साथ ही उन्हें स्फूर्तिदायक अनुभवों और मौखिक भाषा के निर्माण के अवसर भी दिए जाते हैं।

अधिगम के विभिन्न क्षेत्रों को सम्मिलित करने के लिए लचीली पाठ्यचर्या बनाने का प्रयास किया गया है। नए शामिल हुए बच्चों को केन्द्र में स्वतंत्र रूप से इधर-उधर जाने और पहले से चल रही गतिविधियों तथा परिवेश के साथ परिचित होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यदि ऐसा लगता है कि वे निर्माण स्थल पर कुछ अधिक समय तक के लिए रहेंगे तो उन्हें पास के सरकारी स्कूल में नामांकित किया जाता है। तत्पश्चात केन्द्र के शिक्षक बच्चों को उपयुक्त अधिगम समूहों में रखने से पहले उनके अधिगम के स्तर का अनुमान लगाने के लिए उनका आकलन करते हैं।

इस समूह के लिए एक मॉड्यूलर दृष्टिकोण का अनुसरण किया जाता है क्योंकि बच्चों को एक वर्ष के भीतर मुख्यधारा में लाने की अपेक्षा की जाती है। प्रत्येक मॉड्यूल अपने आप में एक पूर्ण इकाई है क्योंकि यह बच्चे निर्माण स्थल पर कब तक रहेंगे, यह बात अनिश्चित होती है। इसमें कन्नड़ और अँग्रेज़ी भाषाओं के साथ-साथ गणित और पर्यावरण अध्ययन शामिल हैं। शिक्षण के दौरान अकसर बुनियादी अवधारणाओं पर फिर से चर्चा की जाती है। इससे उस बच्चे को अवधारणा समझने में मदद मिलती है जो अभी-अभी शामिल हुआ है। साथ ही जो बच्चे पहले से केन्द्र में हैं वे भी अवधारणा को और अच्छी तरह समझ पाते हैं। अधिक ध्यान बच्चों को बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक कौशल प्रदान करने पर दिया जाता है।

बच्चों को नाटक, कला और अन्य गतिविधियों के माध्यम से सुनने, चर्चा करने, खेलने और रचना करने के अवसर दिए जाते हैं और इस तरह से उन्हें उत्सुक, सक्रिय और उत्साही शिक्षार्थी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। विभिन्न विषयों को पढ़ाने के लिए दिन-प्रतिदिन के जीवन में पाई जाने वाली सामग्रियों और संसाधनों का उपयोग किया जाता है। चूँकि शिक्षकों ने इन सामग्रियों को बनाने की प्रक्रिया में भाग लिया है इसलिए वे भली-भाँति इनका उपयोग करने में सक्षम हैं।

गणित की अवधारणाओं को शिक्षण उपकरणों की सहायता से समझाया जाता है और विद्यार्थी विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के साथ काम करते हैं, जैसे मुद्रा के बारे में सीखते समय 'काग़ज़ के नक़ली नोट', स्थानीय मान की अवधारणा को समझने के लिए लकड़ियों के बण्डल, समय की संरचना समझने के लिए वास्तविक घड़ी। इसी तरह विभिन्न अवधारणाओं की समझ के लिए कंकड़, मोतियों और चूड़ियों जैसी अन्य सामग्रियों का उपयोग किया जाता है।

ईवीएस कक्षाओं में बुद्धिशीलता (brainstorming) और समूह चर्चा, रोल-प्ले, बैंक, डाकघर, रेलवे स्टेशन, बस स्टॉप और पेट्रोल पम्प जैसे स्थानों का दौरा करना शामिल हैं जो बच्चों को उनके परिवेश के बारे में अधिक जागरूक बनाने में मदद करते हैं। बच्चों को प्रश्न पूछने और अपनी समझ तथा अनुभवों को साझा करने के लिए बहुत प्रोत्साहित किया जाता है।

शिक्षा का मूल माध्यम कन्नड़ है। साथ में थोड़ी-थोड़ी प्रारम्भिक अँग्रेज़ी भी माध्यम के तौर पर उपयोग की जाती है। जिन बच्चों की मातृभाषा हिन्दी है, शिक्षक उन्हें हिन्दी में सहायता करते

हैं। कहानियों, कविताओं, पहेलियों का अभिनय करना और प्रामाणिक सामग्री जैसे समाचार पत्र, रैपर आदि उपयोग करने से भाषा सीखने में मदद मिलती है। 'वर्ड फॉर द डे' जैसी गतिविधियों से बच्चों को फ़ायदा भी होता है और उन्हें इनमें बहुत आनन्द भी आता है।

बच्चों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि उनके सामने जब भी कोई नया शब्द आए तो वे उसे कक्षा में बताएँ। इससे चर्चाएँ आगे बढ़ती हैं और बच्चों को अपने अनुभव के बारे में बोलने का मौक़ा मिलता है। 'वर्ड फॉर द डे' गतिविधि का शब्द कन्नड़, अँग्रेज़ी और यदि ज़रूरत पड़े तो हिन्दी में भी दिया जाता है। बच्चे वस्तु, भावना या किसी घटना से जुड़े शब्दों को साझा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रारम्भिक स्तर पर बच्चे एक शब्द को तीनों भाषाओं में सुनते हैं जैसे कि 'ख़ुश', 'पायल' या फिर कोई अनुभव जैसे 'मेले में जाना'। दूसरे स्तर पर वे 'वर्ड फॉर द डे' गतिविधि के शब्द के साथ कन्नड़ और थोड़ी बहुत अँग्रेज़ी में सरल वाक्य बनाते हैं।

पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य का एक घटक भी है जो पोषण और स्वच्छता पर चर्चा को प्रोत्साहित करता है। बाग़वानी और खाना पकाने जैसी गतिविधियों से सीखने के साथ-साथ मज़ेदार अनुभव भी होते हैं। बच्चे सन्तुलित भोजन और खाना पकाने की बुनियादी बातों के बारे में सीखते हैं जैसे कि दालों को अंकुरित करना, सब्ज़ियाँ पकाना या रोटियाँ बनाना। खाना बनाने के अनुभव से भाषा निर्माण के कौशल के साथ-साथ अनुमान लगाने और नाप-तौल के कौशल विकसित करने भी मदद मिलती है।

बाग़वानी के घण्टों के दौरान बच्चे क्यारियों में सब्ज़ियाँ उगाना, उनकी देखभाल करना सीखते हैं और पैदावार को साझा करते हैं। कुछ साल पहले बोया गया आम का एक पेड़ इस साल फल देने लगा है। बच्चों और बड़ों ने मिलकर उसका अचार बनाया और आपस में बाँटा।

यह सभी बातें प्रत्येक मॉड्यूल में निहित होती हैं और यह मॉड्यूल काफ़ी हद तक परिवर्तनशील होते हैं। चूँकि प्रत्येक बच्चा अपनी गति से सीखता है, इसलिए आकलन का उपयोग प्रत्येक बच्चे की प्रगति को रिकॉर्ड करने के लिए किया जाता है। बच्चों को विभिन्न तरीक़ों से अपने अधिगम का प्रदर्शन करने के अवसर मिलते हैं। शिक्षकों के निरन्तर अवलोकन और विस्तृत नोट्स से योजना बनाने और तैयारी करने में आसानी होती है। प्रत्येक बच्चे के लिए व्यक्तिगत पोर्टफोलियो के रिकॉर्ड बनाए जाते हैं जिसमें बच्चे के कार्यों का विवरण होता है। मॉड्यूल के अन्त में एक योगात्मक आकलन किया जाता है जिसका उद्देश्य स्कूल में शामिल होने के बाद बच्चों को मुख्य रूप से पेन और पेपर टेस्ट के लिए तैयार करना है।

हितधारकों का समावेशन

शिक्षक

शिक्षक सीखने में बच्चों की सहायता करने और भावनात्मक रूप से उनका समर्थन करने के लिए नियमित रूप से और प्रतिबद्धता के साथ जुटे रहते हैं। आत्मविश्वास निर्माण, साझाकरण, समूहों में काम करना, नए विद्यार्थियों के साथ सहयोग और समायोजन करना— इन सभी के लिए निरन्तर संवाद, साझाकरण और भागीदारी के माध्यम से प्रयास किया जाता है। इन सबके कारण बच्चे सहज होते हैं और निस्सन्देह रूप से मुख्यधारा में आ पाते हैं।

शिक्षक कम-से-कम तीन भाषाएँ जानते हैं और नए बच्चों को सहज बनाने की पूरी कोशिश करते हैं क्योंकि यह बच्चे देश के विभिन्न भागों से आते हैं और विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं। शिक्षक हर बच्चे की प्रगति का रिकॉर्ड रखते हैं। चूँकि बच्चे अकसर एक मॉड्यूल के बीच में ही केन्द्र छोड़कर अपने माता-पिता के साथ अस्थायी रूप से अपने गाँव चले जाते हैं, इसलिए जब वे वापस केन्द्र में लौटते हैं तो यह रिकॉर्ड बहुत काम आते हैं।

ईसीएमएल के कार्यक्रम की एक मूलभूत बात है शिक्षकों द्वारा अपने अनुभव साझा करना और योजना बनाना। हर पन्द्रह दिन में एक बार, शिक्षक पिछले पखवाड़े के अनुभव और अगले पखवाड़े की योजना पर विचार करने के लिए मिलते हैं। वे समुदाय, स्वास्थ्य व पोषण, बच्चों की प्रगति पर नज़र रखने, प्रशासन से सम्बन्धित मुद्दों पर चर्चा भी करते हैं।

शिक्षक उस सरकारी स्कूल के मुख्य शिक्षक के साथ सम्पर्क में रहने के लिए सम्मिलित प्रयास करते हैं, जहाँ बच्चों का दाख़िला होता है ताकि उनके रिकॉर्ड अद्यतन किए जा सकें, उनकी प्रगति के बारे में जाना जा सके जिनके लिए केन्द्र में समर्थन जारी है। वे सरकारी स्कूल के स्टाफ़ के साथ केन्द्र में प्रयुक्त पाठ्यक्रम और संस्कृति के बारे में जानकारी साझा करते हैं जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि शारीरिक दण्ड देना पूर्णतया प्रतिबन्धित है।

> संस्थाओं के बीच इस तरह के आपसी सम्बन्ध यह सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं कि बच्चे प्रेरित हों और बिना किसी डर के और नियमित रूप से स्कूली शिक्षा जारी रखें। जिस सरकारी स्कूल में यह बच्चे जाते हैं, वहाँ के स्टाफ़ का यह अवलोकन है कि अमूमन यह बच्चे आत्मविश्वास से भरे होते हैं। हालाँकि जब वे स्कूल में दाख़िला लेते हैं, तब वे भले ही कक्षा के अपेक्षित अधिगम स्तर पर नहीं होते हैं लेकिन तो भी इस बात से काफ़ी मदद मिलती है कि वे प्रेरित हैं और अधिगम के लिए खुले मन से तैयार हैं।

अभिभावक समुदाय

समय और निरन्तर संवाद के साथ ही अभिभावकों का समुदाय यह बात समझ पाया है और इसकी सराहना करने लगा है कि हमारा केन्द्र नियमित रूप से और एक दर्शन के साथ एक औपचारिक शिक्षण स्थान के रूप में कैसे काम करता है। निर्माण स्थल पर बच्चों के निवास की अवधि की अनिश्चितता को देखते हुए, स्कूली शिक्षा और मुख्यधारा की निरन्तरता बनाए रखने में अभिभावकों के साथ नियमित रूप से जुड़ना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। शिक्षक अभिभावकों के साथ निरन्तर सम्पर्क में रहते हैं और उन्हें केन्द्र की प्रक्रियाओं के बारे में बताते रहते हैं।

समुदाय के सदस्य केन्द्र की दैनिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। जो माताएँ अपने छोटे बच्चों के कारण निर्माण स्थल पर काम नहीं करतीं, वे अन्य बच्चों की देखभाल करने के लिए आ जाती हैं। वे बच्चों को भोजन परोसती हैं, कहानियाँ और गीत सुनाती हैं। समुदाय के सदस्य नए बच्चों को लाने, उत्सव मनाने, रखरखाव और परिसर की सफ़ाई और रंग-रोगन करने में मदद करते हैं। उन्हें अपने अनुभव साझा करने व कृषि पर बात करने लिए आमंत्रित किया जाता है; या फिर वे निर्माण स्थल पर अपने काम के बारे में या निर्माण में उपयोग की जाने वाली सामग्रियों के बारे में या सुरक्षा सम्बन्धी सावधानियों के बारे में बताते हैं। अभिभावकों को कक्षा में बैठकर अपने बच्चों के अधिगम का अवलोकन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

माता-पिता, पुराने विद्यार्थियों और बिल्डरों के प्रतिनिधियों की एक समिति बनाई गई है जो अग्रलिखित बातों में केन्द्र की टीम की मदद करती है : बच्चों की प्रगति पर नज़र रखना, यह सुनिश्चित करना कि बच्चे नियमित रूप से केन्द्र में उपस्थित हों; अभिभावकों को बच्चों की शिक्षा जारी रखने के लिए प्रेरित करना; बच्चों की सलामती और सुरक्षा के बारे में समुदाय को शिक्षित करना इत्यादि। अगर अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के लिए बैंक में पैसा जमा कर सकते हों तो इसके लिए भी उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है।

इस अनुभव से प्राप्त सबक़

कार्यक्रम के कुछ प्रमुख पहलू हैं जिनकी वजह से यह सम्भव हो पाया है। पहला और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण सबक़ यह है कि हम जिस जनसमुदाय की बात कर रहे हैं वह अपनी कमज़ोरियों से घिरा हुआ है। इसलिए उन्हें एक सुरक्षित और सक्षम वातावरण प्रदान करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। दूसरा आवश्यक कारक है इन बच्चों के साथ सम्बन्ध बनाने और उचित शैक्षणिक प्रथाओं को विकसित करने में शिक्षण समुदाय की भूमिका और उनका उन्मुखीकरण। विशेष रूप से शिक्षक बच्चों को नियमित स्कूली शिक्षा में सफलतापूर्वक ले जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह एक ऐसा पहलू है जिस पर बल देने और उसे मज़बूत करने की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में, विधि और सामग्री के मामले में पाठ्यक्रम की उभरती भूमिका महत्त्वपूर्ण है लेकिन इसके लिए उपर्युक्त दो पहलुओं का सफल कार्यान्वयन आवश्यक है। अन्त में, अभिभावक समुदाय को सीमित करने वाले कारक की बजाय सम्भावित रूप से सक्षम करने वाले कारक के रूप में देखा जा सकता है। इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि बच्चों को मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा में लाने का समर्थन करने में उनकी भूमिका कैसे बेहतर हो सकती है।



शोभा एल. कवूरी बेंगलूरु ज़िला संस्थान, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की सदस्य हैं। वे शिक्षिका हैं और राजस्थान में शैक्षिक और विकास की पहलों में शामिल रही हैं। वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन स्कूल की शुरुआती टीम की सदस्य रही हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी स्कूलों में पाठ्यचर्या विकास, शिक्षक व्यावसायिक विकास और भाषा विकास के क्षेत्रों में व्यापक कार्य किया है। उनसे shobha.kavoori@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।



शुभा एच. के. अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की सदस्य हैं। वर्तमान में वे बेंगलूरु ज़िला संस्थान में अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन पहल के संयोजन के साथ बेंगलूरु में चिल्ड्रन ऑफ़ माइग्रेंट लेबर के ब्रिज सेंटर का कार्य भी सँभाल रही हैं। प्री-स्कूल की पाठ्यचर्या और शिक्षक क्षमता निर्माण के कार्यक्रमों को डिज़ाइन करने के लिए वे राज्य के शिक्षा विभाग और महिला व बाल कल्याण विभाग के साथ गहन रूप से कार्य कर रही हैं। वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन स्कूल की शुरुआती टीम की सदस्य रही हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी स्कूलों में पाठ्यचर्या विकास, शिक्षक व्यावसायिक विकास और भाषा विकास के क्षेत्रों में व्यापक कार्य किया है। उनसे shubha@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

बच्चों पर कहानी सुनाने का प्रभाव

सोनिया खुदनपुर

शुरुआती दिनों में रुद्रप्रयाग के सरकारी स्कूलों का दौरा करते समय मैं भाषा-शिक्षण की कई विधियों का प्रयोग किया करती थी, जिनके बारे में तब तक मैंने केवल पढ़ा था या बात की थी। इनमें से कहानी सुनाने की विधि हमेशा सफल होती थी। मैंने देखा है कि बच्चों को कहानी सुनाने के मामूली ही सही, किन्तु लगातार सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं— जैसे, वे बेहतर तरीक़े से ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं, किताबों में उनकी रुचि विकसित होती है, उनमें बातचीत या लेखन के माध्यम से अपनी बात को व्यक्त करने की इच्छा जागती है आदि।

मैं कहानी सुनाने या कहने में कोई विशेषज्ञ नहीं हूँ। इसलिए मैंने फ़ैसला किया कि कहानियाँ सुनाने के लिए मैं सबसे पहले कहानियाँ पढ़ूँगी और उन्हें याद करूँगी और बच्चों को कहानियों की नई किताबों के सम्पर्क में लाऊँगी। जिन स्कूलों में मैंने कुछ महीने बिताए उनमें से एक स्कूल में, मैं हर दिन कहानियों की कुछ नई किताबें ले जाती थी और एक या दो कहानियों को याद करके उन्हें अपने शब्दों में सुनाती थी। मैंने स्कूल में जितना समय भी बिताया, वह बच्चों से दोस्ती करने और कहानी सुनाने के प्रभावों का अवलोकन करने के लिए पर्याप्त था।

शुरुआती दिन बहुत रोमांचक थे। बच्चे यह जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि मैं अपने साथ क्या लाई हूँ। वे कक्षा के दौरान मुझसे किताब देने को कहते या पास आकर खड़े हो जाते और किताब देखने की कोशिश करते। वे हमेशा यह देखने के लिए उत्सुक रहते थे कि मैं कौन-सी नई किताबें अपने साथ लाई हूँ। वे जो कहानी सुनाने का अनुरोध करते, मैं वही कहानी पढ़ती या सुनाती।

जब भी ख़ाली समय मिलता, मैं बच्चों को वह किताबें देती। शुरू में तो बच्चे उन्हें अपने हाथों में लेकर देखते, उसके पन्नों को उलटते-पलटते, उसके चित्रों को देखते और जल्द ही लौटा देते। बहुत कम बच्चे ऐसे थे जो पढ़ने की कोशिश करते। जिनको किताबें अच्छी लगतीं वे उसे पढ़ने की कोशिश करते, भले ही वे केवल पुस्तकों के शीर्षक ही क्यों न हों, और जिनको लगता कि वे अच्छी नहीं हैं वे बस चित्र देखते, पन्ने पलटते और कहते, “मैं नहीं पढ़ सकता।” हालाँकि वे वर्णमाला जानते थे, अक्षरों की ध्वनि जानते थे और रोज़ाना पढ़ना-लिखना उनकी स्कूली दिनचर्या का हिस्सा था; इसके बावजूद वे ऐसा कहते थे। शुरुआत में तो प्रोत्साहन का कोई ख़ास प्रभाव नहीं हुआ। लेकिन जैसे-जैसे सप्ताह बीतते गए, कुछ ऐसा हुआ कि जो बच्चे आत्मविश्वासी नहीं थे, वे भी अधिक कहानियों की माँग करने लगे।

दूसरी कक्षा में पढ़ने वाले अमन को शरारती और ध्यान भंग करने वाला माना जाता था। उसके शिक्षक का मानना था कि वह केवल बोर्ड से या अपने सहपाठियों की नोटबुक से अच्छी तरह से नक़ल कर सकता है। उसने शायद ही कभी अपना होमवर्क किया हो और कक्षा में तो वह कभी ज़्यादा रुचि नहीं लेता था। वह बहुत चुलबुला था और हमेशा शरारत करता रहता था। कहानियों की जो किताबें मैं स्कूल ले जाया करती थी, अमन ने उन्हें देखने में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाई। यदि कोई अन्य विद्यार्थी पढ़ रहा हो तो वह ताका-झाँकी करता, मज़ाक करता, टीका-टिप्पणी करता और फिर अपनी सीट पर वापस चला जाता। वह अपने आप कुछ पढ़ेगा, इसकी तो उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी और कोई कोशिश काम नहीं आ रही थी। जब मैं कोई कहानी सुनाती तो अमन में इतना धैर्य ही नहीं था कि बैठकर उसे सुने। वह तो इधर-उधर भागना, किसी के साथ खेलना या लड़ना चाहता था।

लेकिन कहानियों के बारे में कोई बात तो ऐसी थी जिसने अमन का ध्यान आकर्षित किया। कहानी के शुरुआती सत्रों में वह मेरे क़रीब खड़ा होता, कुछ मिनटों के लिए सुनता, उसी शैली में एक पंक्ति दोहराता और समूह छोड़कर चल देता। ऐसा वह बार-बार करता। फिर धीरे-धीरे यह कम होता गया। एक स्थिति ऐसी भी आई जब वह न केवल मेरे बाद दिलचस्प वाक्यांश दोहराता बल्कि मुझे आगे की कहानी सुनाने के लिए कहता : फिर? या फिर से, फिर से कहता। वह चाहता कि या तो मैं वही कहानी फिर से सुनाऊँ या कोई दूसरी कहानी सुनाऊँ।

यह बदलाव काफ़ी उत्साहजनक था। एक दिन, मैंने उससे पूछा, “मैं तुम्हारे लिए एक कहानी पढ़ूँ?”

उसने कहा, “ठीक है।”

“क्या तुम मुझे शेल्फ़ से कोई किताब चुनकर दोगे?” मैंने कहा।

अमन ने मुझसे रफ़्तार ख़ान का स्कूटर शीर्षक कहानी पढ़वाई। मैं घबरा गई क्योंकि मैंने वह कहानी पहले नहीं पढ़ी थी। मैंने शब्दों पर अपनी उँगली रखते हुए जितना हो सके उतनी भावाभिव्यक्ति और स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ कहानी

पढ़ी। अगर उसे कोई पंक्ति पसन्द आती तो वह उसे बहुत ही धीरे-से दोहराता, पहले मेरे बाद, फिर मेरे साथ। वह पंक्तियों पर ध्यान दे रहा था। अगर मुझसे कोई शब्द या एक पृष्ठ छूट जाता तो वह मुझे बता देता। उसकी भागीदारी को देखकर मैं बहुत ख़ुश हुई।

मैंने एक बात तय की थी कि मैं हमेशा बच्चों के साथ उनके समान स्तर पर ही बैठूँगी ताकि यदि वे चाहें तो पुस्तक को देख और छू सकें। अमन ने मुझसे इस कहानी को कम से कम छह से सात बार पढ़वाया। उसने कहानी की पंक्तियों को लगभग याद कर लिया था। अब उसने अधिक पुस्तकों को चुनना शुरू कर दिया और मुझे यह भी बताना शुरू कर दिया कि वह किस तरह की कहानियाँ सुनना चाहता है।

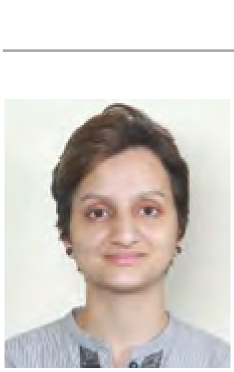
बेहतर तरीक़े से पढ़ने में उसकी मदद करने के लिए एक कहानी पढ़ने के बाद मैंने कक्षा से पूछा, "क्या हम इसे अपनी नोटबुक में लिखें?" उन्होंने हामी भरी।

मैंने बोर्ड पर लिखना शुरू किया। एक छात्रा ने पूछा कि क्या वह भी बोर्ड पर एक पंक्ति लिख सकती है। फिर अमन ने भी ऐसा ही करने को कहा। मैंने दोनों से कहा कि वे आकर बोर्ड पर लिखें। अब अमन के एक हाथ में किताब थी, दूसरे में चॉक, और वह साफ़-स्पष्ट तरीक़े से लिखने की कोशिश कर रहा था। वह इसमें कामयाब रहा। जो कुछ उसने लिखा था उसे वह पढ़ सका और अपने सहपाठियों को बता सका।

बाद में मैंने अमन की शिक्षिका से पढ़ने और लिखने में उसकी रुचि के बारे में बात की। किन्तु वे बहुत प्रभावित नहीं लगीं। आख़िरकार, वे उसका आकलन इस आधार पर ही तो कर रही थीं कि वह कक्षा में पाठ के सवालों के जवाब देता है या नहीं और परीक्षा में प्रश्नों के सही उत्तर देता है या नहीं। अमन अभी तक यह सब नहीं कर पाया था। लेकिन उन्होंने कहा कि जब अमन दिलचस्पी लेता है तो वह अपना काम अच्छी तरह से करता है। जब मैं उनसे अगली बार मिली तो उन्होंने कहा कि अब वह बेहतर तरीक़े से पढ़ाई कर रहा है। ऐसा लग रहा था कि अब वे उसे एक अलग नज़रिए से देख रही हैं। अब उन्हें उसकी क्षमता में अधिक विश्वास था और उसके प्रति अधिक समानुभूति का भाव भी था। उसकी शिक्षिका ने मुझे बताया कि उन्होंने अमन को पढ़ना और लिखना सिखाने में कई महीने लगाए हैं। उन्होंने उससे कई बार अक्षर, शब्द और वाक्य लिखवाए, इस उम्मीद में कि उसमें सुधार आएगा। थोड़ा सुधार होता और वह फिर से वहीं वापस आ जाता जहाँ वह था।

मैंने सरकारी स्कूल की कक्षाओं में कम ही समय बिताया है, लेकिन एक बात स्पष्ट है— बच्चा आमतौर पर अपनी क्षमताओं के बारे में अपने शिक्षक की धारणा के अनुरूप आचरण करता है। यदि मेरे शिक्षक का मानना है कि मैं एक शरारती, लापरवाह बच्ची हूँ, जो पढ़ाई पर ध्यान नहीं दे सकती है या अपने काम को ठीक से नहीं कर सकती है तो मैं वैसी ही बनूँगी। प्रत्येक कक्षा में शिक्षक स्वाभाविक रूप से बच्चों के काम के बारे में अपनी शुरुआती धारणा के आधार पर विद्यार्थियों को श्रेणीबद्ध करने का प्रयास करता है। कक्षा में अच्छे विद्यार्थी होते हैं, क़ाबिल विद्यार्थी होते हैं, और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनकी मदद करने से भी कोई लाभ नहीं होता। दुर्भाग्य से अमन इस आख़िरी श्रेणी में आता था। लेकिन कहानी कहने के तरीक़े ने उस धारणा को तोड़ने में मदद की। कहानी कहने के माध्यम से अमन ने न केवल किताबों को देखने में रुचि ली बल्कि वह और अधिक कहानियाँ सुनने लगा था, उन्हें दूसरों को सुनाने लगा था, पात्रों और संवादों पर टिप्पणी करने लगा था और इतना ही नहीं अब वह अपने दम पर कहानियाँ पढ़ भी लेता था।

इस अनुभव से मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ कि सभी बच्चे सीख सकते हैं। अमन ने मुझे सिखाया कि यदि प्रत्येक बच्चे को एक क़ाबिल विद्यार्थी माना जाए तो वह सीखने में दिलचस्पी लेगा। हर कोई चाहता है कि वह सब कार्य अच्छी तरह से करे। इसके लिए उन्हें बस ज़रूरत है हमारे समर्थन की और उनमें विश्वास रखने की। ऐसा करने का एक सबसे अचूक तरीक़ा है— किताबों से, अपने रोज़मर्रा के अनुभवों से, शिक्षकों और विद्यार्थियों के जीवन से अधिक से अधिक कहानियों को कक्षा में लाना। इन रोज़मर्रा की कहानियों से, बच्चों की चुनी हुई कहानियों को सुनाने या कहानी पढ़ने से, शिक्षकों को प्रत्येक बच्चे के साथ जुड़ने का मौक़ा मिल सकता है। कहानियों से विशुद्ध वार्तालाप, प्रश्न, सन्देह, भय और अन्य भावनाओं की अभिव्यक्ति करने का अवसर मिलता है और कल्पना समृद्ध होती है।



सोनिया खुदनपुर रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड में कार्यरत हैं। वे जुलाई 2018 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में अँग्रेज़ी भाषा की टीम का हिस्सा हैं। सोनिया ने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से एमए की (शिक्षा) की स्नात्तकोत्तर उपाधि ली है। उन्होंने पत्रकारिता में स्नात्तकोत्तर डिप्लोमा भी किया है और लगभग तीन वर्षों तक मीडिया में कार्य किया है। फाउण्डेशन में वे— सरकारी स्कूलों में बच्चों के साथ अन्तःक्रिया के माध्यम से शिक्षण-अधिगम के बारे में सीखने, शिक्षकों के साथ काम करने और भाषा-शिक्षण पर सत्र और कार्यशालाओं का आयोजन और सुगमीकरण करके उनकी सहायता करने के काम में व्यस्त हैं। उनसे sonia.khudanpur@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

बच्चों का सीखना और सामाजिक सन्दर्भ

सुनील साह

शिक्षा का काम बच्चों को सशक्त और संवेदनशील इन्सान बनाना है ताकि वे एक अर्थपूर्ण जीवन जी सकें। अपने समाज की बेहतरी के लिए कार्य कर सकें और वैश्विक स्तर पर सकारात्मक बदलाव में अपनी भूमिका देख सकें। इसलिए हरेक शिक्षक को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उसकी कक्षा में आने वाला बच्चा जहाँ एक अलग व्यक्ति है, वहीं दूसरी तरफ़ वह समाज का भी हिस्सा और उसे उसी तरह से विकसित करने की ज़रूरत है।

मैं जब भी स्कूलों में जाता हूँ और शिक्षक साथियों से मुलाक़ात होती है, तो एक बात हमेशा सामने आती है कि यह "कुछ" बच्चे हैं जो सीख नहीं पाते। और जब आप कारणों की तलाश करते हैं तो ऐसी प्रतिक्रियाएँ सामने आती हैं, जो इन बच्चों के इन्सान होने की मान्यता को ख़ारिज करते हुए दिखाई पड़ती हैं। बच्चा इसी समाज का हिस्सा है और इसी में अन्त:क्रिया करते हुए अपना मानसिक और सामाजिक विकास करता है। फिर ऐसा कैसे सम्भव है कि कुछ बच्चे सीख नहीं पाते?

बच्चों की सीखने सम्बन्धी मान्यताओं को अगर देखें-परखें तो हम पाते हैं कि हमारी सामाजिक व्यवस्था इसके लिए ज़िम्मेदार है। हमारे समाज की एक बनावट जिसमें विभिन्न जाति, धर्म और आर्थिक स्थितियों के लोगों के समूह शामिल हैं और इसके आधार पर उनके सीखने की क्षमता उसी समय से तय कर दी जाती है जब वे विद्यालय में दाख़िल होते हैं। समाज के पदानुक्रम में जब यह मान्यता अपनी पैठ बनाती जाती है तो फिर सीखने-सिखाने का आग्रह कम होकर बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर केन्द्रित हो जाता है और हमारे प्रयास संकुचित हो जाते हैं।

मैं बच्चों के सन्दर्भ में अपने अनुभवों से कह सकता हूँ कि हम इन्हें समाज के पदानुक्रम में सबसे निचले स्थान पर रखते हैं, शायद महिलाओं से भी नीचे। अकसर स्कूलों में यह कहते हुए सुना जा सकता है कि "यह बच्चा कुछ नहीं कर पाएगा, इसमें वह क्षमता नहीं है" या "यह ऐसे नहीं सीखेगा इसे तो दम भरकर पीटिए।" समाज की यह अपेक्षा कि हमारा बच्चा और बच्चों से बेहतर अंक क्यों नहीं लाता, दूसरे बच्चों से तुलना करना, कोसना एक ऐसे घुटन भरे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें बहुत सारी ज़िन्दगियाँ दफ़न हो जाती हैं। ऐसे वातावरण में सीखने-सिखाने की जो पहल होनी चाहिए वह हम नहीं करते। बच्चे मानव समाज का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं, उनमें वह सभी मानवीय गुण पाए जाते हैं जो वयस्कों में होते हैं। तो फिर ऐसा क्यों है कि कुछ बच्चे नहीं सीख पाते?

आर्थिक विषमता इस खाई को और बढ़ाती है। हमारे समाज़ का बड़ा तबक़ा आज भी दो वक़्त की रोटी बमुश्किल जुटा पाता है और कुछ परिवारों में इसके लिए काफ़ी संघर्ष चलता है। ऐसे में उस परिवार का बच्चा परिवार की ज़रूरतों को अपनी ज़िम्मेदारी के रूप में महसूस करता है और उससे निपटने के लिए काम करना शुरू कर देता है। बहुत सारे बच्चे धान की कटाई, मटर व आलू चुनने के समय अपने परिवारों की मदद करते हैं और विद्यालयों से अनुपस्थित रहते हैं।

यहाँ मैं एक घटना का ज़िक्र करना चाहता हूँ। हम कुछ साथी उत्तराखण्ड के एक विद्यालय में 'बाल शोध मेले' की तैयारी के लिए लगातार जाते थे और समुदाय के सदस्यों से मिलते थे। धीरे-धीरे बातचीत की प्रक्रिया आगे बढ़ी। उनका विश्वास हम पर बढ़ने लगा। फिर बात ही बात में उन लोगों ने बताया कि पहली बार हमसे मिलने कोई आया है और हमारे जीवन और पेशे के बारे में बात कर रहा है। इस समुदाय के अधिकांश सदस्य भीख माँगकर अपना पेट पालते थे। उन्होंने बताया कि लोग हम वयस्क लोगों को अकसर पैसा नहीं देते, तो न चाहते हुए भी हमें बच्चों को अपने साथ ले जाना पड़ता है। हम सभी समझते हैं कि शिक्षा का महत्त्व कितना है।

प्रेमचन्द ने 1936 में लिखा था, "समाज का कोई तबक़ा ऐसा नहीं है जो शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझता, ज़रूर उसकी कोई मजबूरी रही होगी कि वह अपने बच्चे को स्कूल नहीं भेजता।" ऐसा कहते हुए बच्चों की अनुपस्थिति को मैं जायज़ नहीं ठहरा रहा, बल्कि इसे संवेदनशील तरीक़े से समझने की कोशिश कर रहा हूँ। क्या ऐसा कोई तरीक़ा नहीं हो सकता जिसमें हम ऐसे बच्चों के साथ कुछ अलग तरह की प्रक्रिया अपनाएँ? कुछ ऐसा करें कि विद्यालय उनको अपना लगने लगे। उनके परिवार और समुदाय के भरण-पोषण के तरीक़ों को संवेदनशील तरीक़े से समझें और उसे सम्मान दें। कुछ प्रक्रियाएँ कक्षा-कक्ष से बाहर की हो सकती हैं, उसे इसका हिस्सा बनाते हुए सिखाने की नई पहल की जा सकती है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी कुछ मान्यताओं में बदलाव लाएँ और साथ ही कुछ नए रास्ते भी बनाएँ, मसलन—

- सर्वप्रथम, हमें सामाजिक और आर्थिक पहलुओं के आधार पर बच्चों की तुलना करना, उनके बारे में कोई राय बनाना और उनपर कोई लेबल लगाना छोड़ना पड़ेगा।
- हर बच्चे में सीखने की क्षमता होती है, चाहे वे किसी भी पृष्ठभूमि से हों बशर्ते उन्हें सीखने के समान अवसर और विविध तथा मनोरंजक तरीक़े उपलब्ध हों। सभी बच्चों को विद्यालय अपना हिस्सा बना सके इसके लिए प्रयास हो और बनी-बनाई मान्यताओं को तोड़ने की क़वायद हो। बच्चों के ऊपर विश्वास करना होगा कि अगर उन्हें उचित सम्मान और सहयोग मिला तो वे सीख जाएँगे।
- प्रक्रिया को ज़्यादा जगह देने की ज़रूरत है, बजाय इसके कि कितने बच्चे प्रश्न-उत्तर रटकर सफल हुए। बच्चों में रचनात्मक चिन्तन का विकास करना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए विद्यालय में तरह-तरह की शैक्षणिक गतिविधियाँ शुरू की जा सकती हैं, जैसे विषय को अपने आस-पास के परिवेश से जोड़ना, कक्षा में समुदाय के सदस्यों से बातचीत करवाना इत्यादि। बच्चों के साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन देना चाहिए। हमारे कुछ विद्यालयों के अनुभव बताते हैं कि इस प्रक्रिया ने उन बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में काफ़ी मदद की जो किसी कारण से पीछे रह गए थे और उनमें विद्यालय आने का उत्साह भी बढ़ा। सबसे ज़्यादा निराशा तब होती है, जब हम खेल को भी खेल भावना से नहीं खेलते और उसमें प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता करने लगते हैं। खेल अगर ख़ुशी और उत्साह के लिए हो तो इसका स्वरूप बदल जाएगा। इससे आपसी सौहार्द विकसित होता है और सामाजिक विकृतियाँ कम होती हैं। जाति और लिंग के बन्धन ढीले होते हैं।
- हमें यह मानना चाहिए कि शिक्षकीय पेशा या वृत्ति (प्रोफ़ेशन) सभी वृत्तियों से अलग है। शिक्षक साथियों को बच्चों के साथ संवेदनशीलता से पेश आना चाहिए। शिक्षकीय वृत्ति एक नई पीढ़ी को तैयार करने की प्रक्रिया है, जिसमें समुदाय अपने बच्चों को एक विश्वास के साथ विद्यालय भेजता है और यह सोचता है कि वह आज जहाँ है, वहाँ से दूसरी पीढ़ी आगे बढ़ रही होगी।

अब अगर हम सब पर इतनी बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं तो ज़ाहिर है हमारे काम का दायरा भी बड़ा है और उसके लिए अपने को लगातार आगे बढ़ाने का काम साथ-साथ करते जाना होगा तभी हम एक संवेदनशील, तर्कशील, चिन्तनशील समाज बना पाएँगे।



सुनील साह 2009 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन से जुड़े हुए हैं। पहले वे उत्तराखण्ड में कार्यरत थे और आजकल छत्तीसगढ़ में हैं। इसके पहले वे राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा से सम्बद्ध रहे हैं। उनसे sunil@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

हर बच्चे के लिए चार संक्रियाएँ

स्वाती सरकार

बुनियादी संख्यात्मक कौशल आज की दुनिया में बहुत ज़रूरी हैं। इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि कोई व्यक्ति कौन-सा कार्य करता है, रोज़मर्रा के जीवन में जोड़ना, घटाना, गुणा करना और भाग देने की क्षमता का होना सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है। ज़ाहिर है कि यह संक्रियाएँ प्राथमिक स्तर के गणित के पाठ्यक्रम का एक मुख्य घटक हैं। लेकिन शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट — असर (ASER) सहित कई रिपोर्टों से पता चलता है कि हमारे बच्चे इन कौशलों को पर्याप्त रूप से सीख नहीं पा रहे हैं। इसके क्या कारण हो सकते हैं?

कारण 1 : संख्याएँ, स्वभाव से ही काफ़ी अमूर्त होती हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति में मौजूद नहीं हैं। उदाहरण के लिए हम पाँच उँगलियाँ दिखा सकते हैं या पाँच बार ताली बजा सकते हैं या किसी चर्चा के पाँच बिन्दु गिन सकते हैं, लेकिन हम पाँच को दिखा नहीं सकते। 5 एक अंक है, एक प्रतीक है, जो पाँच का प्रतिनिधित्व करता है (और लिपि के अनुसार यह प्रतीक बदलते हैं)।

कारण 2 : बच्चों से बहुत छोटी उम्र में ही संख्याओं की इस अमूर्त अवधारणा को सीखने की अपेक्षा की जाती है जबकि उस उम्र में उनमें अमूर्त विचारों को समझने की क्षमता नहीं होती।

कारण 3 : जो शिक्षक बच्चों का परिचय संख्याओं की दुनिया से कराते हैं, उन्हें स्वयं संख्याओं के साथ सहज होना चाहिए।

कारण 4 : सम्भव है कि इन शिक्षकों को अपने विद्यार्थी जीवन में अच्छी गणित शिक्षा न मिली हो और हमारे देश की शिक्षक-शिक्षा प्रणाली ने भी इन्हें अपने विद्यार्थियों की मदद करने में सक्षम न किया हो।

परिणामस्वरूप हम दो मुख्य मुद्दे देखते हैं :

मुद्दा 1 : बच्चे इबारती सवालों को हल करने में असमर्थ हैं। कुछ हद तक इसका कारण ठीक से न पढ़ पाना और सवाल न समझ पाना हो सकता है। लेकिन कई बच्चे इबारती सवालों में दी गई स्थिति को गणितीय व्यंजकों में बदल पाने में असमर्थ होते हैं। उन्हें पता नहीं होता कि कब किस संक्रिया का उपयोग करना है और अकसर वह संकेत शब्दों (कीवर्ड) पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं।

मुद्दा 2 : बच्चे बहुअंकीय संख्याओं और मानक कलन गणित (एल्गोरिदम) से जुड़ी गणना में ग़लतियाँ करते हैं। घटाव के जिन सवालों में दो बार उधार लेना पड़ता है, जैसे कि $500 - 283$, वे ज़्यादा कठिन होते हैं और वास्तविक जीवन में ऐसी स्थिति आती भी है, जैसे यदि आप 283 रुपए की कोई चीज़ ख़रीदते हैं और 500 रुपए का नोट देते हैं तो आपको कितने रुपए वापिस मिलेंगे। असर की रिपोर्ट और हमारे अवलोकन के अनुसार सभी शिक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में सबसे अधिक समस्या भाग की संक्रिया में आती है। इसका मुख्य कारण स्थानीय मान की समझ न होना है। तो इसके लिए क्या किया जा सकता है?

इस लेख में हम तीन मुख्य चरणों पर ज़ोर देना चाहेंगे। अधिक विवरण के लिए पाठक सन्दर्भ सूची में दी गई स्रोत सामग्रियों को देख सकते हैं।

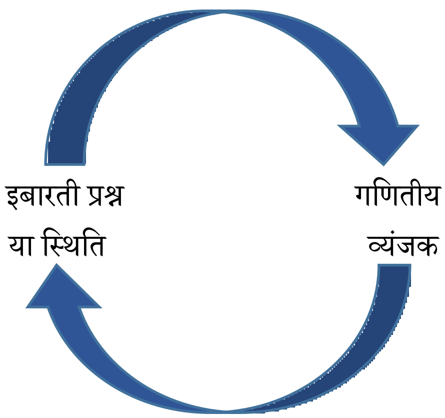
चरण 1 : अर्थ आधारित दृष्टिकोण

पहला, किसी भी संक्रिया को सिखाना शुरू करने से पहले, स्थानीय मान के बारे में बच्चों की समझ की जाँच करें, ख़ासकर यदि वे किसी दी गई मात्रा (जैसे, एक चम्मच चावल में दानों की संख्या) को संख्या नाम और अंक के साथ जोड़ने में सक्षम हों। स्थानीय मान का मूल विचार (या अब हम संख्या कैसे लिखते हैं) यह है कि जब भी हमारे पास दस हों तो उसका एक बण्डल बनाया जाए। तो, कोई भी संख्या $\geq$ दस, (i) कितने बण्डल हैं और (ii) बण्डल के बाहर कितने हैं यानी अबद्ध या खुले हुए हैं, उन अंकों का संयोजन है। इन बण्डलों को दहाई और खुले हुओं को इकाई कहा जाता है। जैसे ही हम दस बण्डलों तक पहुँचते हैं, तब हमें एक बड़ा बण्डल बनाना पड़ता है, और हम इसे सैकड़ा कहते हैं। इसी तरह जब हमें दस सैकड़े मिलते हैं तो हम और भी बड़े बण्डल बनाते हैं, जिसे हज़ार कहते हैं आदि।

इस बण्डलिंग की समझ बनाने के लिए और उसे लिखने के तरीक़े, जिसे स्थानीय मान कहा जाता है, को स्पष्ट करने के लिए ऐसी चीज़ें लेनी चाहिए जिनके बण्डल बच्चे बना सकें। इसके लिए तीलियाँ या झाड़ू की सींकें या टूथपिक्स और रबर बैंड बहुत अच्छे रहते हैं क्योंकि इन्हें जल्दी से बाँधा और खोला जा सकता है।

दूसरा, प्रत्येक संक्रिया का परिचय देने के लिए उपयुक्त स्थितियों और इबारती सवालों का उपयोग करने के साथ-साथ स्थिति को जीवन्त बनाने के लिए कुछ सामग्रियों को भी काम में लाएँ। इसके बाद तत्सम्बन्धी प्रतीकों यानी $=, +, -, \times$ और $\div$ का परिचय दें और कुछ ऐसे अभ्यास कराएँ जो स्थितियों या इबारती सवालों को सम्बन्धित गणितीय व्यंजकों के साथ जोड़ते हैं। पहली कक्षा की एनसीईआरटी की गणित की पाठ्यपुस्तक में जोड़ और घटाव का और तीसरी कक्षा में गुणा और भाग का परिचय अच्छी तरह से दिया गया है।

तीसरा, बच्चों से दिए गए व्यंजकों जैसे कि 38 + 14, 72 – 55 आदि के लिए इबारती सवाल बनवाएँ। यह गतिविधि बच्चों को सृजनशील बनने में मदद करती है, उनकी भाषा के विकास को बढ़ावा देती है और उन्हें यह समझने में मदद करती है कि किन स्थितियों को किस संक्रिया द्वारा दर्शाया जा सकता है। यह गतिविधि व्यंजकों से स्थितियों तक जाकर चक्र (चित्र 1) को भी पूरा करती है। इसके अलावा, बच्चों के एक समूह द्वारा रचित इबारती सवालों को दूसरे समूह को हल करने के लिए दिया जा सकता है।



चित्र 1

चौथा, संक्रियाओं के बीच सम्बन्ध पर ज़ोर देने के लिए स्थिति को बदलें।

उदाहरण के लिए, इस स्थिति पर विचार करें : आपके पास 8 फूल हैं और मेरे पास 5 फूल हैं, तो हमारे पास कुल कितने फूल हैं? यह 8 + 5 = __ से जुड़ता है, जो जोड़ का व्यंजक है। अब इसे थोड़ा बदल दें : आपके पास 8 फूल हैं और कुल मिलाकर हमारे पास 13 फूल हैं, तो फिर मेरे पास कितने फूल हैं? इसका उत्तर 8 + __ = 13 है जो जोड़ का समीकरण है। रोल-प्ले के माध्यम से, दूसरा बच्चा इसके जैसा ही कोई और सवाल पूछ सकता है जिसका उत्तर 13 – 5 = __ हो? तो हालाँकि 'कुल मिलाकर' का मतलब जोड़ होता है, पर यह एक व्यंजक (8 + 5) या एक समीकरण (8 +__ = 13) हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप घटाना (13 – 8) पड़ता है। इससे बच्चों को स्थिति को पूरी तरह समझने में मदद मिलती है और संकेत शब्दों पर अधिक निर्भर नहीं होना पड़ता है।

इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह इस बात पर ज़ोर देता है कि कैसे हर जोड़ को दो घटावों के रूप में दर्शाया जा सकता है। गुणा और भाग का सम्बन्ध जोड़ने के लिए भी इसी तरीक़े को अपनाया जा सकता है।

चरण 2 : कलन गणित — कब, कैसे और क्यों

प्रत्येक संक्रिया शुरू करने के तुरन्त बाद मानक कलन विधि अपनाने की बजाय, बच्चों को सवाल को हल करने के विभिन्न तरीक़ों का पता लगाने दें। संख्याओं (<100) के जोड़ और घटाव के सवालों को हल करने के लिए संख्याओं के 10 × 10 बोर्ड के साथ-साथ गणितमाला की संख्या रेखा के प्रतिरूपण की सहायता ली जा सकती है। उदाहरण के लिए : 37 + 25 को इनमें से किसी भी तरीक़े से हल किया जा सकता है :

- 37 + 10 + 10 + 3 + 2 अर्थात 37 ⟶ 47 ⟶ 57 ⟶60 ⟶ 62
- 37 + 3 + 20 + 2 अर्थात 37 ⟶ 40 ⟶ 60⟶ 62
- 37 + 30 – 5 अर्थात 37 ⟶ 67 ⟶ 62

ध्यान दें कि यह मानक कलन विधि से बहुत अलग हैं जिसमें

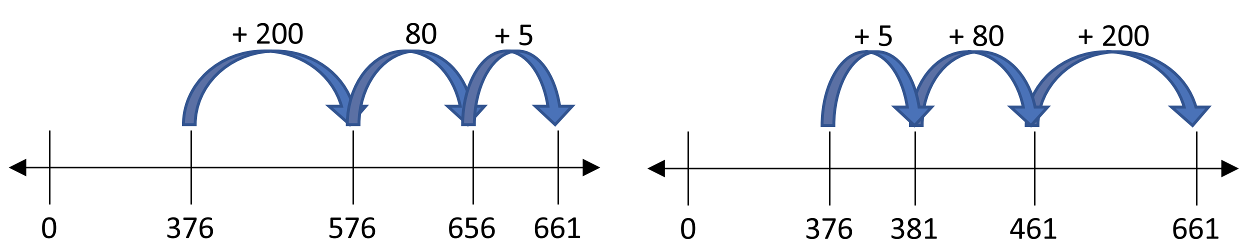
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27	28	29	30
31	32	33	34	35	36	37	38	39	40
41	42	43	44	45	46	47	48	49	50
51	52	53	54	55	56	57	58	59	60
61	62	63	64	65	66	67	68	69	70
71	72	73	74	75	76	77	78	79	80
81	82	83	84	85	86	87	88	89	90
91	92	93	94	95	96	97	98	99	100

इकाई व दहाई को अलग-अलग करते हैं और दहाई को जोड़ने से पहले इकाई को जोड़ते हैं, अर्थात, $37 + 25 = (30 + 7) + (20 + 5) = (7 + 5) + (30 + 20) = 12 + (30 + 20) = 2 + (10 + 30 + 20) = 2 + 60 = 62$

मानक कलन विधि की आवश्यकता तब पड़ती है जब हम दो से अधिक संख्याएँ जोड़ते हैं, उदाहरण के लिए किसी बिल का कुल जोड़ पता करते समय या जब हम बड़ी संख्याएँ (≥ 100) जोड़ते हैं।

उपयुक्त जोड़तोड़ (manipulative) की मदद से मानक कलन विधि बनाने में बच्चों की मदद करें। 100 से छोटी संख्याओं के साथ जोड़ और घटाव करने के लिए तीलियाँ और बण्डल काफ़ी अच्छे रहते हैं। जब बच्चे तीलियों और बण्डल के साथ काम करें तो उनसे कहिए कि वे प्रत्येक चरण को लिखें ताकि यह गतिविधि और प्रभावी हो सके।

2डी बेस-10 ब्लॉक, जिन्हें फ्लैट्स (सैकड़ा), लॉन्स (दहाई) और यूनिट्स (इकाई) या FLU के रूप में जाना जाता है, वे 1000 से छोटी संख्याओं के साथ-साथ गुणा और भाग के लिए भी बहुत अच्छे रहते हैं। पाठक सन्दर्भ सूची (स.सू.) के 15वें लेख में इसके बारे में अधिक जानकारी पा सकते हैं।



बाएँ से दाएँ
पहले चरण के बाद बेहतर अनुमान

दाएँ से बाएँ
अन्त तक कोई अच्छा अनुमान नहीं

चित्र 2

यह भी महत्त्वपूर्ण है कि बच्चों को मानक कलन विधि के बारे में अपने सवालों के जवाब मिलें। उदाहरण के लिए, भाग संक्रिया बाईं ओर से क्यों शुरू होती है जबकि शेष तीनों संक्रियाएँ दाईं ओर से शुरू होती हैं? (स.सू. लेख 10)। बच्चों को यह पता लगाने देना चाहिए कि वे किस पद्धति को पसन्द करते हैं और क्यों। उदाहरण के लिए, $376 + 285$ को संख्या रेखा पर दो तरह से हल किया जा सकता है, बाएँ से दाएँ अर्थात सैकड़े से शुरू करते हुए या दाएँ से बाएँ यानी इकाई से (चित्र 2) शुरू करते हुए। दाएँ से बाएँ ओर वाले तरीक़े में फिर से लिखना नहीं होता (मानक कलन विधि में), बाएँ से दाएँ ओर वाला तरीक़ा पहले चरण के बाद जोड़ का बेहतर अनुमान प्रदान करता है।

चरण 3 : अभ्यास

यह बात सही है कि अर्थ निर्माण महत्त्वपूर्ण है, लेकिन अभ्यास का कोई विकल्प नहीं है। किसी भी कौशल में महारत हासिल करने के लिए अभ्यास आवश्यक है। एक अंकीय संख्या के साथ जोड़ (और घटाव) के स्वचालनीकरण और एक अंकीय संख्या के गुणनफल के त्वरित स्मरण से संगणना में दक्षता प्राप्त करने में मदद मिलती है। टेन-फ्रेम्स (स.सू.लेख 17) एक अंकीय संख्या के योग तथ्यों के स्वचालनीकरण में मदद करते हैं, विशेष रूप से संख्या ≥ 5 के लिए। इसी तरह से बच्चों को पहाड़ों का निर्माण करना चाहिए। साथ ही उन्हें यह भी सिखाना चाहिए कि 10 या 5 के पहाड़ों का उपयोग करते हुए उन गुणनफलों को कैसे याद करें जो 6, 7 और 8 के गुणन से प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए,

$6 \times 8 = 5 \times 8 + 8 = 40 + 8 = 48$

या $8 \times 7 = 10 \times 7 - 7 - 7 = 70 - 7 - 7 = 63 - 7 = 56$

इससे बच्चे शुरुआत से ही पहाड़ों को फिर से देखे बिना गुणनफलों को खोजने में सक्षम होंगे। 9 के पहाड़े का निर्माण उक्त तरीक़े से किया जा सकता है और बच्चे इसमें विभिन्न पैटर्न का पता लगाते हैं। इसलिए 9 से जुड़े गुणनफलों को याद रखना आसान हो जाता है।

अभ्यास को कई तरीक़ों से रोचक बनाया जा सकता है। वॉल एक्टिविटी (स.सू. लेख 18) और रैंडम डिजिट गेम (स.सू. लेख 19) कुछ ऐसे ही विकल्प हैं। थिंकिंग स्किल पुलआउट (स.सू. लेख 12) अनेक प्रकार की खोज करने के अवसर देता है। इनसे अपने आप ही बहुत सारा अभ्यास होता है।

दो क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें प्रायः उपेक्षित किया जाता है, हम इस लेख को उन पर चर्चा के साथ समाप्त करना चाहेंगे :

(i) शून्य के साथ संक्रियाएँ; तथा,

(ii) इन संक्रियाओं के कुछ गुणधर्म

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे शून्य को केवल एक स्थान धारक नहीं बल्कि एक संख्या के रूप में मानें। इसे समझने का सबसे अच्छा तरीक़ा इस बात पर विचार करना है कि यह संख्या चारों संक्रियाओं में कैसे भाग लेती है। एनसीईआरटी और अन्य पाठ्यपुस्तकों में शून्य के साथ जोड़ और घटाव शामिल किए गए हैं। पर शून्य के साथ गुणा को अकसर नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है। इससे यह ग़लत धारणा बनती है कि गुणनफल हमेशा उन पूर्ण संख्याओं से बड़ा होता है जिन्हें गुणा किया गया था। शून्य के साथ भाग की समझ तो और भी कम है। $0 \div 4$

को तो फिर भी समझाया जा सकता है, लेकिन शून्य से भाग को अधिक बारीकी से जाँचने की आवश्यकता है। $6 \div 0 = __$ पर विचार करें। इसे गुणा के समीकरण के रूप में लिखा जा सकता है अर्थात $__ \times 0 = 6$। स्पष्ट है कि कोई भी संख्या इस रिक्त स्थान को नहीं भर सकती। दूसरी ओर, $0 \div 0 = __$ पर $__ \times 0 = 0$ के समीकरण के रूप में विचार करें। अब, हम जितनी संख्याएँ जानते हैं, वे सभी यहाँ आ सकती हैं! हम इतनी सारी संख्याओं में से एक संख्या कैसे चुन सकते हैं? इसलिए, अब स्थिति $0 \div 4$ के बिल्कुल विपरीत है!! इसलिए, शून्य द्वारा किसी भी संख्या, चाहे वह शून्य हो या ग़ैर-शून्य, का विभाजन अपरिभाषित है।

जोड़ और गुणा के क्रमविनिमय, साहचर्य और वितरण गुणधर्म आमतौर पर इस स्तर पर छिप जाते हैं। लेकिन वे मानक कलन विधि के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और उन्हें बच्चों को अनुकूल तरीक़े से सिखाया जा सकता है। दो अंकीय संख्याओं का दहाई और इकाई में विभाजन और मानक जोड़ कलन विधि के लिए संयोजन (ऊपर दिया गया उदाहरण $37 + 25$ देखें) में इस संक्रिया के क्रमविनिमय और साहचर्य गुणधर्मों के कई अनुप्रयोग शामिल हैं। दूसरी ओर बहुअंकीय गुणा में सीधे साहचर्य और वितरण गुणधर्मों का उपयोग किया जाता है।

$4 \times 30 = 4 \times (3 \times 10) = (4 \times 3) \times 10 = 12 \times 10 = 120$: इस प्रकार हम इस तरह के गुणनफलों का पता लगाने के बारे में बताते हुए गुणा के साहचर्य गुणधर्म का उपयोग करते हैं। इसके अलावा अगर बच्चों से यह पता लगाने के लिए कहा जाए कि क्या यह गुणधर्म घटाव और भाग के लिए हैं तो अच्छा होगा। वितरण का गुणधर्म $(40 - 12) \div 4$ जैसे उदाहरणों पर लागू होता है (क्यों?)।

बच्चों द्वारा चार बुनियादी संक्रियाओं में महारत हासिल करने से सम्बन्धित मुद्दों के बारे में हम जानते हैं और दुर्भाग्य की बात है कि यह मुद्दे लगातार बने हुए हैं। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि हम इनके समाधान भी काफ़ी लम्बे समय से जानते हैं। सेवापूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा जैसी बड़ी प्रणाली को बदलने के लिए बहुत सारा समय और प्रयास लगता है, हम आशा करते हैं कि यह लेख इच्छुक और जिज्ञासु शिक्षकों को कुछ हटकर करने के लिए दिशानिर्देश पाने में मदद कर सकता है। इसके लिए नीचे दी गई स्रोत सामग्रियों से जानकारी प्राप्त करने और शैक्षणिक विधियों को संशोधित करने की आवश्यकता होगी। लेकिन हम आश्वस्त कर सकते हैं कि यह प्रयास अन्ततः बहुत लाभदायी होगा जैसा कि देश भर के कई शिक्षकों ने अनुभव किया है।

References

1. ASER: http://www.asercentre.org//p/359.html
2. Math-Magic, Class 1-3, NCERT: http://ncert.nic.in/textbook/textbook.htm
3. Ganit Bodh, Digantar: http://www.digantar.org/uploads/pdf/publications.pdf
4. Place Value: http://www.teachersofindia.org/en/article/atria-pull-out-place-value
5. Addition: http://teachersofindia.org/en/article/atria-pullout-section-july-2013
6. Subtraction: http://teachersofindia.org/en/article/pullout-section-november-2013-teaching-subtraction
7. Multiplication: http://teachersofindia.org/en/article/pullout-section-march-2014-teaching-multiplication
8. http://teachersofindia.org/en/presentation/initiating-multiplication
9. Division: http://www.teachersofindia.org/en/article/pullout-section-july-2014-division
10. http://teachersofindia.org/en/ebook/thoughts-division-operation
11. Word problems: http://teachersofindia.org/en/article/word-problems-mathematics
12. Thinking Skills: http://teachersofindia.org/en/ebook/thinking-skills-pullout
13. Addition properties: http://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/resources-ara-vol-7-no-2-july-2018-exploring-properties-of-addition.aspx
14. Ganitmala: http://teachersofindia.org/en/article/making-ganitmala
15. Flats-longs-units: http://teachersofindia.org/en/article/making-multiple-versions-flats-longs-units-teach-numbers-and-their-operations
16. Arrow cards: http://teachersofindia.org/en/article/making-your-own-arrow-cards
17. Ten-frames: http://teachersofindia.org/en/article/using-ten-frames-inside-your-classroom
18. *Wall: http://teachersofindia.org/en/activity/brick-wall-math-game*
19. *Random digits: http://teachersofindia.org/en/activity/number-game-random-digits*



स्वाती सरकार स्कूल ऑफ़ कंटीन्यूइंग एजुकेशन एण्ड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक हैं। गणित उनके जीवन का दूसरा प्यार है (पहला प्यार ड्राइंग है)। उन्होंने भारतीय सांख्यिकीय संस्थान से बीस्टैट-एमस्टैट और वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सिएटल से गणित में एमएस किया है। वे पाँच वर्षों से अधिक समय से बच्चों और शिक्षकों के साथ गणित सम्बन्धी कार्य कर रही हैं और सभी तरह की व्यावहारिक व क्रियाशील गतिविधियों, विशेष रूप से ओरिगेमी, में गहरी दिलचस्पी रखती हैं। उनसे swati.sircar@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल

स्कूल में पहली पीढ़ी के बच्चों का शिक्षण | मुख्य सबक

विद्या दास

बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे, वे ऊर्जा से भरे हुए थे और हरगिज़ अपनी सीटों पर बैठना नहीं चाहते थे, हालाँकि उनमें से सभी इधर-उधर भाग नहीं रहे थे। केवल पाँच या छह बच्चे चुलबुले थे और शोर मचा रहे थे। जब मैं जाकर शान्त बच्चों के पास बैठ गई तो चुलबुले बच्चे मेरे पास आकर अपना लिखित कार्य दिखाने लगे। उनमें से कई बच्चे मेरा ध्यान आकर्षित करने के लिए इतनी जल्दी में थे कि उन्होंने अपना काम भी पूरा नहीं किया था। मैंने सख़्ती से उनसे कहा कि जब उनकी बारी आएगी तब मैं उनका काम देखूँगी। सबसे छोटे वाले बच्चे ने मुझे अपनी सीट की ओर खींचने की कोशिश की। एक अन्य बच्चे ने उसे समझाया कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि मैं उनकी गुरु माँ (मुख्य शिक्षिका) हूँ। वह छोटा बच्चा रुक गया तथा वे सभी वापस अपने-अपने स्थानों पर चले गए।

मैं अग्रगामी स्कूल की दूसरी कक्षा में थी, जो जनजातीय क्षेत्र के पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चों के लिए है, जिन्हें आमतौर पर पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के रूप में जाना जाता है। हालाँकि बच्चे जन्म लेते ही सीखना शुरू कर देते हैं, लेकिन इन बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि उनके माता-पिता कभी स्कूल गए ही नहीं हैं। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में जब शिक्षक ज़बरदस्ती उन पर अकादमिक कौशल लादने का प्रयास करते हैं तो वे अकसर, लगभग पूरी तरह से दब्बूपन की हद तक विनम्र बन जाते हैं। जबकि अन्य मौकों पर वे कुछ सीख ही नहीं पाते, क्योंकि शिक्षक यह मान लेते हैं कि यह बच्चे तो सीख ही नहीं सकते और अपने प्रयास करना बन्द कर देते हैं। और यह भी असामान्य नहीं है कि दोनों स्थितियाँ एक साथ बनें : एक तो बच्चे सीख नहीं पाते और इसके साथ ही बच्चों को भय, हीनता और दब्बूपन की ओर धकेल दिया जाता है। अग्रगामी स्कूल का प्रयास होता है कि वह इन बच्चों को बिना किसी डर या तनाव के सीखने में मदद कर सके।

पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चों के शैक्षिक कौशलों का निर्माण करने में उनकी मदद करने के दौरान कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिसे आज ज़्यादा पहचाना जा रहा है, जबकि शिक्षा तंत्र अभी भी अपना ज़्यादातर ध्यान नामांकन, ड्रॉपआउट और शौचालय पर ही केन्द्रित करता है। इन मात्रात्मक संकेतकों का महत्व तभी तक है जब तक हम उनमें से अधिकांश को शिक्षा का लक्ष्य न मान लें। उदाहरण के लिए, सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार अब हमारे पास लगभग सौ प्रतिशत नामांकन दर है, लेकिन यदि अधिगम-स्तर निराशाजनक हो तो नामांकन का क्या मतलब है? प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी करने तक बहुत सारे बच्चे पढ़ तक नहीं पाते! और उस चरण में बाक़ी बच्चों में से भी अधिकांश की पठन क्षमता बहुत ही कम होती है।

अधिकांश स्कूली शिक्षा तब शुरू होती है जब बच्चा काफ़ी हद तक धाराप्रवाह पढ़ सके। अगर कोई बच्चा धाराप्रवाह नहीं पढ़ सकता और जो पढ़ रहा है उसे समझ नहीं पा रहा तो स्कूली शिक्षा शुरू ही नहीं हो पाती क्योंकि स्कूल में लगभग सब कुछ किताबों से ही पढ़ाया जाता है। इसलिए किसी भी विषय को सीखने के लिए पढ़ना आना चाहिए। यदि कोई बच्चा, समय पर, अच्छी तरह से पढ़ने में सक्षम नहीं है तो वह समान अवसरों से वंचित हो जाता है। धीर झींगरन[i] इस सब पर काफ़ी ज़ोर देते हैं। वे बताते हैं कि पढ़ना एक मूलभूत कौशल है, जिस पर सारी औपचारिक शिक्षा निर्भर करती है। अगर कोई बच्चा जल्दी और अच्छी तरह से पढ़ना नहीं सीखता है तो वह आसानी से अन्य कौशलों तथा ज्ञान में महारत हासिल नहीं करेगा और स्कूल में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाएगा। वे आगे बताते हैं कि जो बच्चे बाद में पढ़ना या धीरे-धीरे पढ़ना सीखते हैं, वे पढ़ने से बचने की कोशिश करते हैं। ऐसे बच्चे अपनी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों को समझने में असमर्थ होते हैं, जिससे उनके मन में स्कूल के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है और ऐसे बच्चों की स्कूली पढ़ाई पूरी होने की सम्भावना कम ही होती है।

इस प्रकार, अकसर पहली पीढ़ी के स्कूली बच्चे (फ़र्स्ट जेनेरेशन स्कूल चिल्ड्रन - एफजीएस) अगर स्कूल में दाख़िला लेते भी हैं तो जल्दी ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। प्राथमिक विद्यालय में यह अन्तर और अधिक नज़र आता है। रिपोर्टों से पता चलता है कि स्कूल में, एफजीएस बच्चों की उपस्थिति कम होती है, उनका प्रदर्शन एक-सा नहीं होता, उनकी पढ़ाई में बाधा पड़ती है और उनका आत्म-सम्मान कम होता है। अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों के सामने कई समस्याएँ आती हैं जैसे पाठ्यक्रम सम्बन्धी मुद्दे, गृहकार्य पूरा करने में कठिनाई का अनुभव, समय-सारिणी और शिक्षण के साथ समायोजन न कर पाना आदि। ग़ैर-एफजी विद्यार्थियों

[i] रिटायर्ड सिविल सर्वेंट, लैंग्वेज एण्ड लर्निंग फाउण्डेशन के संस्थापक निदेशक

की तुलना में एफजी के दोगुने से अधिक विद्यार्थी स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित ऐसी ही समस्याओं का सामना करते हैं। अध्ययन यह भी बताता है कि एफजीएस बच्चों के परिवारों का जीवन स्तर भी समुचित नहीं होता है। यह बात निर्विवाद है कि एफजीएस बच्चों के परिवारों के ख़राब जीवन स्तर और उसके परिणामस्वरूप गुज़ारा करने के संघर्षों से जूझते रहने के कारण बच्चों को स्कूल में कई बाध्यताओं और मजबूरियों का सामना करना पड़ता है। इन बच्चों को पढ़ाई के दौरान काम करने के लिए समय निकालना पड़ सकता है और उनके लिए कोर्स-सामग्री, स्टेशनरी और निजी ट्यूशन की कक्षाओं के लिए खर्च करना भी सम्भव नहीं होता।

अन्ततः एफजीएस बच्चों को अपने अन्य भाग्यशाली साथियों की तुलना में स्कूल में प्रतिकूल वातावरण का सामना करना पड़ता है। कई तुलनात्मक रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि उनमें से अधिकांश बच्चे यह अनुभव करते हैं कि उनके शिक्षक और प्रधानाध्यापक उनकी उपेक्षा करते हैं और उनके प्रति उदासीन हैं। इससे उनके आत्म-सम्मान को तो चोट पहुँचती ही है पर साथ ही उनकी महत्वाकांक्षा भी प्रभावित होती है जो उनके ड्रॉपआउट की उच्च दरों का एक कारण हो सकती है। तब यह एक विषम चक्र बन जाता है: एफजीएस बच्चों को अपने माता-पिता से पर्याप्त शैक्षिक सहायता नहीं मिलती है, इसलिए वे अच्छी स्कूली शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं और इसलिए वे अपने स्वयं के बच्चों को स्कूल में अच्छी तरह से पढ़ाई करने में मदद नहीं कर सकते। लड़कियों की स्थिति तो और भी बदतर है और इस बात का सबूत यह है कि जनजातीय लड़कियों और महिलाओं में सबसे कम साक्षरता है।

इस कड़ी को कोई कैसे तोड़ सकता है? अधिकांश ग़ैर-एफजीएस परिवारों में (जिसमें माता-पिता और/ या दादा-दादी ने कम से कम हाई स्कूल तक पढ़ाई की है), वयस्क लोग बच्चे को अक्षर-ज्ञान, गिनती और संख्याओं जैसे स्कूली अधिगम के शुरुआती कौशल सिखाते हैं। ज़्यादातर ऐसा घर पर ही किया जाता है जहाँ घर का कोई सदस्य बच्चे को पढ़ाता है। जैसे माता-पिता या कोई बुज़ुर्ग रिश्तेदार बच्चे को अक्षर सिखाता है, उसे भाषा के अक्षरों को पहचानने और लिखने के लिए प्रोत्साहित करता है, वस्तुओं के नामों अथवा परिवार के सदस्यों के नामों की वर्तनी सिखाता है आदि। इसके अलावा इन घरों में मुद्रित सामग्री भी होती है और बच्चे माता-पिता और परिवार के पढ़ना जानने वाले अन्य सदस्यों के साथ किताबें, समाचारपत्र, कैलेंडर पढ़ने का प्रयास करते हैं, उन्हें दिलचस्प एवं छोटे-छोटे समाचार पढ़ कर सुनाये जाते हैं, इत्यादि। किसी भी चिह्नित शिक्षणशास्त्र से अधिक मदद इस बात से मिलती है कि माता-पिता बड़े प्यार और सरोकार के साथ बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देते हैं, बच्चों को उनकी देखभाल और दृढ़ाग्रह से भरा माहौल मिलता है। इसलिए स्कूल जाना शुरू करने तक ग़ैर-एफजीएस बच्चे पढ़ना-लिखना सीख जाते हैं और उन्हें अपने एफजीएस साथियों की तुलना में स्पष्ट रूप से लाभ होता है। अग्रगामी का अनुभव बताता है कि इससे दूसरी पीढ़ी के स्कूली बच्चों को भी मदद मिलती है। अपने एफजी साथियों की तुलना में शुरुआती कक्षाओं में उनका अधिगम स्तर काफ़ी बेहतर होता है।

सामान्यतः शिक्षक बच्चों को इन कौशलों को सिखाने की तकनीकों से लैस नहीं होते हैं। शिक्षक-शिक्षा के अधिकांश पाठ्यक्रमों में बच्चों को पढ़ना सिखाने के शिक्षणशास्त्र पर बहुत कम चर्चा की गई है और साथ ही किंडरगार्टन और पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तकों का डिज़ाइन भी ऐसा नहीं है जो बच्चे को धाराप्रवाह पढ़ने के कौशल विकसित करने में मदद करे।

इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, अग्रगामी स्कूल में उन जटिल समस्याओं को सम्बोधित करने पर ध्यान दिया गया है जो एफजीएस बच्चों की स्कूली शिक्षा को प्रभावित करती हैं। यह विकसित होता शिक्षणशास्त्र, कई तरह से शिक्षकों की मदद करने का प्रयास करता है जैसे उन बाधाओं और चुनौतियों को समझना जिनका सामना बच्चे करते हैं, उनके अधिगम सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर विचार करना (जिसमें उपस्थिति, स्वास्थ्य, स्कूल में सहज अनुभव करना, जो सिखाया जा रहा है उसे समझना, संलग्नता, ध्यान केन्द्रित करना आदि शामिल हैं), और इन्हें सम्बोधित करने के लिए दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली विकसित करना। यह शिक्षणशास्त्र पारम्परिक दृष्टिकोण और विधियों से आगे जाकर शिक्षकों को समाधान खोजने के लिए प्रोत्साहित करता है और साथ ही बदलते हुए प्रतिमान को समझने में भी मदद करता है ताकि वे मौलिक नवीन उपागम को समझ सकें और उसे अपने शिक्षण-अभ्यास में शामिल कर सकें।

ऐसा ही एक बदलाव भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में किया गया है। स्कूल में भाषा शिक्षण बच्चे को पढ़ना सिखाने के साथ शुरू होता है जिसमें बच्चे को पारम्परिक रूप से अक्षरों को उनकी विभिन्न आकृतियों के साथ याद करना पड़ता है जो कि बच्चे के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। इसका मतलब है करीब 50 असंगत प्रतीकों के रूप और ध्वनि को याद रखना, जो तब तक काफ़ी अर्थहीन होते हैं जब तक कि बच्चा अपने द्वारा बोले जाने वाले शब्दों का सम्बन्ध अक्षरों के साथ नहीं समझ लेता। कम साक्षरता के कारण प्रारम्भिक शिक्षा में इसलिए बाधा पड़ती है क्योंकि साक्षरता-शिक्षण वर्णमाला को ज़बरदस्ती याद कराने के साथ शुरू होता है और बच्चे के संज्ञानात्मक संकायों को संलग्न नहीं करता। वर्णमाला या वर्णमाला केन्द्रित विधियों के माध्यम से बच्चे में पठन और भाषा कौशल विकसित करना एक नकारात्मक और कठिन कार्य है, क्योंकि बच्चा जो कुछ भी जानता है उनसे वर्णमाला के प्रतीकों का कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

जब समय के साथ-साथ यह साबित हो गया कि यह पद्धति प्रभावकारी नहीं है (तब तक हमने अनेक बच्चों के कई

साल बर्बाद कर दिए थे), तब एक बदलाव के बारे में सोचा गया जिसमें बच्चों को शब्द एवं वर्णमाला के सम्बन्ध (जैसे 'ए' फॉर ऐप्पल इत्यादि) के माध्यम से सीखने में मदद की गई। अँग्रेज़ी की तुलना में ध्वन्यात्मक रूप से अधिक विस्तृत (और शायद अधिक सटीक) लिपियों वाली भाषाओं में, इसे सिखाना आसान बनाने के लिए कई कविताएँ लिखी गई हैं, फिर भी, बच्चे पढ़ना नहीं सीख पाए क्योंकि सिखाने के यह तरीक़े शिक्षकों को बेहद मुश्किल लगे। इस पद्धति में अधिगम के स्पष्ट तर्क का भी अभाव है क्योंकि अक्षर 'ए' केवल शब्द के पहले वर्ण का प्रतीक है और बच्चे को शब्द के बाक़ी अक्षरों की ध्वन्यात्मकता से जुड़ना मुश्किल लगता है।

इस समस्या से निपटने के लिए हमने समग्र भाषा दृष्टिकोण को अपनाने की सोची। जब बच्चा स्कूल आता है तो वह एक भाषा जानता है। इसका मतलब है कि उसके पास कम से कम 1500 से 2000 शब्दों की शब्दावली होती है और वह सम्प्रेषण के लिए इस शब्दावली में से शब्द चुनने और उसे अनुक्रमित करने का तरीक़ा जानता है। वह आदेश से लेकर प्रश्न व प्रश्न से लेकर भावनाओं, घटनाओं का वर्णन एवं कहानियों से जुड़े अर्थों की एक पूरी श्रंखला के सम्प्रेषण के लिए और उसे समझने के लिए इसका प्रयोग भी करता है। वह सरल गीत और कविताओं को समझ सकता है, उनका आनन्द ले सकता है, उन्हें गा सकता है, अतीत, वर्तमान और भविष्य काल को समझ सकता है और क्रोध, दुःख, सुख जैसे अमूर्त अर्थों को समझ और समझा सकता है। वह परिवार के सदस्यों और गाँवों के नाम भी याद कर सकता है और उन्हें समझकर उस जगह या व्यक्ति को पहचान सकता है। यह सब ऐसे कौशल हैं जो बुनियादी साक्षरता या पढ़ने और लिखने के लिए आवश्यक कौशलों से कहीं अधिक जटिल हैं।

फिर हमने खुद से पूछा : जब बच्चा स्कूल आना शुरू करता है तो क्या सीखने-सिखाने के लिए उसके इस ज्ञान और क्षमता को आधार बनाया जा सकता है? शिक्षक पहली बार स्कूल जाने वाले बच्चे की भाषा सीखने में मदद करने के लिए इन तरीक़ों को अपना सकते हैं जैसे- उसकी स्लेट पर फूलों, सब्ज़ियों आदि की साधारण आकृतियाँ बनाना, फिर कविताएँ और एक्शन गीत सिखाना, बच्चे के नाम से शुरुआत करके उसके परिचित लोगों के नामों तक जाना, फिर शब्द-चित्र, छोटे वाक्य और उसके दैनिक जीवन की अन्य चीज़ों और फिर उसकी परिचित कविताओं को लिखना आदि। अगर बच्चा अपना नाम और फिर अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि के नाम लिखकर सीखना शुरू करता है, तो उसका स्कूल एवं कक्षा से तुरन्त जुड़ाव हो जाता है और उसमें उत्साह का भाव पैदा होता है। जब वह घर जाता है और यह नाम लिखकर अपने परिवार के सदस्यों को दिखाता है तो उसे सकारात्मक समर्थन मिलता है जो उसके कक्षा-अधिगम को बेहद सार्थक बनाता है तथा वह और अधिक सीखने के लिए स्कूल व कक्षा में वापस आने के लिए प्रोत्साहित होता है।

प्रारम्भिक कक्षा के शिक्षकों के साथ कई सत्रों में इन विचारों पर चर्चा की गई। कई महीनों तक इन विषयों पर औपचारिक और अनौपचारिक चर्चाएँ हुईं जैसे बच्चों को प्रभावी रूप से साक्षर बनाने में आने वाली समस्याएँ, उनके कारण, बच्चों की अनुक्रिया, स्कूल आने पर आदिवासी बच्चों के सामने आने वाली भाषा सम्बन्धी समस्याएँ आदि। शिक्षकों ने रटकर याद करने की बजाय बच्चों को परिचित शब्दों के माध्यम से सीखने में मदद करने के लिए शब्दावली के सेट और शिक्षण-सामग्री विकसित की।

फिर भी, कक्षाओं में शिक्षक पारम्परिक वर्णमाला-केन्द्रित तरीक़ों को ही अपनाते रहे और बहुत कम परिवर्तन हुआ। भाषा-शिक्षण को रचनात्मक और बाल-केन्द्रित तरीक़े में बदलने के बारे में इतनी सारी चर्चा और समझ के बाद भी शिक्षकों को ऐसा करना क्यों मुश्किल लगा? पता चला कि बच्चों को प्रतिदिन कक्षा में व्यस्त रखने के लिए शिक्षक इस तरीक़े के लिए संसाधन नहीं खोज पाए। इसलिए वे पुनः याद करने वाले पुराने तरीक़े पर चले गए। कुछ शिक्षकों को यह विश्वास नहीं था कि शुरुआत में सभी अक्षर सीखे बिना ही बच्चे कुछ सीख सकेंगे। कुछ कक्षाएँ द्विभाषी भी थीं, जिनमें लगभग आधे बच्चे आदिवासी भाषा बोलते थे और राज्य की भाषा उड़िया नहीं समझते थे।

आगे और चर्चाएँ हुईं, जिनके बाद सबने मिलकर एक पुस्तक तैयार की जो शिक्षकों को बाल- केन्द्रित शिक्षण का अनुसरण करने में मदद कर सके। इसके अलावा जिन शिक्षकों की प्रथम भाषा आदिवासी थी, उनको ऐसी कक्षाओं में पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया जिनमें आदिवासी बच्चे थे। कई ऐसे प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए गए, जिनमें शिक्षकों ने अपने अनुभव साझा किए कि वे उस पुस्तक का उपयोग कैसे कर रहे थे, शब्द-खेलों और चित्र-खेलों में ज़रूरत के मुताबिक़ बदलाव कर, उनका उपयोग वे विभिन्न मातृभाषाओं वाले बच्चों की मदद करने के लिए कैसे कर रहे थे।

इसके अलावा कक्षा की समस्याओं पर भी चर्चा की गई। इन सत्रों से बच्चों के पास ही मौजूद संसाधनों की पहचान करने में मदद मिली। शिक्षकों ने अपने कुछ अवलोकन भी साझा किए। इनमें प्रमुख बात यह थी कि बच्चे एक-दूसरे की मदद करने के लिए सदा तत्पर रहते थे, उदाहरण के लिए एक बच्चा अपना काम ख़त्म करने के बाद अक्सर अपने साथी की मदद करने लगता था। बच्चे अपने साथियों से सीखने के लिए भी तैयार रहते थे और अपने शिक्षकों से ज़्यादा अपने साथियों की बात सुनते थे। इन चर्चाओं ने बच्चों को बेहतर ढंग से समझने में मदद की और हमारे शिक्षण और टीएलएम में भी सुधार हुआ। पहली पुस्तक के बाद एक वर्कबुक प्राइमर डिज़ाइन की गई जो विद्यार्थियों को रचनात्मक और सृजनात्मक तरीक़ों से जुड़ने में मदद करे और शिक्षकों को ऐसी गतिविधियाँ करने में सक्षम बनाए जो बच्चों को साक्षरता और पढ़ने की दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ने में मदद कर सकें।

पहली कक्षा के लिए बनाई गई वर्कबुक ने चित्रमय प्राइमर के रूप में कार्य किया और बच्चे उसकी ओर आकर्षित हुए। इसमें रंग भरने, चित्र बनाने और शब्द-खेल से भरी हुई गतिविधियाँ थीं, इन रचनात्मक गतिविधियों को बच्चों ने बहुत मगन हो कर किया। प्राइमर ने शिक्षकों की भी मदद की क्योंकि इससे उन्हें आगे के खेल और पहेलियों के लिए तथा ब्लैकबोर्ड गतिविधियों के लिए नए विचार मिले। शिक्षकों ने देखा कि आमतौर पर बच्चों को प्राइमर के अभ्यास पूरा करने के लिए दो साल की आवश्यकता होती है, जिसके बाद वे पढ़ने से सम्बन्धित बुनियादी बातें सीख लेते हैं। बाद की कक्षाओं में बच्चों के पठन की क्षमताओं में सुधार करने के लिए सस्वर पठन, ब्लैकबोर्ड पठन और पठन व बोध के अभ्यास आदि तरीक़े अपनाए गए।

> सभी बच्चे समान गति से नहीं सीखते हैं। अग्रगामी स्कूल में प्रत्येक बच्चे को अपनी गति से सीखने और जैसा कि ऊपर बताया गया है, सीखने में अपने साथियों की भी मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे सामूहिक प्रयास का माहौल बनाता है जिसमें हर बच्चे पर ध्यान दिया जाता है। शिक्षक पाठ की व्याख्या नहीं करते हैं, लेकिन बच्चों को पाठ्यपुस्तक के पाठों को समझने में मदद करने के लिए विभिन्न प्रकार के अभ्यास करवाते हैं जैसे प्रश्न पूछना, शब्दों की पहचान कराना, दृश्य-स्मृति परीक्षण करना आदि। इसमें बच्चे पहले पैरा-दर-पैरा स्व-पठन करते हैं, फिर शिक्षक शब्दों को ज़ोर से बोलते हैं और बच्चे उन्हें पहचानते हैं।

इन सब आसान और मज़ेदार तरीक़ों के माध्यम से अग्रगामी स्कूल के पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को पढ़ने और भाषा-कौशल के निर्माण में मदद मिली है। इसलिए अब बच्चे सभी विषयों को सीखने में उत्सुकता दिखा रहे हैं क्योंकि उन्हें अपनी पसन्द और रुचि के विभिन्न विषयों और टॉपिक को पढ़ने और उनके बारे में जानने-खोजने में आनन्द आता है। इसी प्रकार वे लेखन में भी बहुत रुचि ले रहे हैं। डांगर कथा एक लघु समाचार-पत्रिका है जिसमें गाँव के बच्चों के जीवन की झलक, उनकी कल्पनाओं और अभिलाषाओं एवं बच्चे जिस नज़रिए से चीज़ों को देखते हैं आदि के बारे में लिखा जाता है। बच्चे इसके माध्यम से खुद को अभिव्यक्त करने और अपने स्कूली जीवन की घटनाओं तथा अनुभवों की रिपोर्ट लिखने के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं। शिक्षकों के सुझाव पर अब वे अपने लेखों के साथ जीवन्त और रंगीन चित्र भी बनाने लगे हैं। ड्राइंग और चित्रों के बारे में हमें यह कहते हुए गर्व हो रहा है कि अग्रगामी स्कूल में, बहुत ही कम शिक्षण के साथ, बच्चों की कल्पनाओं को अत्यन्त मुक्त रूप से फलने-फूलने दिया गया है।

इस अनुभव ने अग्रगामी स्कूल को सरकारी स्कूलों तक पहुँचने में मदद की है। इस प्रयास में, जो युवा उपर्युक्त दृष्टिकोण और तरीक़ों में प्रशिक्षित किए गए थे, उन्हें शुरुआती कक्षाओं में अधिगम में सुधार लाने के लिए अठारह सरकारी प्राथमिक स्कूलों में रखा गया। पूर्व अनुभव के साथ-साथ प्रशिक्षण और बुनियादी अवधारणाओं को समझने पर बहुत ज़ोर दिया गया था। जो वर्कबुक प्राइमर बच्चों और प्रशिक्षुओं को प्रदान की गई थी, उसमें अग्रगामी स्कूल में किए गए प्रारम्भिक कक्षा-शिक्षण के कई अवलोकन सत्र भी शामिल थे। ओडिशा के तीन आदिवासी जिलों, कोरापुट, रायगडा और नबरंगपुर, में दो साल की अवधि में किए गए प्रयासों के उत्कृष्ट परिणाम सामने आए। स्वतन्त्र अध्ययनों के अनुसार, दूसरी कक्षा के समाप्त होने तक 83% बच्चे पढ़ सकते थे।

इस अनुभव से हमें वास्तव में बड़े व्यापक स्तर पर सीखने को मिला है और उसके आधार पर हम जिस महत्त्वपूर्ण बात पर ज़ोर देना चाहते हैं वह है शिक्षकों के लिए समर्थन और प्रभावी प्रशिक्षण की आवश्यकता। शिक्षकों की बात सुनने, उन्हें अपनी समस्याओं को समझने और उसका समाधान ढूँढ़ने में पर्याप्त सहायता देने की बहुत आवश्यकता है। सरकारी तंत्र में शिक्षक अधीनस्थ होते हैं, जिनके लिए सेवा के नियमों की पालना और अपने वरिष्ठों की आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता है। जिससे अच्छी शिक्षण-विधियों को विकसित करने और अधिगम के परिणामों को बेहतर बनाने में बाधा पड़ती है। इसके परे जाना और सरकारी प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को ज्ञान और कौशल के साथ रचनात्मकता की ओर ले जाने में मदद करना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था को देखते हुए यह एक असम्भव विचार लग सकता है। लेकिन अगर हम एक छोटी-सी शुरुआत करें और अपनी पहुँच व उपलब्धियों का विस्तार करें तो शायद हम, सबके लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।



विद्या दास ग़ैर-लाभकारी संगठन, अग्रगामी में कार्य करती हैं। वे महिला-अधिकार, शिक्षा और आजीविका के क्षेत्र में अपने कार्य के लिए पहचानी जाती हैं। आदिवासी शिक्षा और जनजातीय अधिकारों पर उनके लेखन को व्यापक रूप से प्रकाशित किया गया है। अग्रगामी के विज़न को ध्यान में रखते हुए वे भूख और अन्यायरहित दुनिया के लिए प्रतिबद्ध है। उनसे vidhyadas@agragamee.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

अधिगम के साधन के रूप में पत्रिकाएँ

विनता विश्वनाथन और रुचि शेवड़े

बच्चों की पत्रिकाओं का संक्षिप्त इतिहास

बच्चों के लिए पत्र-पत्रिकाएँ छपने की शुरुआत 18वीं शताब्दी से ही हो चुकी थी। यह पत्रिकाएँ ज़्यादातर यूरोप और उत्तरी अमरीका में प्रकाशित होती थीं और इनकी विषयवस्तु हुआ करती थी, 'अच्छा' जीवन कैसे जिया जाए इससे सम्बन्धित नैतिक बातें एवं निर्देश। 19वीं शताब्दी में सामग्री की प्रकृति में बदलाव आया और उनमें कहानियाँ, लोक-कथाएँ और परी-कथाएँ शामिल की जाने लगीं। बच्चों की आधुनिक पत्रिकाएँ और कॉमिक्स 20वीं शताब्दी की शुरुआत में आए। समाज में बचपन की अवधारणा के उद्भव और इस क्षेत्र में सम्भावित लाभ को पहचानने के साथ-साथ बच्चों की पत्रिकाओं का भी विकास होता गया। भारत में 20वीं शताब्दी के आरम्भ में बच्चों की पत्रिकाएँ प्रकाशित होनी शुरू हुईं। बच्चों की प्रारम्भिक पत्रिकाओं में आनन्द (मराठी), सन्देश (बंगाली), बलराम (मलयालम) और चन्दामामा (तेलुगु और तमिल) थीं। भारत में 1970 के दशक के बाद से बच्चों की पत्रिकाओं ने अपने पैर जमाए।

भाषा सीखने में सहायता के लिए एक प्रिंट-समृद्ध वातावरण प्रदान करने की बात हो या अकादमिक हल्कों में अधिगम-संसाधनों पर चर्चा हो, पत्रिकाओं को हमेशा एक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक साधन माना गया है। दुनिया भर में शिक्षकों के अनुभव इस विचार की पुष्टि करते हैं कि पत्रिकाएँ, यहाँ तक कि कॉमिक्स भी, कक्षा में अधिगम का शक्तिशाली साधन हो सकते हैं। लेकिन यह विचार काफ़ी हद तक सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है क्योंकि बच्चों की पत्रिकाओं, उनके उपयोग और प्रभाव के बारे में सुनियोजित अध्ययन बहुत कम हैं। वैसे तो पत्रिकाओं को अधिगम के साधन के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है लेकिन फिर भी कक्षा में सहायक सामग्री के रूप में उनका प्रयोग कम ही किया जाता है।

कक्षा की अधिगम-प्रक्रिया में बच्चों की पत्रिकाएँ किस प्रकार भूमिका निभा सकती हैं, इस बारे में हमने साहित्य का सर्वेक्षण किया और वहीं से एकत्रित जानकारी की चर्चा हमने इस लेख में की है। हमारी चर्चा में कई शिक्षकों के विवरणों का काफ़ी इस्तेमाल किया गया है। हम इस विषय पर भी बात करेंगे कि माध्यमिक विद्यालय के बच्चों के लिए हिन्दी की बाल विज्ञान पत्रिका 'चकमक' को पूरक सामग्री के रूप में कैसे प्रयोग में लाया गया है।

कक्षाओं में पत्रिकाओं का उपयोग क्यों करें?

किसी पत्रिका को उलट-पलटकर देखने से हमें उसमें छपे लेखों की सामग्री, चित्र और डिज़ाइन की समृद्धता और विविधता के बारे में पता चलता है। बच्चों की पत्रिकाओं में कल्पित कथाओं और गैर-कल्पित कथाओं (Fiction & Non-Fiction) का ख़ज़ाना होता है जैसे कथाएँ, कविताएँ, कॉमिक स्ट्रिप्स, फुटकर समाचार(news snippets), आश्चर्यजनक तथ्य, विभिन्न प्रकार की पहेलियाँ, लेख, गतिविधियाँ और प्रतियोगिताएँ। उनमें विविध प्रकार की और बोध के विभिन्न स्तरों के अनुरूप पढ़ने की सामग्री होती है। जानकारी भी अद्यतन और प्रासंगिक होती है क्योंकि पत्रिकाओं को नियमित और लघु अन्तराल पर प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका की सामग्री में एक बात समान है और वह है संक्षिप्तता- पत्रिका के लेखों की जानकारी संक्षिप्त होती है, अतः उन्हें आराम से पढ़ा जा सकता है। और पत्रिका को पढ़ने की सबसे अच्छी बात यह है कि आपको इसे पूरा पढ़ने की आवश्यकता नहीं है; आप केवल उन हिस्सों को पढ़ सकते हैं जिनमें आपकी रुचि हो।

कुछ पत्रिकाओं में किसी एक विषय (जैसे विज्ञान या पर्यावरण) पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, जिनमें ब्रेनवेव और नेशनल जियोग्राफ़िक किड्स शामिल हैं। कुछ अन्य पत्रिकाएँ जैसे चकमक, किशोर आदि अपने पाठकों के लिए व्यापक विषयों की पेशकश करते हैं। दोनों ही मामलों में, विद्यार्थियों को यह पत्रिकाएँ उपर्युक्त कारणों से आकर्षक लगती हैं और वे उनके साथ जुड़ते हैं। और इन्हीं कारणों से शिक्षकों को भी यह पत्रिकाएँ कक्षा की सहायक सामग्री के रूप में आकर्षित करती हैं। इसका एक और कारण यह भी है कि वे इन पत्रिकाओं की मदद से ऐसी पाठ-योजनाएँ बना सकते हैं जो कक्षा के एक या कुछ घण्टों के लिए उपयुक्त हों।

बच्चों की पत्रिकाएँ और पढ़ना-लिखना सीखना

इन पत्रिकाओं में कहानियों और कविताओं का समृद्ध संग्रह होता है, अतः भाषा की कक्षा में उन पर स्थायी रूप से निर्भर हुआ जा सकता है। इन कहानियों और लेखों की लम्बाई, जटिलता के स्तर, विषयों और शैली के आधार पर इनका उपयोग विभिन्न आयु-समूहों के लिए किया जा सकता है जैसे कहानी को ज़ोर से पढ़ना, सुनाना, समीक्षा, साहित्यिक चर्चा करना और थिएटर।

पढ़ना एक ऐसा कौशल है जिसका अभ्यास कविताओं की मदद से किया जा सकता है लेकिन इसके अप्रत्यक्ष (intangible) परिणाम भी हैं। कविताओं का रूप ही ऐसा होता है कि इन्हें कई बच्चे पसन्द करते हैं। जैसा कि प्रो. कृष्ण कुमार ने कहा है कि कविताएँ 'भाषा के अत्यधिक रचनात्मक और ऊर्जावान रूप की स्रोत हैं।' कविताएँ बच्चे को भाषा के साथ खेलने देती हैं। पत्रिकाओं में बच्चों के लिए कई तरह की कविताएँ होती हैं, लेकिन कविता की पारम्परिक पुस्तकों या पाठ्यपुस्तकों में ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए, चकमक में हम केवल हिन्दी भाषा में लिखी गयी कविताएँ ही नहीं अन्य भाषाओं की भी कई कविताएँ छापते हैं जैसे कि अँग्रेज़ी और ईरानी भाषाओं की कविताओं का अनुवाद। बच्चों की पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ रचनाओं ने यह साबित किया है कि जितनी बार भी बच्चों के सामने इन्हें पढ़ा जाता है, हर बार ऊर्जा से भरी प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। चकमक के पहले अंक में प्रकाशित, 'आलू मिर्ची चाय जी' शीर्षक कविता (राजेश उत्साही द्वारा रचित) एक ऐसा ही उदाहरण है जो बहुत लोकप्रिय हुई। इस कविता को पिछले कई दशकों से कई सरकारी और निजी, दोनों तरह की पाठ्यपुस्तकों में लिया गया है।

पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने से अकसर थकान-सी महसूस होती है, लेकिन जब पत्रिकाएँ मनोरंजन के लिए पढ़ी जाती हैं तो उस थकान से राहत मिलती है। शायद आकर्षक आवरण और सामग्री की विविधता के कारण ही शिक्षकों का यह अनुभव रहा है कि कक्षाओं में इधर-उधर पड़ी पत्रिकाओं को एक अनिच्छुक पाठक भी उठाकर देखता है और ध्यान से पढ़ता है। पूर्व-प्राथमिक स्तर पर भी यह बात लागू होती है। प्रिंट या मुद्रित सामग्री में दिलचस्पी लेने की दिशा में यह पहला क़दम है। कई बच्चे, विशेष रूप से शुरुआती कक्षाओं में, विभिन्न कारणों से किताबों से डरते हैं। उनमें से कुछ बच्चों का पाठ्यपुस्तकों या अन्य किताबों के साथ ज़्यादा वास्ता नहीं पड़ा होता है। अन्य बच्चे अपने सहपाठियों को आसानी से पढ़ते हुए देखते हैं लेकिन उन्हें इस बात का पक्का यकीन नहीं होता कि वे भी ऐसा कर सकते हैं। किन्तु एक बार जब यह बच्चे पत्रिका उठा लेते हैं तो फ़िर छपी हुई सामग्री उन्हें उतनी मुश्किल नहीं लगती। कुछ शिक्षकों ने अनुभव किया कि यदि शुरुआत से ही बच्चे को ऐसी प्रेरणा मिल जाती है तो आगे चल कर वे अच्छे पाठक बनते हैं।

पत्रिकाएँ, बच्चों को लिखने के लिए भी प्रोत्साहित करती हैं। शिक्षकों ने महसूस किया कि पत्रिकाओं में पढ़ी हुई कहानियाँ और अन्य लेखों से उन्हें लिखने के लिए विचार मिलते हैं। वे लेखन के मॉडल के रूप में भी पत्रिकाओं के अंशों का उपयोग भी करते हैं। पत्रिकाएँ अकसर, पाठकों को सम्पादक के नाम पत्र लिखने और पुरस्कार पाने के लिए पहेलियों और प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

पूरक संसाधन के रूप में चकमक

एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा 1980 के दशक के मध्य में माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए पूरक पठन-सामग्री के रूप में बच्चों की विज्ञान पत्रिका चकमक की शुरुआत की गई। मध्यप्रदेश के स्कूलों में चल रहे, एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) के संचालकों के अनुभव से इस तरह की पत्रिका की आवश्यकता उभर कर सामने आई।

उन शुरुआती वर्षों में चकमक को होविशिका के कई ग्रामीण सरकारी स्कूलों में रियायती दरों पर बेचा गया था। बच्चे पत्रिका पढ़ना पसन्द करते थे और प्रश्न, कविता, कला, कहानियाँ और अपने अनुभव भेजते थे क्योंकि शुरुआत से ही इस पत्रिका में कई पृष्ठों को बच्चों के योगदान के लिए सुरक्षित कर दिया गया था, उस पन्ने का नाम है - मेरा पन्ना। कई वर्षों तक बाल-दिवस के उपलक्ष्य में, नवम्बर का अंक पूरी तरह से मेरा पन्ना अंक हुआ करता था।

इस तरह चकमक ने बच्चों की लेखन-कला और जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया और 'अच्छी' कला या 'उचित' लेखन के लिए जो पारम्परिक मानक तय थे, उनका उपयोग न करके बच्चों को कागज़ पर ख़ुद को व्यक्त करने में मदद की। चकमक में छपने के लिए बच्चे की रचनात्मकता और सोच तथा अपनी बात कहने की आवश्यकता ही काफ़ी थी। ऐसी कोई 'एक' हिन्दी नहीं थी जिसे स्वीकार्य माना जाता हो और भाषाओं और शैलियों की विविधता के साथ दख़लअन्दाज़ी नहीं की जाती थी। इस बात की केवल कल्पना ही की जा सकती है कि इस प्रकार के मौक़ों ने, इन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों, जिनमें से कई पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी थे, के आत्मविश्वास पर क्या कुछ प्रभाव डाला होगा।

आज भी अकसर मेरा पन्ना पृष्ठ को बच्चे पत्रिका में सबसे पहले पढ़ते हैं। उनमें बच्चों के दैनिक जीवन की कई घटनाएँ हिन्दी के विभिन्न रूपों में लिखी होती हैं। एक समाज के रूप में, हम अभी भी बच्चे के घर की भाषा और बोली को औपचारिक स्थितियों में, यहाँ तक कि कक्षा में भी स्वीकार नहीं करते हैं, इस तथ्य के बावज़ूद कि इस तरह की स्वीकृति बच्चे को कक्षा की प्रक्रिया के साथ जुड़ने और स्कूली व्यवस्था में बने रहने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस प्रकार मेरा पन्ना जैसी पहल बच्चों को उनकी स्वीकार्यता का आश्वासन, जिसकी बेहद ज़रूरत है, देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

चकमक के शुरुआती वर्षों में शिक्षकों ने अपनी कक्षाओं में पत्रिका के विभिन्न लेखों पर चर्चा की और 'अपनी प्रयोगशाला' कालम में बताई गई गतिविधियों को करने का प्रयास भी किया। उन्होंने चकमक की सम्पादकीय टीम को लगातार अपनी प्रतिक्रिया दी जिससे पत्रिका को शैक्षिक

साधन के रूप में प्रासंगिक और उपयोगी बनाए रखने में मदद मिली। कुछ वर्षों बाद चकमक में विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री कम हो गई और इसके पाठकों में भी परिवर्तन हुआ – पहले इसे मुख्य रूप से हिन्दी माध्यम के, सरकारी स्कूलों के बच्चों द्वारा पढ़ा जाता था, लेकिन अब बड़ी संख्या में अँग्रेज़ी-माध्यम के निजी स्कूलों के बच्चे भी इसे पढ़ने लगे हैं। आज भी चकमक का उपयोग स्कूलों, पुस्तकालयों और विभिन्न संस्थाओं के गतिविधि केन्द्रों में किया जा रहा है, लेकिन मोटे तौर पर उन अन्तःक्रियात्मक स्तम्भों के लिए जिनमें बच्चे हमें लिखते हैं या हमें अपने चित्र आदि भेजते हैं।

‘क्यों-क्यों’ एक अन्य स्तम्भ है जिसे एक साल पहले शुरू किया गया था। इस स्तम्भ में हम बच्चों से उन सवालों के जवाब देने के लिए कहते हैं, जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित होते हैं जैसे हम पादते क्यों हैं से लेकर ऐसे प्रश्न कि उनके विचार में ‘कार्य’ किसे माना जाता है और उनके परिवारों में किन-किनको इसके लिए पैसे मिलने चाहिए। इस प्रकार के प्रश्न भी पूछे जाते हैं जैसे एक खड़ी साइकिल गिरती क्यों है, उनके अनुसार में उनके परिवार में कौन-सा व्यक्ति ऐसा है जिसे सबसे अधिक स्वतंत्रता मिली हुई है और क्यों और यदि वे किसी को गायब करना चाहें तो वह कौन होगा और क्यों। इस तरह के प्रश्न बच्चों को अपने आस-पास की चीजों का अवलोकन करने, उन पर चिन्तन करने और विभिन्न दृष्टिकोणों से उनके उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं और यहीं से वैज्ञानिक और दार्शनिक जाँच-पड़ताल की शुरुआत होती है।

इसमें नेचर कंजर्वेशन फाउण्डेशन का एक स्तम्भ भी है जो बच्चों को बाहर जाने, अवलोकन करने और अपने प्राकृतिक परिवेश से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसमें दिए गए विषय, पशुओं या पौधों के समूहों (बन्दर, बाँस) और अवधारणाओं (नकल बनाना, हमारे आसपास की आवाज़ें) पर आधारित होते हैं। इन पर सीमित प्रतिक्रिया आती हैं, जो शायद इस बात को रेखांकित करती है कि हमें स्कूलों के साथ कार्य करना चाहिए ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा स्कूल अपने विद्यार्थियों से यह गतिविधियाँ करवाएँ और उन्हें प्रकृति के साथ बेहतर तरीक़े से जुड़ने में मदद कर सकें।

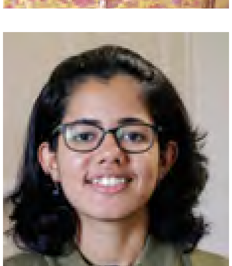
कुल मिलाकर चकमक की सामग्री अपने पाठकों के लिए आज दुनिया को देखने के लिए एक दर्पण का कार्य करती है, और साथ ही यह निश्चित रूप से हम वयस्कों के लिए एक ऐसी खिड़की है जिसमें से झाँककर हम बच्चों की दुनिया देख सकते हैं, यह जान सकते हैं कि वे क्या सोचते हैं, कौन-सी बात उन्हें परेशान करती है और वे अपने आसपास की दुनिया को कैसे देखते हैं।

अधिगम के साधन या स्रोत के रूप में चकमक जैसी बच्चों की पत्रिकाओं में बहुत सम्भावनाएँ हैं। लेकिन शिक्षण में सहायता के लिए उनका अधिक उपयोग नहीं किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अधिगम के अन्य अपरम्परागत साधन हैं जिनका उपयोग परम्परागत कक्षाओं में नहीं होता जैसे फिल्में, फिल्म के पोस्टर और विज्ञापन। आज जब हम विभिन्न प्रकार की अधिगम-सामग्री की आवश्यकता के बारे में बात करते हैं और उसका समर्थन करते हैं, जब हम विद्यार्थियों की अधिगम शैली और उनकी पसन्द की विविधता को स्वीकार करते हैं, तब हमें कक्षा में प्रयुक्त होने वाले अपने शैक्षणिक साधनों के संग्रह में पत्रिकाओं और ऐसे ही अन्य सभी प्रकार के साधनों को भी शामिल करना चाहिए।

इस लेख के लेखन में प्रयुक्त सन्दर्भों की सूची के लिए कृपया ruchi.shevade@gmail.com पर लिखें।



विनता विश्वनाथन चकमक की सम्पादक हैं। एक पारिस्थितिकीविद् के रूप में प्रशिक्षित विनता ने शोधकर्ता, शिक्षक और विज्ञान लेखक के रूप में कार्य किया है। उनसे vvinatha@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।



रुचि शेवड़े एकलव्य फाउण्डेशन, भोपाल की प्रकाशन टीम के साथ जुड़ी हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से शिक्षा में एमए किया है। उनसे ruchi.shevade@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

चिन्तनशील शिक्षार्थी : त्रुटियों में 'अवसरों की खोज' | पुस्तक समीक्षा

इन्दिरा विजयसिम्हा

विद्यार्थियों की त्रुटियों से शिक्षकों को अकसर चिड़चिड़ाहट व हताशा होती है, यहाँ तक कि ग़ुस्सा भी आ जाता है। हममें से कई लोगों को अपनी स्कूल की नोटबुक के लिखित कार्य पर लाल स्याही से लगे निशान याद होंगे। हमारी त्रुटियों को उजागर करते इन निशानों से हमारे मन में भय, शर्मिन्दगी और बेवक़ूफ़ होने का भाव पैदा होता था। हालाँकि त्रुटियों को अधिगम की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए। वे शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को अनेक प्रकार की अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकती हैं।

"त्रुटियों से शिक्षार्थियों को तो सीधा लाभ मिलता ही है, साथ ही शिक्षक भी त्रुटियों से बहुमूल्य जानकारी प्राप्त करते हैं। त्रुटि के प्रति सहनशीलता विद्यार्थी को सक्रिय, खोजपूर्ण और उत्पादक जुड़ाव की ओर प्रोत्साहित करती है। यदि लक्ष्य कठिन परिस्थितियों में सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करना है तो यही बेहतर होगा कि विद्यार्थियों को, हर हाल में त्रुटियों से बचने की बजाय, अधिगम की कम कठिन परिस्थितियों में त्रुटियाँ करने और उन्हें सुधारने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।" — लर्निंग फ्रॉम एरर्स एनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलॉजी *

एलेनोर डकवर्थ ने अपनी क्लासिक पुस्तक, द हैविंग ऑफ़ वंडरफुल आइडियाज़ में कहा है "...त्रुटियाँ करना और उन्हें सुधारना परिघटना की बेहतर समझ को जन्म देता है और उसे प्रकट करता है, लेकिन अगर त्रुटियाँ की ही न जाएँ तो ऐसा सम्भव नहीं होता।"

यदि शिक्षक विद्यार्थियों की त्रुटियों का व्यवस्थित अध्ययन करें तो क्या शिक्षक विद्यार्थियों की सोच को बेहतर तरीक़े से समझ पाएँगे? क्या शिक्षक विद्यार्थियों को अपनी त्रुटियों को स्वीकार और उनका विश्लेषण करने के लिए प्रोत्साहित करके उन त्रुटियों से सीखने में उनकी मदद कर सकते हैं? द रिफ्लेक्टिव लर्नर पुस्तक में ऐसे ही कुछ प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है। यह एक व्यावहारिक पुस्तक है जिसमें चार शिक्षकों के उन अनुभवों का विवरण दर्ज है जो उन्हें बच्चों को पढ़ाने के दौरान उनकी त्रुटियों की जाँच करते समय हुए। इस प्रक्रिया में शिक्षक भी अपने स्वयं के अभ्यास और विद्यार्थियों के बारे में अपनी मान्यताओं व धारणाओं पर चिन्तन करना शुरू कर देते हैं।

यह पुस्तक शिक्षक को बहुत सारगर्भित विचार प्रदान करती है। इसमें अनावश्यक शब्दजाल का प्रयोग नहीं किया गया है। जैसा कि कमला मुकुन्दा ने पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है, 'पुस्तक में मनोविज्ञान शब्द हर जगह मौजूद है, लेकिन इसका उल्लेख कहीं नहीं किया गया (एक सन्दर्भित शीर्षक के भाग के अलावा!)।' आपको इसमें 'बोध का अनुवीक्षण', 'प्रोटोकॉल', और 'नियंत्रित समूह' जैसे शब्द नहीं मिलेंगे जो आमतौर पर शिक्षा के अकादमिक शोधपत्रों में प्रयुक्त होते हैं। अलंकृत भाषा वाले इस तरह के शोधपत्र शायद उनके लेखकों को अकादमिक ख्याति, डिग्री या शैक्षिक समुदाय के सोपान में एक क़दम की बढ़त भले ही दें, लेकिन पेशेवर शिक्षकों को इससे अधिक लाभ नहीं होगा। इसी बात में इस पुस्तक की सुन्दरता निहित है कि यह पेशेवर शिक्षक को सम्बोधित करती है और उनके लिए बहुत लाभदायक है। मुझे आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद कई और शिक्षक अपनी कक्षाओं में इस तरह की खोज करने के लिए पर्याप्त रूप से उत्साहित होंगे और इस प्रक्रिया में अपने कार्य को और अधिक रोचक और सन्तोषजनक पाएँगे।

इस पुस्तक में अँग्रेज़ी और गणित के दो-दो शिक्षकों द्वारा किए गए क्रियात्मक अनुसन्धान के अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। उनकी खोज और निष्कर्षों का यह विवरण बेहद जीवन्त है। प्रत्येक शिक्षक का कार्य एक अलग अध्याय में वर्णित है। तीन शिक्षकों के कार्य का वर्णन नीरजा राघवन ने किया है और कंचना नामक शिक्षिका ने अपने कार्य के बारे में एक शोध अध्ययन के रूप में लिखा है। आरम्भ में एक परिचयात्मक अध्याय है जो सन्दर्भ और पृष्ठभूमि को स्पष्ट करता है। समापन अध्याय चारों विवरणों का अनुसरण करते हुए पूरी प्रक्रिया पर एक विहंगम दृष्टि डालता है।

जैसा कि कंचना कहती हैं, इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से यह दिखाया गया है कि 'शिक्षक-शोधकर्ताओं ने विद्यार्थी के कार्य में त्रुटियों को बताने (ताकि उनसे बचने के तरीक़े सिखाए जा सकें) के स्थान पर, उसकी त्रुटियों का विश्लेषण करना शुरू किया जिससे कि विद्यार्थी के सोचने के तरीक़े को बेहतर रूप से समझा जा सके।' चारों शिक्षक विद्यार्थी को उसकी सोच के बारे में जागरूक करने और अपनी त्रुटियों को पहचानने में उसकी मदद करने का प्रयास करते हैं। और इस प्रकार वे उन्हें अपने अधिगम की कमान ख़ुद सँभालने में सशक्त बनाते हैं। इन शिक्षकों के क्रियात्मक अनुसन्धान के परिणामस्वरूप विद्यार्थी अपनी क्षमताओं के बारे में अधिक आत्मविश्वासी हो गए हैं और उनमें से कई विद्यार्थियों का विषयों के प्रति रुझान और जुड़ाव बढ़ा है।

ऐसा लगता है कि जब से इन चार शिक्षकों— प्रेरणा, माइकल, गोपी और कंचना —ने बच्चों की त्रुटियों का गम्भीरता से अध्ययन करना शुरू किया, तब से उन्होंने कक्षा में पढ़ाने के लिए व्यापक रूप से इनपर आधारित रणनीतियाँ बना ली हैं। उन सभी ने अनिवार्य रूप से विद्यार्थियों की त्रुटियों को वर्गीकृत करना शुरू किया और फिर उसके पैटर्न देखने शुरू किए। फिर उन्होंने विद्यार्थियों के ध्यान और रुचि को त्रुटियों की ओर खींचने का प्रयास किया। अन्त में उन्होंने विद्यार्थियों को अपनी त्रुटियाँ देखने, उनका विश्लेषण करने और उन्हें दूर करने के लिए बहुत सारा समय दिया। साथ ही बहुत-सा अभ्यास भी करवाया। यह देखने में आया कि कुछ त्रुटियाँ ऐसी हैं जिन्हें अकसर विद्यार्थी करते हैं, जबकि अलग-अलग विद्यार्थियों की त्रुटियों का एक विशेष पैटर्न था।

प्रेरणा पाँचवीं कक्षा को अँग्रेज़ी पढ़ाती थीं और कंचना नवीं और दसवीं कक्षा को गणित। इन दोनों ने त्रुटि वर्गीकरण के लिए एक योजना का उपयोग किया और विद्यार्थियों की अपनी त्रुटियों का विश्लेषण करने में मदद की। माइकल आठवीं कक्षा को अँग्रेज़ी पढ़ाते थे और उनका अनुभव भी कंचना के समान ही था। उनकी कक्षा में भी विद्यार्थियों को अपनी त्रुटियों को पहचानने और उन्हें वर्गीकृत करने के लिए सहायता की आवश्यकता थी। माइकल ने विद्यार्थियों की नोटबुक में हाशिए पर त्रुटियों को सूचित करने की रणनीति अपनाई। इससे विद्यार्थियों को संकेत मिल जाता और उन्हें अपनी त्रुटि को पहचानने और उसे सही करने में मदद मिल जाती। कंचना ने विद्यार्थियों से व्यक्तिगत रूप से बातचीत की और उनसे अपनी त्रुटियों को वर्गीकृत करने के लिए कहा। एक दिलचस्प उदाहरण यह था कि उन्होंने पहले एक त्रुटि को जिस प्रकार से वर्गीकृत किया था, उसे सम्बन्धित विद्यार्थी के साथ चर्चा करने के बाद बदल भी दिया।

इन चारों उदाहरणों में शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों ने अपनी सोचने की प्रक्रिया के बारे में अधिक अन्तर्दृष्टि विकसित की है। आठवीं, नौवीं और दसवीं कक्षा को गणित पढ़ाने वाले गोपी ने एक बढ़िया खोज की। उन्होंने अपने क्रियात्मक अनुसन्धान में नौ 'प्रयोगों' की एक शृंखला द्वारा गणित के प्रश्नों के ज़रिए बच्चों की सोच के बारे में पता लगाया। उन्होंने प्रश्न हल करने की प्रक्रिया को चार चरणों में विभाजित किया और यह पता लगाने के लिए कि विद्यार्थियों ने प्रत्येक चरण को कैसे सुलझाया उन्हें व्यवस्थित रूप से कार्य करने दिया। उनके काम का विवरण बहुत दिलचस्प है। गणित के दोनों शिक्षकों ने एक सामान्य रणनीति यह अपनाई कि धीमी गति से काम करने में विद्यार्थियों की मदद की ताकि वे सतही त्रुटियों से बच सकें और प्रश्नों के बारे में व्यवस्थित रूप से सोच सकें। ऐसा लगता है कि दोनों शिक्षक विद्यार्थियों को सोचने में मदद करने में काफ़ी हद तक सफल रहे हैं और इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी अधिक जुड़ाव वाले शिक्षार्थी बने तथा उन्होंने गणित के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया।

मज़े की बात यह है कि जैसे-जैसे शिक्षक अपने विद्यार्थियों की त्रुटियों के साथ जुड़े और उन्होंने उनकी सोच को समझना शुरू किया, वैसे-वैसे वे स्वयं विषय और विद्यार्थियों के बारे में अपनी सोच को लेकर भी अधिक जागरूक हो गए। विद्यार्थियों की त्रुटि के मूल कारणों का विश्लेषण करते हुए प्रेरणा ने पाया कि कभी-कभी शिक्षक के प्रश्न की भाषा ही ऐसी होती है कि उससे त्रुटियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। वे उस समय बहुत परेशान हुईं जब उन्हें पता चला कि उन्होंने जो प्रश्न परीक्षा में विद्यार्थियों से पूछा था, उसका उत्तर देने में उन्हें ख़ुद कठिनाई हो रही थी। माइकल अलग-अलग विद्यार्थियों के बारे में अपनी धारणाओं से अवगत हुए और अपने क्रियात्मक अनुसन्धान के दौरान इनका पुन: आकलन करने में सक्षम हुए। अपने अनुसन्धान की समाप्ति तक उन्होंने महसूस किया कि उनके अपने अँग्रेज़ी भाषा के उपयोग में सुधार हुआ है।

पुस्तक का प्रत्येक अध्याय हमें शिक्षकों और विद्यार्थियों के मन में चल रही बातों के बारे में बहुत कुछ बताता है क्योंकि वे अधिगम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मिलकर काम करते हैं। पुस्तक में बताया गया है कि शिक्षकों ने विद्यार्थियों के अधिसंज्ञानात्मक (metacognitive) कौशल को विकसित करने और उसे महत्त्व देने में उनकी मदद करने की रणनीतियाँ कैसे बनाईं। विद्यार्थियों ने महसूस किया कि वे अधिक समझ के साथ सीख सकते हैं और त्रुटियों से शर्मिन्दा होने की आवश्यकता नहीं है तथा वे स्वयं त्रुटियों को कम कर सकते हैं। प्रगति के साथ-साथ विद्यार्थी की त्रुटि दर में वृद्धि का होना सहज ज्ञान के विपरीत लग सकता है। किन्तु माइकल ने एक विद्यार्थी के बारे में यही अनुभव किया। वह विद्यार्थी अपने लेखन को लेकर काफ़ी आत्मविश्वासी हो गया। उसने अपने लेखन में व्यापक शब्दावली का उपयोग करना शुरू कर दिया एवं महज़ सरल वाक्यों से चिपके रहने के स्थान पर वह जटिल वाक्यों की रचना भी करने लगा। उन्होंने ठीक ही निष्कर्ष निकाला कि इस विद्यार्थी के मामले में त्रुटि की बढ़ती संख्या उसकी प्रगति का संकेत थी।

समापन अध्याय में कुछ प्रासंगिक साहित्य का विवरण दिया गया है, लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह अधिक शिक्षकों को शोधकर्ता बनने के लिए प्रोत्साहित करने और विद्यार्थियों को चिन्तनशील शिक्षार्थी बनने में मदद करने के तरीक़ों को आज़माने का एक प्रयास है। इस अध्याय में अधिगम के स्वस्थ माहौल के लिए आवश्यक शर्तों के बारे में स्पष्ट रूप से बताया गया है। अधिगम के स्वस्थ माहौल में त्रुटियाँ ऐसी सीढ़ियाँ बन जाती हैं जो अधिक महारत और गहन अधिगम की ओर ले जाती हैं। इस तरह के काम को करने के लिए एक प्रमुख शर्त यह है कि एक ऐसे माहौल का निर्माण किया जाए जहाँ त्रुटियों को स्वीकार किया जा सके और बिना शर्मिन्दगी या दोषारोपण के उनका विश्लेषण किया जा

सके। इस अध्याय में क्रियात्मक अनुसन्धान करने के तरीक़े भी बताए गए हैं और पुस्तक में वर्णित चारों शिक्षकों के कार्य के तरीक़े के बारे में बहुत उपयोगी फ्लो चार्ट भी दिए गए हैं।

कुल मिलाकर इस पठनीय पुस्तक का भारतीय जिज्ञासु शिक्षक के लिए उपलब्ध पुस्तकों के सीमित भण्डार में बहुत स्वागत है। जिस किसी के भी मन में इस तरह के प्रश्न हैं कि बच्चे बार-बार वही त्रुटियाँ क्यों करते हैं? बड़ी संख्या में विद्यार्थी एक ही जैसी त्रुटियाँ क्यों करते हैं? हम त्रुटियों से क्या सीख सकते हैं? हम बेहतर प्रदर्शन करने में बच्चों की मदद कैसे कर सकते हैं? —उनके लिए यह पुस्तक बहुत मूल्यवान साबित होगी। यह पुस्तक नीरजा राघवन की पिछली पुस्तक, द रिफ्लेक्टिव टीचर में ली गई विषयवस्तु को आगे बढ़ाती है और हमें इस बारे में विस्तृत विवरण देती है कि शिक्षार्थियों को भी चिन्तनशील बनने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए चिन्तनशील शिक्षण को कैसे व्यापक बनाया जा सकता है। निश्चित रूप से यह ऐसी पुस्तक नहीं है जो शेल्फ़ पर रखी रहे और उसपर धूल जमती रहे; इसे व्यापक रूप से पढ़ने और कक्षाओं व स्टाफ़ रूम में इसपर चर्चा करने की आवश्यकता है ताकि अधिक से अधिक शिक्षक और विद्यार्थी एक-दूसरे के 'मानस-संसार' में प्रवेश कर सकें।

*लर्निंग फ्रॉम एरर्स एनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलॉजी, वॉल्यूम 68: 465-489 (वॉल्यूम प्रकाशन तिथि जनवरी 2017) 14 सितम्बर, 2016 को अग्रिम समीक्षा के रूप में ऑनलाइन प्रकाशित हुई। https://doi.org/10.1146/annurev-psych-010416-044022)



शीर्षक : रिफ्लेक्टिव लर्नर : सीइंग 'मिस्ड टेक्स' इन मिस्टेक्स
लेखिका : नीरजा राघवन
पेपरबैक : 186 पृष्ठ
प्रकाशक : नोशन प्रेस; पहला संस्करण (14 नवम्बर 2019)
भाषा : अँग्रेज़ी
आईएसबीएन-10 : 164678801X
आईएसबीएन-13 : 978-1646788019
Notion Press.com और Amazon.in पर उपलब्ध है।



इन्दिरा विजयसिम्हा मानव कल्याण और इसे बढ़ावा देने या नुक़सान पहुँचाने में शिक्षा की भूमिका के बारे में गहन सरोकार रखती हैं। उनके अनुसार मानव कल्याण पारिस्थितिकी तन्त्र में सभी प्रतिभागियों (यानी मानव, ग़ैर-मानव और सामग्री) के बीच पारस्परिक रूप से सम्बन्धों को पुष्ट रखने और उन्हें बनाए रखने का एक जाल है। एक शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में उन्होंने जो कार्य किया, उसने शिक्षा की प्रक्रियाओं के बारे में उनके मन में गहरे प्रश्न पैदा किए और उन्हें पूर्णा लर्निंग सेंटर – एक 'वैकल्पिक' स्कूल शुरू करने के लिए प्रेरित किया। इन्दिरा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से जनवरी 2020 में सेवानिवृत्त हुई हैं। वर्तमान में वे पूर्णा के साथ सक्रिय रूप से जुड़ी हुई हैं। शैक्षिक और लोकप्रिय पत्रिकाओं में उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे indira502@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

शिक्षा : शिक्षा मन्त्री के रूप में मेरे प्रयोग | पुस्तक समीक्षा

प्रेमा रघुनाथ

यह पुस्तक उस शिक्षा नीति की रूपरेखा बताती है जिसे दिल्ली में आम आदमी पार्टी (AAP) की सरकार ने अपने पहले कार्यकाल के दौरान अपनाया।

शिक्षा एक ऐसा मुद्दा है, था और रहेगा जिसमें सार्वभौमिक भागीदारी होती है, फ़िर चाहे वह राय देने के लिए हो या नाराज़गी प्रकट करने के लिए। इस विषय पर सभी की अपनी-अपनी राय होती है कि क्या, कैसे, कब और क्यों पढ़ाया जाए। स्कूल अपनी सफलता की दर का विज्ञापन देते हैं और कुछ स्कूल शत-प्रतिशत परीक्षा परिणाम लाने की क्षमता के चलते दूसरे स्कूलों की तुलना में अधिक लोकप्रिय होते हैं- बिना इस बात को जाने या इसकी परवाह किए कि इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों की क्या दशा होती है।

किसी भी देश की शैक्षिक प्रणाली की सफलता उसके शिक्षकों के हाथों में होती है और साथ ही इस बात में भी निहित होती है कि एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज बनाने के लिए उन्हें कैसा प्रशिक्षण मिलता है; वे किस तरीक़े से पाठ्यपुस्तक की व्याख्या करते हैं; और इन पाठ्यपुस्तकों की रचना किस तरह से की जाती है। इसका एक और ज़रूरी पहलू यह भी है कि सरकार शिक्षा के समग्र विचार को कितना महत्त्व देती है: केवल दिखावे के लिए नहीं बल्कि अपनी मंशा का वास्तविक प्रमाणीकरण अपने कार्यों के माध्यम से करके ।

तत्कालीन उप-मुख्यमन्त्री और शिक्षा मन्त्री, मनीष सिसोदिया की यह पुस्तक बताती है कि आम आदमी पार्टी ने शिक्षा को अपने एजेण्डे के केन्द्र में रखा और दृढ़ता से इस बात का प्रदर्शन किया कि वह मौजूदा अवरोधों को तोड़ने में शिक्षा के महत्त्व को समझती है और उसमें पूरा विश्वास करती है।

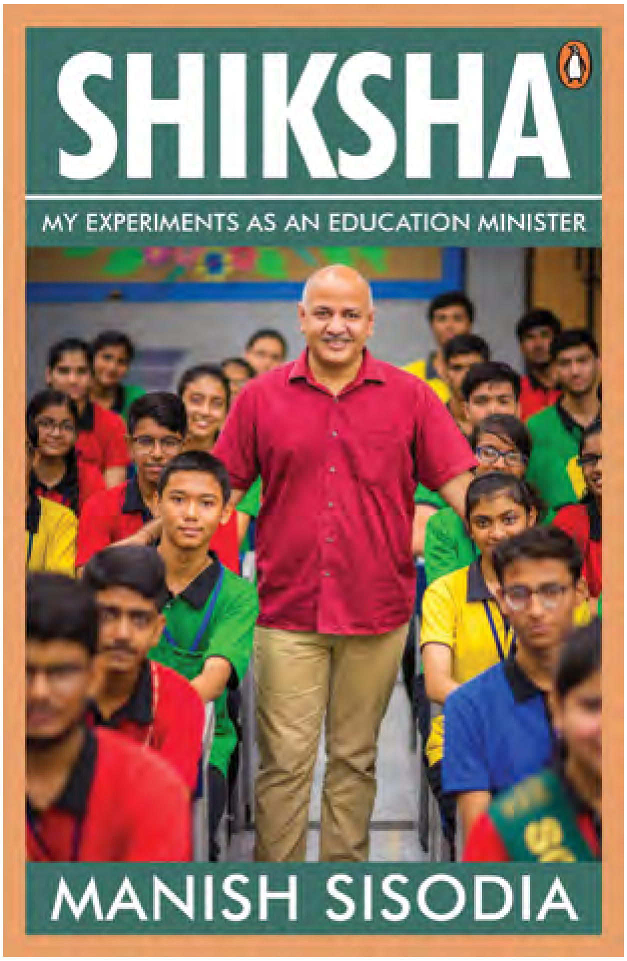
पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है : द फाउण्डेशन ऑफ एजुकेशन और एजुकेशन एज़ फाउण्डेशन। पहला भाग सरकारी स्कूलों के वास्तविक परिचालन से सम्बन्धित है। वे मनुष्य की क्षमता को पहले उसे एक व्यक्ति के रूप में समृद्ध होने और फलने-फूलने में महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उसके बाद मनुष्य की क्षमता उसके आर्थिक विकास का साधन बनती है। लेखक बुनियादी ढाँचे, शिक्षक भर्ती, प्रशिक्षण आदि विभिन्न पहलुओं पर प्राचार्य एवं अभिभावकों से चर्चा करते हैं। पहले भाग के प्रारम्भ में बजट को बढ़ाने के बारे में चर्चा की गई है, क्योंकि परिवर्तन के संकल्प को वास्तविक व्यवहार में लाने के लिए धन की आवश्यकता होती है।

आगे के विवरण में बताया गया है कि बजट में वृद्धि के परिणामस्वरूप दिल्ली के सरकारी स्कूलों में एक बहुत ही सकारात्मक और आशावादी शैक्षिक परिदृश्य सामने आया जो भौतिक और परिचालन दोनों स्तरों पर देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए ख़स्ताहाल एवं ग़ैर-प्रेरणादायक कक्षाओं को एक नया रूप दिया गया है ताकि जो लोग उनमें सबसे अधिक समय बिताते हैं यानी शिक्षक और विद्यार्थी, उनको अधिगम के लिए उपयुक्त मनःस्थिति में लाया जा सके।

मनीष सिसोदिया के सुधार सम्बन्धी विवरण में वेतनवृद्धि और सभी हितधारकों – शिक्षकों, विद्यार्थियों और उनके माता-पिता के लिए सम्मान तथा व्यवस्था में उनकी गहरी भागीदारी शामिल है।

दूसरा भाग – एजुकेशन एज़ फाउण्डेशन - नागरिक-निर्माण की प्रक्रिया में आध्यात्मिक उन्नति की भूमिका पर ज़ोर देता है। जीवन विद्या और विपश्यना ध्यान जैसे पाठ्यक्रमों को परिवर्तन के साधन के रूप में वर्णित किया गया है। इसके अलावा हैप्पीनेस प्रोग्राम है, जो बच्चों को स्वयं को स्वीकार करने और यह समझने का महत्त्वपूर्ण कौशल सिखाता है कि सच्चा धन, आन्तरिक आनन्द और आशावाद है। इसने बच्चों की इस बात में मदद की है कि वे अपने दृष्टिकोण को बदलें और संकीर्ण एवं स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों के बजाय स्वयं को जितना बेहतर हो सके उतना बेहतर बनाने की कोशिश करें।

यह पुस्तक एक आदर्श शिक्षा कार्यक्रम का रोचक विवरण है और अगर यह कार्यक्रम सफल होता है तथा इसे पूरे देश में लागू किया जाता है तो यह एक नवीन भारत के निर्माण के लिए ऐसे भावी नागरिक बनाने की सम्भावना जगाता है जो उपाय-कुशल, विश्वसनीय और विवेकशील होंगे। लेखन की शैली संवादात्मक है, लगता है जैसे किसी साक्षात्कारकर्ता से बात की गई हो। जो भी हो, शिक्षा एक पठनीय पुस्तक है और यदि इस पर अमल किया जाए तो और भी बेहतर होगा।



शीर्षक : शिक्षा : शिक्षा मंत्री के रूप में मेरे प्रयोग
लेखक : मनीष सिसोदिया
पेपरबैक : 208 पृष्ठ
कीमत : 222 रु.
प्रकाशक : पेंगुइन (9 सितंबर 2019)
भाषा : अँग्रेज़ी
आईएसबीएन-10 : 0143448528
आईएसबीएन-13 : 978-0143448525
Amazon.in पर उपलब्ध है।



प्रेमा रघुनाथ लर्निंग कर्व की मुख्य सम्पादक हैं। चेन्नई के सीबीएससी स्कूल और बाद में कई वर्षों तक एक आईबी स्कूल में पढ़ाने के बाद अब वे वहाँ के कुछ स्कूलों की समितियों की सदस्या हैं। उनसे prema.raghunath@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व के पुराने अंक **http://azimpremjiuniversity.edu.in/Site Pages/resources-learing-curve.aspx** से डाउनलोड किए जा सकते हैं।

यह पत्रिका अंग्रेज़ी और कन्नड़ा में भी छपती एवं प्रकाशित होती है।

अपने सुझाव,टिप्पणियाँ, मत और अनुभव हमें इस ईमेल पते पर भेज सकते हैं :
learningcurve@apu.edu.in

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए
आदर्श प्रा.लि.,4 शिखरवार्ता, प्रेस काम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल पिन 462 011 से मुद्रित

एवं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125 से प्रकाशित,
मुख्य सम्पादक : प्रेमा रघुनाथ

अगला अंक

हर बच्चा सीख सकता है
भाग-2

Azim Premji University
Survey No. 66, Burugunte Village,
Bikkanahalli Main Road, Sarjapura
Bengaluru, Karnataka – 562 125

080-6614 4900
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Facebook: /azimpremjiuniversity
Instagram: @azimpremjiuniv
Twitter: @azimpremjiuniv